स्वराज कथा

स्वतंत्रता आन्दोलन में हरियाणा

संपादन
ज्ञान सिंह

स्वराज कथा

स्वतंत्रता आन्दोलन में हरियाणा

(संगोष्ठि : 23–24 मार्च, 2011)

संपादन

ज्ञान सिंह

चौधरी रणबीर सिंह शोध पीठ

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

© प्रकाशक

संस्करण : 2012

प्रकाशक

चौधरी रणबीर सिंह शोध पीठ

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

मुद्रक :

विश्वविद्यालय प्रैस, रोहतक

शोधपीठ की ओर से

आज का दिन भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास में बड़ा महत्व रखता है। हरियाणा सरकार ने 23 मार्च को सार्वजनिक अवकाश घोषित कर इसके महत्व को चिन्हित किया है। यह बड़ी बात हुई है। आजादी मिलने के बाद से ही देश में छात्र व युवा संगठनो की ओर से यह मांग उठती रही थी कि 23 मार्च को युवा दिवस का दर्जा मिले। प्रान्तीय सरकार ने अमर शहीद भगत सिंह, राजगुरू, सुखदेव के बलिदान दिवस को उचित मान्यता देकर भला काम किया है। यह दिवस स्वतन्त्रता आन्दोलन में युवा शक्ति की कुर्बानियों को याद दिलाता है। शोधपीठ ने इस दिन के महत्व को अंगीकार करते हुए इस वर्ष स्वतन्त्रता आन्दोलन से जुड़ी यह दो दिन की संगोष्ठि रखी है, जिसमें आप सब लोग हमारे बुलावे पर पधारे हैं। इस विषय पर रुची दिखाने और संगोष्ठी में पधारने पर आप सबका हार्दिक स्वागत है।

23 मार्च, 1931 को हमारे स्वतंत्रता आन्दोलन के तीन सिपाही शहीद हुए थे। आज सारा देश उन्हें याद कर रहा है। कुछ सूचना के अनुसार सम्भवतः पाकिस्तान में भी उन्हें याद किया जा रहा है। सरदार भगत सिंह का नाम तो देश की सीमाओं से बाहर भी जाना जाता है। इस अवसर पर आयोजित इस संगोष्ठि में हमने डा. राम प्रकाश जी को मुख्य वक्तव्य रखने हेतु आमंत्रित किया है। इसलिए उद्घाटन सत्र में वे अपने मनचाहे विषय पर आपको संबोधित करके इस संगोष्ठि का उद्घाटन करेंगे। मुख्य अतिथि शिक्षाविद व इस विश्वविद्यालय के कुलपति आदरणीय डा. आर.पी. हुड्डा हैं।

संगोष्ठी का विषय ऐसा है जिस पर पिछले 60 सालों से चर्चा होती रही है। प्रकाशन भी बहुत हुए हैं। हम लोगों ने खानापूर्ति के लिए इस विषय को नहीं चुना है। न ही इस विषय को इसलिए चुना कि यह बहुत सरल है। अब तक भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन को देखने का जो प्रभावी नजरिया है, वह वही है, जो 1947 से पहले का था। कुछ थोड़ी बहुत रद्दो–बदल हुई है। इसका नतीजा हम देख रहे हैं। आजादी के बारे में

चेतना सतही है। कुछ अर्थों में भ्रामक व छिछली भी है। इतिहास का एक अनुभव है कि जो देश गुलामी के दर्द को भूलता है, वह आजादी के मूल्य को भी ठीक से आंक नहीं सकता है। चौधरी रणबीर सिंह शोधपीठ का प्रयास है कि इस कड़ी में स्वतंत्रता आन्दोलन पर नयी दृष्टि से विचार–मन्थन हो। इसी कड़ी में आज सब विद्वान लोगों को आमंत्रित किया गया है।

शोधपीठ की ओर से इस संगोष्ठी में कोई मत रखने से परहेज किया गया है। विषय पर आमन्त्रित विद्वानों को बैठकर सुनने को बेहतर समझा गया। जितना फीडबैक मिला, उससे आगे बढ़ेंगे। यह दो दिन की संगोष्ठि एक शुरूआत है, मात्र कड़ी।

ज्ञान सिंह
अध्यक्ष।

संगोष्ठि–समीक्षा

महान् स्वतंत्रता सेनानी चौधरी रणबीर सिंह की स्मृति में 'स्वाभिमान दिवस'(23 मार्च) के अवसर पर ''भारत का स्वतंत्रता आन्दोलन : हरियाणा के विशेष सन्दर्भ में'' दो दिवसीय विचार संगोष्ठि का आयोजन महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक में आयोजित किया गया। 23 मार्च, 2011 को प्रातः 11:00 बजे तीनों शहीदों, सरदार भगत सिंह, राजगुरू व सुखदेव को श्रद्धांजली अर्पित करते हुए इस संगोष्ठि का प्रारम्भ हुए किया गया।

संगोष्ठि के मुख्य अतिथि वरिष्ठ शिक्षाविद एवं महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक के कुलपति माननीय प्रो. रामफल हुड्डा जी थे और मुख्य व्याख्यान राज्यसभा सांसद माननीय डा. राम प्रकाश जी द्वारा प्रस्तुत किया गया। संगोष्ठि के पहले सत्र की अध्यक्षता हरियाणा स्वतंत्रता सम्मान समिति के अध्यक्ष माननीय हरी राम आर्य ने की। संगोष्ठि के प्रारंभ में चौधरी रणबीर सिंह शोधपीठ की ओर से अध्यक्ष श्री ज्ञान सिंह ने मुख्य अतिथि, मुख्य वक्ता सहित संगोष्ठि में हिस्सा लेने आए सभी विद्वान सहभागियों एवं श्रोताओं का स्वागत किया और संगोष्ठि आयोजन की पृष्ठभूमि तथां संगोष्ठि की विषयवस्त पर प्रकाश डाला। संचालन श्रीमती विद्या मल्हान ने किया।

इस दो दिवसीय विचार–संगोष्ठि को चार सत्रों में बांटा गया था। प्रतिदिन मध्याह्न पूर्व और मध्याह्न उपरांत के दो सत्र रखे गए। प्रथम दिन के प्रथम सत्र में मुख्य वक्ता राज्य सभा सांसद डा. राम प्रकाश ने *'स्वतंत्रता आन्दोलन में आर्य समाज की भूमिका'* विषय पर गहन प्रकाश डाला। उन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन में हरियाणा क्षेत्र की भूमिका के सन्दर्भ में आर्य समाज के काम को रेखांकित किया और सरदार भगत सिंह के परिवार और चौधरी रणबीर सिंह के परिवारों की देन को याद कराया। इनके उपरांत मुख्य अतिथि प्रो. रामफल हुड्डा ने अपना संबोधन दिया।

मुख्य व्याख्यान एवं मुख्य अतिथि के संबोधन के बाद शोध–पत्रों की प्रस्तुति के क्रम में सर्वप्रथम सरदार भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरु की स्मृति में एक संकल्प पढा गया। इसके बाद दयाल सिंह कॉलेज, करनाल

के प्रवक्ता डा. कुशलपाल सिंह ने सरदार भगत सिंह पर अपनी प्रस्तुति, " *Ideological evolution of Bhagat Singh (भगत सिंह की वैचारिक यात्रा)"* पेश की। इनके बाद महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय में फाईन आर्ट्स विभाग की प्रवक्ता श्रीमती अंजली दूहन ने अपने विजुअल प्रोग्राम के जरिये, *"Shahid Bhagat Singh, Rajguru & Sukhdev : A Visual Tribute"* की प्रस्तुति दी।

शहीदों को समर्पित इस भाग के पश्चात सर्वप्रथम रोहतक क्षेत्र से सांसद श्री दीपेन्द्र सिंह हुड्डा द्वारा भेजी गई प्रस्तुति को समाजसेवी श्री सुरेश देशवाल ने पढ कर सुनाया। सांसद स्वयं इस स़त्र में आने पर असमर्थ थे। तत्पश्चात सत्र के अध्यक्ष माननीय हरी राम आर्य ने अपना अध्यक्षीय संबोधन दिया।

प्रथम दिन का दूसरा सत्र दोपहर बाद 3:00 बजे आरम्भ हुआ। इस सत्र की अध्यक्षता एचआईआरडी, नीलोखेड़ी के सलाहकार और कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र में इतिहास विभाग के पूर्वाध्यक्ष प्रो. रणबीर सिंह ने की। सर्वप्रथम महिला कॉलेज, अम्बाला की प्रवक्ता डा. अनुपमा आर्य को मंच पर आमंत्रित किया गया, जिन्होंने, *''हरियाणा में स्वतन्त्रता आन्दोलन के सन्दर्भ में आर्य समाज की भूमिका ''* विषय पर अपना शोध पत्र पेश किया। इनके उपरांत, खादी व ग्रामोद्योग, भारत सरकार के सहायक विकास अधिकारी श्री जगत सिंह ने *''स्वतन्त्रता आन्दोलन में चौधरी मातू राम आर्य व चौधरी रणबीर सिंह की भूमिका''* विषय पर अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। इसके बाद विभाग के सम्पादक श्री. सूरजभान दहिया ने *''भारत का स्वतन्त्रता आन्दोलन व हरियाणा का कृषक समाज''* विषय पर अपना गहन शोधपत्र पेश किया और बताया कि 1857 की क्रांति के पीछे ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त असंतोष रहा जिसके कारण यहां इनकी बडे पैमाने पर भागीदारी रही। तदुपरान्त, सत्र के अध्यक्ष प्रो. रणबीर सिंह ने *''हरियाणा में राष्ट्रीय आन्दोलन की विकास–यात्रा''* विषय पर अपना व्याख्यान दिया। इसके बाद खुला सत्र रखा गया, जिसमें सत्र के दौरान प्रस्तुत किए गए शोध पत्रों पर तार्किक बहस हुई और इसी के साथ प्रथम दिन का द्वितीय सत्र भी सम्पन्न हुआ।

संगोष्ठि के दूसरे दिन का प्रथम सत्र प्रातः 10:00 बजे आरंभ हुआ। इस सत्र की अध्यक्षता *"Indian Council of Scientific and Industrial Research"* नई दिल्ली से डा. इरफान हबीब ने की। अध्यक्ष महोदय ने प्रथम सत्र में सर्वप्रथम गर्वनमेंट कॉलेज, दुबलधन के इतिहास विभाग की प्रवक्ता डा. निर्मला कुमारी को शोध पत्र प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया, जिनका विषय, *"भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका : हरियाणा का एक अध्ययन (The Role of Women in the Freedom Movement of India : A case study of Haryana)"* था। इसके बाद डी.एन. कॉलेज, हिसार के इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा. महेन्द्र सिंह ने *''हरियाणा में 1857''* विषय पर अपना गम्भीर शोध पत्र पढ़ा, जिन्होंने इस विषय पर एक उपयोगी पुस्तक की रचना भी की है। इसके उपरांत भिवानी जिले के वरिष्ठ पत्रकार श्री विजय ग्रेवाल ने *''स्वतंत्रता आन्दोलन में आई.एन.आई. की बगावत''* विषय पर अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। तदुपरान्त, एडवोकेट एवं ग्रामीण भारत अधिकार मंच, रोहतक के संयोजक, लेफ्टिनेंट कर्नल चन्द्र सिंह दलाल ने *''स्वतंत्रता आन्दोलन में आजाद हिन्द फौज का योगदान''* विषय पर अपना शोधपत्र पढ़ा और अनेक अनजान पहलुओं को रेखांकित किया। सत्र के अंत में अध्यक्ष डा. इरफान हबीब ने *"भगत सिंह की क्रांतिकारी विचारधारा "* विषय पर अपना ओजपूर्ण व्याख्यान दिया। इसके बाद खुले सत्र का आयोजन किया गया और फिर सत्र समाप्ति एवं दोपहर के भोजनावकाश की उद्घोषणा की गई।

संगोष्ठि के द्वितीय और अंतिम सत्र की अध्यक्षता शहीद भगत सिंह रिसर्च फांउडेशन, लुधियाना के अध्यक्ष प्रो. जगमोहन को करनी थी किन्तु, अपरिहार्य कारणों से उनके समय पर न पहुंच पाने के कारण इस सत्र की अध्यक्षता श्री ज्ञान सिंह ने की। सत्र में निर्धारित प्रस्तुतियों से पहले संगोष्ठि में पधारे वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ, स्वतन्त्रता सेनानी एवं त्रिपूरा के पूर्व राज्यपाल चौधरी सुल्तान सिंह का विशेष व्याख्यान हुआ। उन्होंनें अपने विशिष्ट लहजे में वर्तमान परिस्थिति में उपजे सवालों को उकेरा और युवा वर्ग के सामने चुनौतियों को उभारा। इसके बाद महर्षि दयानंद

विश्वविद्यालय, रोहतक के इतिहास विभाग के पूर्व अध्यक्ष डा. बी.डी. यादव ने *"Historiography of Bhagat Singh"* विषय पर अपना शोधपत्र पढ़ा। इसी कम को आगे बढाया राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, जमावारी (हिसार) के प्राध्यापक डा. राजकुमार ने और *"Indian Voyage from a Dominion State to a Republic one contribution of Chaudhry Ranbir Singh"* नामक विषय पर शोधपत्र प्रस्तुत किया। तदुपरान्त डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, बहादुरगढ़ के प्राध्यापक श्री राकेश वत्स ने *"Contribution of Haryana in National Movement"* विषय पर शोध पत्र पटल पर रखा। अन्त में, भगत फूल सिंह महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां (सोनीपत) की प्रो. वाईस चांसलर, डा. बलबीर कौर ने *"Legacy of Freedom Movement and Role of Chaudhry Ranbir Singh in Constituent Assembly स्वतन्त्रता आन्दोलन की विरासत और संविधान सभा में चौधरी रणबीर सिंह "* विषय अपना व्याख्यान प्रस्तुत किया।

संगोष्ठि के दूसरे दिन के लिए स्वतन्त्रता आन्दोलन व सरदार भगत सिंह पर निर्धारित विशेष प्रस्तुति हेतु प्रो. जगमोहन सिंह के असाध ारण विलम्ब से पहुंचने के कारण भोजनावकाश के लिए इस सत्र का समापन हुआ और साथ ही दूर से आने वाले सहभागियों के लौटने की मजबूरी को देखते हुए राजेश कश्यप (संगोष्ठि आयोजन सचिव एवं शोध सहायक, चौधरी रणबीर सिंह शोधपीठ) ने संगोष्ठि में भाग लेने वाले विद्वान सहभागियों एवं श्रोताओं का धन्यवाद किया और सत्र समापन की घोषणा की।

भोजनावकाश के पश्चात, प्रो. जगमोहन ने उपलब्ध सहभागियों के साथ अपने विचार सांझे किए। उनके विशेष व्याख्यान का कार्यक्रम रखा गया, जिसमें उन्होंने विस्तार से शहीदे आजम भगत सिंह के व्यक्तित्व एवं उनकी क्रांतिकारी विचारधारा और देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में उठे सवालों पर अपना व्याख्यान प्रस्तुत किया। उनके व्याख्यान को इस प्रकाशन में शामिल किया गया है।

प्रकाशन हेतु प्राप्त प्रस्तुतियों की भाषा को बदला नहीं गया है। अतः यह प्रकाशन हिंदी एवं अंग्रेजी भाषाओं में है। संगोष्ठि के लिए प्राप्त अन्य प्रस्तुतियों पर सम्पादक मंडल ने विचार मंथन किया और जहां कहीं सम्पादन की आवश्यकता समझी, वह जिम्मेदारी अवश्य निभाई गई किन्तु भाव व विषयवस्तु के साथ छेडछाड नहीं हुआ है।

प्रकाशन में प्रस्तुत आलेख अथवा व्याख्यानों को विषय–वस्तु के अनुसार अलग–अलग भागों में रखा गया है। संगोष्ठी में प्रस्तुतियों के अनेक आलेख समय पर आने में विलम्ब हुआ है। जिन प्रस्तुतियों के आलेख अन्त तक नही पहुंचे, उन्हें छोड दिया है।

राजेश कश्यप
शोध सहायक

भगत सिंह के प्रति
(श्रद्धा–संकल्प)*

हमारे स्वतन्त्रता आन्दोलन के महानायक सरदार भगत सिंह, राजगुरू, सुखदेव के शहीदी दिवस पर इन शहीदों को हमारा शत–शत नमन। जिस समय यहां ब्रिटिश शासन की गुलामी में जनगण कराह रहे थे और जब देश को सबसे अधिक आवश्यकता थी ठीक उसी समय भगत सिंह राष्ट्र के पटल पर हाजिर हो गया। समय नहीं गंवाया। लम्हे को ठीक से पकड़ने में गजब की समझ का परिचय दिया और एक धमाके से वह पूरे राष्ट्र का चहेता बेटा बन कर बिदा हो गया, जिसने शालीन आचरण, अदम्य साहस, अतुलनीय निष्ठा का नया कीर्तिमान बनाया, उच्च सामाजिक चेतना का गजब परिचय दिया तथा इंकलाबी समझ को नया आयाम दिया। 23 मार्च 1931 को छोटी सी उम्र में वह शहीद हो कर इस काफिले में अजीम बन गया था और हंसते–हंसते देश को अपने विचार एवं करदार से मोहित कर कुर्बान हो गया। भारत, और सम्भवतः – पूरी दुनियां में अपने समय का वह अतुलनीय नौजवान बन गया। जब संशय की सी स्थिति से देश गुजर रहा था ठीक उस घड़ी, जनजीवन की नब्ज पर हाथ रख कर चल रहे चंद नौजवानों में भगत सिंह–चन्द्रशेखर की जोड़ी सीख लेने लायक अगुआ बन कर उभरी और वस्तुतः नौजवानी का प्रतीक बन गई। देश उन्हें सदा याद करता रहेगा। हम उन्हें अपनी तहे–दिल से अकीदत पेश करते हैं।

रोहतक, 23 मार्च, 2011

---

* *संगोष्ठि के आरम्भ में पारित संकल्प।*

खण्ड–2

मुख्य व्याख्यान

हरियाणा में आर्य समाज और स्वतंत्रता आन्दोलन

डा. राम प्रकाश
(माननीय सांसद, राजसभा)
23 मार्च, 2011

मेरे बहुत पुराने मित्र, छोटे भाई, साथी, सहयोगी और आपके विश्वविद्यालय के कुलपति, मेरे मूल माननीय भाई आर.पी.हुड्डा जी, इस गोष्ठि के सर्वेसर्वा सम्मानीय ज्ञान सिह जी, मंच पर विराजमान स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी सिपाही माननीय हरी राम आर्य जी, इस सभागार में बैठे बड़े–बड़े विद्वानों, बहनों और भाईयो!

आप और हम उन तीन शहीदों को याद कर रहे हैं, जो आज के दिन अपने देश की आजादी के लिए फांसी पर चढ़े थे और साथ–साथ याद कर रहे हैं चौधरी रणबीर सिंह को। उनकी स्मृति में इस संगोष्ठि का आयोजन किया गया है। मैं समझता हूँ कि आयोजकों की बुद्धिमतता है कि जो वे इतिहास में जुड़े हुए थे, उनके सम्मान में आज की संगोष्ठि का आयोजन किया है।

शहीद भगत सिंह हों, राजगुरू या सुखदेव हों, ये कोई सामान्य व्यक्तित्व नहीं थे। वे कैसे पैदा हुए? कैसे भगत सिंह, भगत सिंह बना? यह एक लंबी गाथा है। वह कोई एक पीढ़ी का संघर्ष नहीं है। तीन पीढ़ी का संघर्ष है। अगर उनके दादा आर्य समाज की विचारधारा से प्रभावित न होते, अगर दादा जी, स्वामी दयानंद से यज्ञोपवित ले करके आर्य समाजी विचारों के न बनते तो उस समय यह भूमिका तैयार नहीं हो सकती थी, जिसने आगे चल कर भगत सिंह को जन्म दिया। हालात व्यक्ति पैदा करते हैं। बिना किसी हालात के किसी व्यक्ति का निर्माण नहीं होता। मैं कई बार सोचता हूँ। 1947 से पहले देश में बड़े–बड़े लोग पैदा हुए। सन् 1947 के बाद इस बात की होड़ है कि हम छोटे से छोटे आदमी को समझें। इसका कारण है कि उस वक्त लक्ष्य कुछ और था, लेकिन आज लक्ष्य कुछ और है। दादा किशन सिंह, जोकि हम सबके दादा हैं, परदादा हैं, वे एक ऐसे

व्यक्ति थे, जिनकी नस–नस के अन्दर आर्य समाज था। मैं अपनी तरफ से कुछ नहीं कह रहा। भगत सिंह की भतीजी वीरेन्द्र सन्धू हैं, उन्होंने एक किताब लिखी है, 'युगदृष्टा भगत सिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे', इसे राजपाल एण्ड सन्स ने प्रकाशित किया है। मैं हर भाई से आग्रह करूंगा कि वे इसे खरीदें व इस किताब को पढ़ें। मुझे तो इतनी प्रिय लगी कि मैं इसकी एक बार चालीस प्रतियां लेकर आया और मैंने उसका अध्ययन किया।

किताब का पहला ही वाक्य पढ़ोगे तो मोहित हो जाओगे। मैं नहीं समझता कि किसी साहित्यकार की, इतिहासकार की कलम उतनी सशक्त हो सकती है, जितनी वीरेन्द्र सन्धु जी की है। वीरेन्द्र सन्धु इसमें लिखती हैं कि मेरे दादा एकदम आर्य समाजी थे। बैठे–बैठे कुछ न कुछ लिखते रहते थे। लोग पूछते थे कि बड़े सरदार जी क्या कर रहे हो? किसी को पता नहीं चलता था, कि वे लिखते क्या हैं? लेकिन, बाद में पता चलता था कि वह आर्य समाज के बारे में कुछ पम्फलेट्स लिखते रहते हैं। हमारा दुर्भाग्य है कि आज वह साहित्य उपलब्ध नहीं है। वह आर्य समाज के दर्शनों का इजहार करते थे। लेकिन पूर्णतया वैदिक धार्मिक थे। वीरेन्द्र सन्धु लिखती हैं कि गाँव के लोगों की आर्थिक मदद करते हुए उन्होंने गाँव के अन्दर गुरूद्वारा बनवाया। लेकिन, कभी मत्था टेकने नहीं जाते थे। क्योंकि, वे इसको भी एक मूर्ति पूजा मानते थे। आप विचारों की दृढ़ता देखिए। उनके बेटे ने सभी संस्कारों को लेकर, चाहे अर्जुन सिंह जी की चर्चा करो, चाहे किशन सिंह जी की चर्चा करो, उनके विचारों को लेकर एक वातावरण पैदा किया है इस देश में। वीरेन्द्र सन्धु जब भगत सिंह की माता के बारे में बात करती हैं तो संस्मरण लिखते हुए, कहती हैं कि एकबार उनसे पूछा गया कि कोई संस्मरण सुनाओ, तो उन्होंने अपने विवाह का संस्मरण सुनाया। संभवतः उनके पिता का नाम, अगर मैं गलती नहीं करता, बलिराम सिंह था। कहने लगी कि गाँव में इस बात की चर्चा थी कि बलिराम सिंह के घर ऐसा दामाद आया है कि वो विवाह संस्कार के मंत्र भी खुद बोलता है। अन्दाजा लगाएं कि कितनी बड़ी छाप थी इस

परिवार के ऊपर। उस वातावरण ने भगत सिंह को पैदा किया। भगत सिंह और जगत सिंह, दोनों को यज्ञवेदी पर बैठा कर यज्ञोपवीत संस्कार करवाया गया तो दादा ने खड़े होकर एक को एक साईड लिया और दूसरी को दूसरी साईड में लिया और कहा कि इन दोनों बेटों को देश की बलिवेदी पर अर्पित करता हूँ।

जब भगत सिंह अपना घर छोड़कर गए, तो वे मेज की दराज में एक पत्र लिख कर छोड़ कर गए और उसमें लिखा कि ''दादा हमें आपने देश के लिए अर्पित किया है, मैं देश के लिए हूँ। जो लक्ष्य आपने रखा था, मैं उसके लिए चल पड़ा हूँ।'' अब आपको यह जानकर सुखद अनुभूति होगी कि उन्होंने जो पत्र लिखा, उस पर 'ओउम' लिखा हुआ था। जिस तरह आर्य समाज के लोग तीन अक्षरी ओउम लिखते हैं, उस तरह का ओउम लिखा हुआ था। उनके बाकी पत्रों को भी आप ध्यान से देखिए, उनपर ओउम लिखा हुआ है, उनमें नमस्ते लिखा हुआ है, जिसका मतलब यह है कि परिवार की एक पृष्ठभूमि है, एक विचारधारा है, एक चिन्तन है। उसी चिन्तन ने भगत सिंह के पिता को बलिदानी बनने का एक तरीका दे दिया। जब सरदार किशन सिंह ने विधानसभा का चुनाव लड़ा तो पार्टी ने उनको एक गाड़ी दी। चुनाव के बाद उन्होंने गाड़ी चुनाव दफ्तर में खड़ी की और कहा कि आप अपनी गाड़ी संभालो, अब चुनाव का काम हो चुका है। वो हालात देखें और आज के हालात देखें, जिस वातावरण में, मैं और आप जी रहे हैं, उसको देखें। इन दोनों हालातों की तुलना करके देखें कि हम क्या हैं?

सरदार अजीत सिंह इतने कट्टर आर्य समाजी थे कि लोगों ने यह कहकर ठुकरा दिया था कि यह तो आर्य समाजी है। इससे व्यवहार नहीं हो सकता हैं। जमाना तो वह भी यही था, जिसमें चापलूसी का काम था।

बाल कृष्ण परमहंस जी ने कुछ लाईनें लिखी हैं और ऐसे लोगों के सन्दर्भ में संभवतः ये टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा है –

या बबूल को वट–वृक्ष कहो
या धूप ताकते खड़े रहो

अन्दाज तीसरा जीने का
हमको तो मालूम नहीं।

उस जमाने के अन्दर एक वातावरण था, जिसमें भगत सिंह पैदा हुआ।

अजीत सिंह के बारे में एक घटना है। दशकों, 34 वर्षों के लगभग, वहां रहे। निडर आदमी था, यह कहना कि वो शहीद हो गये, उन्होंने बलिदान दे दिया या किसी चौंक के पीछे रहे, अन्डरग्राऊण्ड रहे, वाक्य साध ाारण हैं। कहना आसान है, लेकिन जो आदमी जी रहा होता है, उससे पूछो कि उसके ऊपर क्या बीतती है?

वीरेन्द्र सन्धु ने एक बात और लिखी है कि ''पड़ौस की औरतें हमारी चाची के पास आती हैं और उन्हें कहती हैं कि सरदारनी! सरदार की कोई चिठ्ठी तो नहीं आई? ना बहन! नहीं आई। कोई मेम रख ली होगी। अब उनको मेरी क्या जरूरत?'' यह तो कहकर चली जाती थी, यह मालूम नहीं कि यह फिकरा संवेदना में कहा था या कैसे कहा था? लेकिन, जिसको ये फिकरा कहा गया था, उसके ऊपर क्या बीतती होगी, इसका कौन अन्दाजा लगा सकता है?

इतिहासकारों ने भी देश की आजादी के अन्दर जो खून का बलिदान हुआ है, उसका लेखाजोखा तो तैयार किया है? लेकिन, जो भावनाओं का बलिदान हुआ है, उसका लेखाजोखा किसी ने नहीं किया। वह असंभव सा लेखाजोखा है।

एक ऐसे वातावरण में एक व्यक्ति पैदा हुआ। शहीदों को मैं बांटता नहीं। शहीद सबकी धरोहर होते हैं। शहीद किसी एक का नहीं होता, किसी एक कौम का नहीं होता। मैं तो यह समझता हूँ कि किसी एक देश की भी विरासत नहीं होता। वह तमाम दुनिया के लोगों को प्रेरित करता है, लेकिन मैंने एक पृष्ठभूमि की बात कहनी चाही, वहां से चला एक इतिहास और वह पूरा होता है, हुड्डा परिवार के साथ। चाहे दादा मातूराम थे, चाहे रामजी लाल जी थे और चाहे उसके बाद चौधरी रणबीर सिंह, उसी प्रेरणा को ले करके आगे चले।

जब अजीत सिंह जी को काले पानी की सजा हुई तो चौधरी मातूराम के साथ भी वही बात हुई। उन्हें इसलिए गिरफ्तार नहीं किया गया कि कहीं यहां किसान बगावत न कर दें। अंग्रेज सोचकर काम करता था। बिना सोचे–समझे नहीं करता था। और उसकी वजह से कई आदमियों को वो स्टेट्स, वो दर्जा जिन्दगी में मिलने से रह गया, जिस दर्जे के वे हकदार थे। मैं यह समझता हूँ कि काला पानी की सजा हो जाती, तो कृति इतिहास में वही नाम होता हुड्डा परिवार का जो भगत सिंह का नाम है या सरदार अजीत सिंह का नाम है।

मैं इसे एक रूप में और कहना चाहता हूँ। नेता जी सुभाष चन्द्र बोस के साथ ढ़िल्लों, सहगल और शाहनवाज, ये तीन व्यक्ति कंधे से कंधा मिलाकर काम करते थे। वे एक बार कुरूक्षेत्र यूनिवर्सिटी में आए थे। मेरा यह सौभाग्य है कि वे एक दिन सुबह–सुबह आए, उन्होंने दरवाजा खटखटाया। आकर कहने लगे कि ''मैंने रैस्ट हाऊस छोड़ दिया है।'' हम घबरा गया कि किसी ने बदतमीजी कर दी होगी। किसी को क्या पता कि कर्नल ढ़िल्लों कितना बड़ा आदमी है। मैंने उनके घुटने छु कर माफी मांगी। वे कहने लगे कि ''नहीं–नहीं ऐसी कोई बात नही है। अपनी मर्जी से छोड़कर आया हूँ।'' मैनें कहा कि ''फिर अब क्या हुक्म है?'' कहने लगे कि ''मैं अब इस मकान में रहूँगा। मैंने अपने लिए कमरा छांट लिया है। ऊपर के जो दो कमरे हैं, इनमें रहूँगा और तू मेरा होस्ट नहीं है।'' मेरा बड़ा लड़का उस वक्त 10–15 साल का होगा। कहने लगे कि ''मेरा होस्ट वह है, मेरे प्रोग्रेम वह निश्चित करेगा, वह जाने और मैं जानूं। तू आराम से बैठ।''

रात को वे सोफे पर बैठ जाते। हम खाना खाकर नीचे बैठ जाते। वे भी इस बात का ध्यान रखते कि सबने खाना खा लिया है। अब बैठ कर बातें करेंगे। उस वक्त उन्होंने एक बात कही थी, जिस बात के लिए मैंने इस प्रसंग को दोहराया। उन्होंने कहा कि ''अगर उस वक्त हम तीनों कर्नल ढ़िल्लों, सहगल और शाहनवाज को फांसी की सजा हो जाती तो यह हिन्दुस्तान में पहली त्रिमूर्ति भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव के बाद ऐसी ही दूसरी त्रिमूर्ति होती।''

तो, एक परंपरा का चलन है। भौतिक इतिहास जुड़ा हुआ है, उनके साथ और जब अजीत सिंह अण्डर ग्राउण्ड हुए तो वे सन्यासी का भेष बनाकर चौधरी मातूराम जी के परिवार में रहे। किसी को पता ही नहीं लगा कि ये आर्य समाज का साधु है या कौन है? उन्होंने कुछ किताबें लिखीं थीं। मिलती वे भी नहीं हैं। 'विधवा की पुकार' नाम से पुस्तिका लिखी थी। आर्य समाज के प्रभाव की वजह से। हमारा दुर्भाग्य कि आज हमारे पास वह साहित्य नहीं है। वह देश की आजादी की परंपरा चली, जिसमें लाला लाजपतराय ने लाठियां खाईं, मैं नहीं समझता कि लाला लाजपतराय का देहावसान लाठियों की चोट से हुआ। शारीरिक चोट से नहीं हुआ। लेकिन, जो लाठी भारत की अस्मिता पर पड़ी, भारत के स्वाभिमान पर पड़ी, एक अंग्रेज भारत के अस्मिता के ऊपर, भारत के स्वाभिमान पर चोट कर सकता है, उस चोट को लाला जी नहीं सह पाए और शहीद होकर चले गए। उस परिवार का, इस परिवार के साथ, हुड्डा जी, रणबीर जी के परिवार के साथ जो संबंध है, वह मैं अपने आप, अपने शब्दों में नहीं कह रहा, के.डब्लू.जोन्स ने आर्य धर्म पर एक किताब लिखी है। शायद आज से 40 साल पहले लिखी। उसमें उसने आधा पृष्ठ इस बात पर लिखा है कि हरियाणा में जो जन क्रांति हुई, हरियाणा में आर्य समाज का जो प्रचार हुआ, वह दो परिवारों की वजह से है, एक लाला लाजपतराय और यह जो मातूराम जी, रामजी लाल का परिवार था। इनकी वजह से ही यह सब संभव हुआ। यह मैं नहीं कह रहा हूँ, यह तो एक विदेशी इतिहासकार कह रहा है और तथ्यों के आधार पर कह रहा है। मैं कहूँ तो यूं लगेगा कि क्योंकि आजकल चौधरी भूपेन्द्र सिंह हुड्डा चीफ मीनिस्टर है, शायद उनको खुश करने के लिए कह रहा होगा। ऐसी बात नहीं है। मैं आर्य समाज के इतिहास के साथ कोई किसी किस्म की खिलवाड़ नहीं करना चाहता। उन्होंने लिखा है कि एक वर्ग के अन्दर लाला लाजपतराय ने काम किया और दूसरे किसान वर्ग के अन्दर जो काम इस परिवार ने किया, उसकी वजह से एक जागृति पैदा हुई, एक ऊर्जा पैदा हुई। कृपया आप मेरी बात को उसी भावना से लें, जिस भावना से मैं कह रहा हूँ।

यूं तो सारा हिन्दूस्तान गुलाम था। रियासतें और भी ज्यादा गुलाम थीं। तमाम हिन्दूस्तान पिछड़ा हुआ था। लेकिन, जिस क्षेत्र को आज हरियाणा कहते हैं, यह तो ज्यादा पिछड़ा हुआ था। उसी हरियाणा में वही रोहतक क्षेत्र, आज प्रदेश का अग्रणी क्षेत्र है और वह आजकल हरियाणा की राजनैतिक राजधानी माना जाता है। जो विचार यहां से पनपता है, वह तमाम हरियाणा को प्रभावित करता है। इसको क्या कहूं तमाम लोगों का प्रवेश कहा जाता है।

पिता जी के साथ कभी शहर में चला जाता और मूर्खता की बात कोई हो जाती तो कहते कि तूं तो फलां का फलां ही रहा। मैं गलत बात नहीं कह रहा हूँ। लेकिन, अगर यहां जागृति आई है, अगर हरियाणा के इस क्षेत्र ने तरक्की की है तो इसमें सबसे ज्यादा योगदान अगर किसी प्रकार का है तो आर्य समाज के प्रचार का है। किसी दूसरे का योगदान इसमें नहीं है। मैं इस नाते आपसे बात कह रहा हूँ कि ऋषि दयानंद की शिक्षाओं ने यहां के आदमियों को जागृत किया और ऋषि दयानंद ने इस बात को समझा कि यहां का किसान, जो जाट वर्ग से ताल्लूक रखता है, वह भोला है। जैसे हम किसी अपने भाई को, जो भोला हो, चाहे वो गलती कर दे, कोई मूर्खता की बात कर दे, उसे बहुत प्यार से उसके गाल पर थप्पड़ लगाते हुए कहेंगे, तू तो भोला है। इसी तरह से दयानंद ने सत्यार्थ प्रकाश में, अगर किसी के नाम के साथ जी लगाया है, तो जाट के साथ लगाया है, जाटजी कहकर पुकारा है, उन्होंने ऐसा उसके भोलेपन की सराहना करते हुए कहा है। यह ऋषि दयानंद की शिक्षाओं का प्रभाव पड़ा है, जिसने सारे वातावरण को बदलने का प्रयास किया।

तरक्की के लिए राजनीतिक गुलामी से मुक्ति ही नहीं, बल्कि शिक्षा की भी जरूरत थी। सामाजिक उन्नति होनी भी जरूरी थी। लेकिन, सामाजिक उन्नति के अन्दर यहां की जो व्यवस्थाएं थीं, वे बहुत ज्यादा वाजिब थीं। उसी तरह से स्वामी दयानंद ने सत्यार्थ प्रकाश लिखा। एक बृजानंद शर्मा, सनातन धर्म के बहुत बड़े विद्वान हुए। शुरू में वे आर्य समाज के प्रभाव में थे। लेकिन, जब उनको लगा कि रोजी–रोटी तो दूसरी जगह

अच्छी मिल सकती हैं तो उन्होंने फिर सत्यार्थप्रकाश के पक्ष में 1940 में लन्दन में एक किताब लिखी, जिसका उन्होनें नाम रखा, 'वैदिक सत्यार्थ प्रकाश'। उन्होंने यह दिखाना चाहा कि यह सत्यार्थ प्रकाश आर्य समाजियों का मनगढ़ंत है। लेकिन, जो असली सत्यार्थ प्रकाश है, वह तो मेरे पास है। उसके अन्दर जो कुछ लिखा गया है, उसकी मैनें अपनी किताब में कुछ चर्चा की है। सारे प्रसंग आपके सामने नहीं कह पाऊंगा। उसमें उसने गिन–गिन कर लिखा है और हर बिरादरी का नाम लेकर लिखा है, चाहे वह बनिया है, चाहे वह लोहार है, चाहे वह सुनार है, चाहे वह नाई है, झीमर है। उसने इन सबको शुद्र कहा है। और शुद्र ही नहीं कहा, उसने इसमें दो किस्म के शुद्र माने हैं। एक वे जो छुए नहीं जा सकते और दुसरे जिनको छुआ तो जा सकता है, लेकिन, उनके साथ खाने–पीने का व्यवहार नहीं हो सकता। कुछ लोगों को उनमें रखा, जिनके साथ खाने–पीने का व्यवहार न हो। आज हम जिसे दलित वर्ग कहकर पुकारते हैं, उसको उनमें रखा, जिनके साथ खाने–पीने का, छूने का व्यवहार नहीं हो सकता था।

एक अजीब स्थिति रही, उस माहौल में। उस वक्त उसने प्रश्न पैदा किया कि एक मिस्त्री एक मन्दिर बनाता है, एक मिस्त्री मूर्ति का निर्माण करता है, क्या उसका मन्दिर में जाने का हक है? वह इन सारी जातियों का नाम लेकर कहता है कि नहीं, कोई हक नहीं है। अगर वह उसके परिसर में भी चला जाएगा तो जो देवता का प्रभाव है, वह नष्ट हो जाएगा और उस राज्य के अन्दर अकाल पड़ेगा, राजा की मौत हो जाएगी। राजा ऐसे व्यक्ति का जो जन्मना ब्राह्मण नहीं है और ब्राह्मणोचित कार्य करना चाहता है, तो वह उसका वध कर दे। ऐसे शब्द उसमें है।

मैनें पृष्ठ और दूसरी चीजें कोट की हैं। मैं कई बार सोचता हूँ कि एक आदमी मूर्ति बनाता है, मन्दिर बनाता है, मूर्ति वह देख नहीं सकता, मूर्ति वह छू नहीं सकता। हालत तो ऐसी है कि जैसे माँ बेटे को जन्म तो दे, लेकिन फिर उसे छाती से लगा कर उसका मुखड़ा चूम न सके। इससे बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति और क्या हो सकती है? इससे अजीब विडम्बना और क्या हो सकती है। मैं सोचता हूँ कि सींखचों के पार, दरवाजे के पीछे

बन्द उस मूर्ति की कल्पना करके, वह व्यक्ति जिसने उसे तराश करके मूर्ति बनाया है, वह व्यक्ति खड़ा सोचता होगा कि मेरे हाथों के तराशे हुए पत्थर के सनम, भगवान बने बैठे हो, बुतखानों में। ऋषि दयानंद और आर्य समाज के आने से पहले, अगर हमें कोई कुछ नहीं मानता था तो कोई बात नहीं। यहां तो भगवान का भी देश निकाला हो गया था। भगवान की भी कोई प्रतिष्ठा नहीं रही थी। यहां तो मूर्तियों की प्रतिष्ठा थी।

मैं कई बार इस बात की कल्पना करता हूँ। अगर इस जमाने को पत्थर का युग कहो तो वाकई पत्थर का युग है। जो मान्यता इस जमाने में पत्थर की मूर्तियों को मिली वह तो दूसरों को नहीं मिली। हमारा हरियाणा भी इन बिमारियों के साथ जकड़ा हुआ है। अगर उसका किसी ने विरोध किया और खण्डन किया तो आर्य समाज के लोगों ने ही किया। आर्य समाज ने एक जागृति पैदा की। जो सामाजिक व्यवस्था थी, उसको तोड़ कर एक नई व्यवस्था पैदा करने का काम किया। मैं ये समझता हूँ कि भ्रमजाल तो आज भी उतना ही है। आज क्या हालत है?

कहीं आपको श्री गणेश जी दूध पीते मिलेंगे। मैं किसी की भावना को ठेस नहीं लगा रहा। मुझे क्षमा करेंगे। लेकिन आपसे सच कहने की अनुमति मिल रही है। आप बुद्धिजीवी व्यक्ति हैं। मुझे कहने दीजिए अपने मन की बात। कहीं आपको वास्तुकला के नाम पर, वास्तुशास्त्र के नाम पर, इधर–बैठना, कुर्सी का मुँह उधर हो, पीठ तुम्हारी उधर होनी चाहिए, क्या तमाशा बना रखा है?

उस देश का क्या बनेगा, देश की आजादी के 70 साल के बाद, जिसका एक मुख्यमंत्री यह कहता है कि मेरे ऊपर काला जादू कर दिया गया है। मेरी तो मौत हो जाएगी। इसलिए, वह दिन–रात अर्द्ध नंगा सोता है, इस बात को आप मानसिक आजादी कहोगे? वह नदी के अन्दर अर्द्ध नंगा होकर जल चढ़ाता है। क्या कहोगे आप इसे?

आज का बुद्धिजीवी कहीं इस भ्रमजाल में फंसा हुआ है। मैं समझता हूँ कि जैसी परिस्थितियां उस वक्त थीं, उससे कम बेहतर परिस्थितियां आज भी नहीं है। परिस्थितियां आज भी उसी तरह ही भयंकर हैं।

पंजाब यूनिवर्सिटी में एक बार कांग्रेस सरकार का अधिवेशन हुआ। मैं उन दिनों रिसर्च पर बैठा हुआ था। मैंने मुख्य अतिथि का प्रवचन सुना। उनका साईंस के बारे में लेक्चर था। मेरा मन सुनकर बड़ा गद्‌गद्‌ हुआ कि हिन्दुस्तान में ऐसे विद्वान भी हैं। लेकिन अगले दिन अखबार पढता हूं तो अखबार में लिखा हुआ था कि 'थैंक्यू भगवन्तम' कि उसके बाद वे एक ऐसे मन्दिर में गए, जहां आदमी कहता है कि यह तुम हो। कहने का तात्पर्य यह है कि जो बात क्लास रूम में पढ़ाने वाला व्यक्ति जब मंदिर में जाता है तो साईंस को घर पे छोड़कर जाता है और वहां कहता है कि आज मुझसे भूल हो गई। क्या कहोगे, इसको? साईंटिफिक कहोगे? इसको मानसिक गुलामी या मानसिक आजादी कहोगे? क्या कहोगे इसको? इस भ्रमजाल को तोड़ने के लिए, उस जमाने में आर्य समाज के लोगों ने शिक्षा का प्रचार–प्रसार करना चाहा।

दलित को धर्म का बिल्कुल हक नहीं था। वेद पढ़ने का हक नहीं था। मंत्र सुनने का हक नहीं था। हमारे महेशचन्द जी बहुत बड़े विद्वान हुए हैं, अरबी–फारसी के भी बहुत बड़े काबिल विद्वान थे। उनकी बेटी हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस से शिक्षित है। ये लगभग 1944 की बात है। संस्कृत में एम.ए. करना चाहती थी, वेद विषय से। लेकिन उस वक्त वहां पर कुलपति कौन थे? डा. राधाकृष्णन। हिन्दूस्तान के महान दार्शनिक। उनकी विद्वता के लिए मैं सिर झुकाता हूँ। बाद में वे हिन्दूस्तान के राष्ट्रपति बने, जिसे फिलोस्फर किंग भी कहते हैं, मैं सिर झुकाता हूँ।

लेकिन जब उनके सामने यह सवाल पैदा हुआ कि इस बेटी को वेद विषय से एम.ए. करने की अनुमति हो। सर ने इसे रद्‌द कर दिया और कहा कि लड़कियां वेद नहीं पढ़ सकतीं। मेरा वह ज्ञान कहां गया, जो मैं अपनी किताबों में लिखता हूँ। क्या वह मेरे जीवन में है? क्या मैं कोई मूल्य चुकाने के लिए तैयार हूँ? लंबे–चौड़े भाषण मैं दे दूँ, आप दे दो। दूसरों को उपदेश दे सकते हैं। लेकिन, अपने आप पर अनुसरण करते हुए झिझकते हैं। आर्य समाज के लोगों ने बड़ा आन्दोलन किया। मैं आभारी हूँ। मैं मदन मोहन मालवीय जी की पुण्य स्मृति को सिर झुकाता हूँ। उनका अभिनंदन

करता हूँ। उनके कहने पर उस बच्ची को दाखिला तो मिल गया, लेकिन अगले साल वह विभाग तोड़ दिया गया,। यह स्थिति है शिक्षा की।

आज भी जो कुछ बच्चों को दिया जाता है, वह उसको भारतीय मूल से उखाड़ रहा है। हम नहीं जानते वे क्या पढ़ा रहे हैं। हम नहीं जानते कि मेरे बच्चे को क्या पढ़ा रहे हैं। हम उसको क्या बनाना चाहते हैं? सरकार मेरी पार्टी की हो, सरकार किसी भी पार्टी की हो। लेकिन हमारा जो दृष्टिकोण है, उस तरह का दृष्टिकोण नहीं बन पाया, जिस तरह के वे लोग जिन्होंने बलिदान दिया, शहीदी दी, कुर्बानी दी, जिस तरह का उन्होंने त्याग किया।

भगवान दास माहर ने एक किताब लिखी है, 'यश की धरोहर'। उस किताब में उसने कुछ शहीदों के संस्मरण लिखे हैं और उसमें वे लिखते हैं कि लोग हमें देखकर ये समझते हैं कि हमने बड़ा बलिदान दिया। बलिदान तो उन लोगों का था, जिन लोगों ने ये काम किया। इसलिए किताब का नाम रखा, 'यश की धरोहर'। हमारे सिर धरती माँ का जो बोझ था, वो उतारना चाहा।

उसमें चन्द्र शेखर आजाद के लिए एक संस्मरण लिखा है। उसकी माँ को, झोंपड़ी में रहने वाली एक माँ जिसका एक बेटा चला गया, आजादी के लिए और इन्होंने भगवान दास मोहर और उनके एक साथियों में से एक सदा शिवराव भाऊ ने माँ की सेवा की। तो माँ कभी–कभी प्यार से कहती कि सत्तू, सदाशिवराव, सत्तू अगर मेरा चन्दू (चन्द्रशेखर) आज जिन्दा होता, तो इससे ज्यादा तो वह भी मेरी सेवा नहीं करता। लेकिन, उसमें वह एक जगह पीड़ा का फिकरा भी लिखता है कि लोग आते–जाते कहते कि माँ तेरे बेटे का बड़ा नाम है। उसकी जय–जयकार हो रही है। वो तो चले जाते, यह कहकर। पर माँ से पूछो कि उसके दिल पर क्या बीतती थी। उसका एक बेटा था, वही चला गया। मैं कई बार सोचता हूँ कि लोग यह तो चाहते हैं कि कोई दयानंद बन जाए, लेकिन दयानंद के लिए घर छोड़ना पड़ता है। दयानंद बनने के लिए जहर के प्याले पीने पड़ते हैं। दयानंद बनने के लिए हर किस्म का अपमान सहन करना पड़ता है। फिर वे कहते हैं कि तुम्हारे घर से बन जाए, मेरे घर से न बने। आज यही तो एक समस्या है कि हम अपने से बात शुरू नहीं करना चाहते, हम दूसरे

आदमियों से बात शुरू करना चाहते हैं। इसीलिए एक आन्दोलन शुरू किया गया था शिक्षा का। चाहे वो लाला लाजपत राय थे और चाहे इस क्षेत्र में चौधरी मातूराम जी थे। आर्य समाज के प्रभाव में आ करके इन लोगों ने जो आर्य समाज का काम किया, जो शिक्षा का काम किया, दिमागी गुलामी को तोड़ने का, देश की आजादी लाने के लिए, दिमागी गुलामी और सामाजिक गुलामी तोड़ने का उतना ही जरूरी था। इसलिए महात्मा गांध ी कहीं चरखा बुनना शुरू कर देते, कहीं कंपनी के खिलाफ काम करना शुरू कर देते, कहीं देवनागरी के प्रचार का काम शुरू कर देते। क्योंकि ये एक दूसरे के पूरक हैं, एक दूसरे के जरूरी तत्व हैं ये।

लाला लाजपतराय जी ने दयानंद कॉलेज लाहौर की स्थापना भी की थी। तीन व्यक्तियों का सबसे बड़ा योगदान है, लाला लाजपत राय, पंडित गुरूदत्त और महात्मा हंसराज। उन्होंने इधर आकर शिक्षा का प्रचार किया। यहां चौधरी रणबीर सिंह के पूर्वजों ने एंग्लों–संस्कृत जाट स्कूल की स्थापना की। क्योंकि जो आर्य समाज के लोग थे वे स्कूलों का डी.ए.वी. नाम रखते, जिसका मतलब था 'दयानंद एंग्लो वैदिक, आर्य नाम रखते थे या एंग्लो संस्कृत रखते थे, जो आज दूसरे नाम से जाना जाता है। वह एक प्रचार था, वह एक प्रभाव था और वह संस्कृति जीवित है, जहां स्वामी श्रद्धानंद ने गुरूकुल की स्थापना की, वहां इस परिवार ने, अर्थात चौधरी मातूराम के परिवार ने, चौधरी रणबीर सिंह के परिवार ने और पीरू सिंह के परिवार ने उसी परंपरा को जीवित रखते हुए, यहां अनेक गुरूकुलों की स्थापना की, ताकि बच्चों को शिक्षा मिले। मैं इसको एक बहुत बड़ी श्रद्धांजली मानता हूँ, कि चौधरी भूपेन्द्र सिंह हुड्डा जी ने उसे विश्वविद्यालय बनाया। उस गुरूकुल को जो महात्मा फूल सिंह ने, रूप सिंह ने स्थापित किया था, नारी शिक्षा के लिए, बहुत बड़ा काम था। सामान्य काम नहीं था। मैंने पुराने लोगों से पूछा कि तुम्हे कैसा लगता था कि जब यहां गुरूकुल स्थापित हुआ? उन्होंने कहा कि हमें लगता था कि यह बहुत बड़ा प्रकाश का केन्द्र है। अगर अंधेरे के समय किसी वृद्ध आदमी से कोई बेटी रास्ता पूछती, कि मुझे गुरूकुल जाना है तो वह यह कहता कि बेटी मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें छोड़ करके आऊंगा। वह उसको अपनी बेटी मानता था। उसको लगता था कि यह संस्था कोई

पढ़ाई का सामान्य केन्द्र नहीं हैं, बल्कि यह एक बहुत बड़ा प्रकाश का स्तम्भ है। वो गुरूकुल यहां चला। उसने ज्ञान का प्रकाश किया, इस क्षेत्र के अन्दर। ज्ञान को बढ़ावा दिया, इस क्षेत्र के अन्दर और उसको आज के जमाने के हिसाब से जब महिला विश्वविद्यालय का रूप मिला है, तो मैं यह समझता हूँ कि उन लोगों को जो शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े हैं, उन लोगों को जिन्होंने नारी शिक्षा के लिए काम किया है, उनके प्रति आपके क्षेत्र की, आपके प्रतिनिधि की, आपके मुख्यमंत्री का, मेरे मुख्यमंत्री की यह एक सबसे बड़ी श्रद्धांजली है, जो उन्होंने उनको अर्पित की है। किसी–किसी को इस बात का सौभाग्य प्राप्त होता है कि पूर्वजों ने जो पौधा लगाया हो, उसको कोई बच्चा आगे बढ़ा पाए, वो ही आदमी अपने आपको अच्छी संतान सिद्ध कर सकता है, जो अपने माँ–बाप के नाम को रोशन करे, जो उनके काम को आगे बढ़ाए। उस आदमी के सिवाए, किसी दूसरे आदमी को यह श्रेय नहीं जा सकता।

धर्म त्याग कितने थे इस देश में एक समय। दिमागी गुलामी कितनी थी, इस देश के अन्दर। एक लक्ष्मीचन्द अग्रवाल नाम के व्यक्ति थे। भगवान दास ने उसको विदेश भेजा। वहां से वह कोई काम सीख करके आए। नील बनाना सीख कर आए, रंग बनाना, साबून बनाना, तेल बनाना सीखकर आए। जब वह काशी वापिस आए तो अग्रवाल सभा ने प्रस्ताव पारित कर दिया कि हम अपनी सोसायटी में नहीं रखेंगे, इसने तो विदेश यात्रा कर ली। यह तो इसमें शामिल नहीं हो सकता और एक बड़े व्यक्ति ने, भगवान दास के बड़े भाई ने जब इसके ऊपर एक सभा करनी चाही तो पंडितों को बुला करके, व्यवस्था करानी चाही, तो उस जमाने में काशी के पंडित होते थे शिव कुमार जी। मैं अपने शब्दों में नहीं कह रहा हूँ। एक बलदेव उपाध्याय जी ने बहुत मोटी किताब लिखी है, 'काशी की पांडित्य परंपरा'। उसमें पिछले सात सौ, आठ सौ साल से जो काशी के विद्वान हुए हैं, उनकी चर्चा की है।

उस जमाने में शिव कुमार जी बहुत बड़े विद्वान माने जाते थे। उस विद्वान की चर्चा करते हुए वह कहते हैं कि जब उनसे यह कहा गया कि आज की मिटिंग में आप आएं। कहने लगे सेठ जी, आप बुलाओ, मैं न आऊं। यह तो सम्भव नहीं है। लेकिन, मैं आ नहीं सकता, इस मिटिंग में। कारण यह है कि यह तो विदेश यात्रा करके आए हैं। शास्त्रों में निषिद्ध

हैं। इसलिए, मैं इसका समर्थन नहीं कर पाऊंगा। इसलिए मीटिंग में नहीं आ सकता।

ऐसी दास्तां की सीमा देखो। एक बुढिया माँ का पति गुजर गया। उसकी दो बेटियां हैं। बड़ी बेटी का रिश्ता नहीं हो रहा था। ये भी उसी किताब में लिखा हुआ है। पौराणिक पंडित की लिखी किताब की बात कर रहा हूँ। अपनी घर की किताब की बात नहीं कर रहा हूँ। छोटी बेटी का रिश्ता होने लगा। छोटी बेटी का जब रिश्ता होने लगा तो पंडित जी की व्यवस्था बड़ी तगड़ी थी, वो रिश्ता नहीं हुआ। शिव कुमार जी को बुलाया। एक गिन्नी स्वामी को उन्होंने दी। गिन्नी को वापिस करते हुए उन्होंने कहा– मैं यह अधर्म नहीं कर सकता कि जब तक बड़ी कुंवारी बैठी है, छोटी का विवाह हो जाए। यह हालत थी उस टाईम। वही पंडित जब पहला विश्व युद्ध हो रहा था और हिन्दुस्तान के कुछ लोग आगे जर्मनी में लड़ने के लिए गए, ठण्डे प्रदेश के अन्दर और वहां उन्होंने मांस खाने से इंकार कर दिया तो उन्होंने कहा कि हम तब माँस खा सकते हैं, अगर इसकी अनुमती हमें शिव कुमार शास्त्री दे दें।

जब शिव कुमार शास्त्री बेटी के विवाह की अनुमती नहीं दे सकते, शिव कुमार शास्त्री हिन्दुस्तान में तेल और साबून बनने के कारखाने की अनुमती नहीं दे सकते। लेकिन 'आपत–धर्म' कह करके मांस खाने की अनुमती दे सकते है, ये असलियत है।

एक बात को कहकर अपनी बात समाप्त करना चाहूँगा। बात दरअसल यह है कि :

थमते–थमते थमेंगे आंसू,
ये रोना है, कोई इसे सीख ले।

लेकिन सिर्फ एक प्रसंग कहना चाहता हूँ। मातूराम जी से जुड़ा है। उन्होंने आर्य समाज से प्रभावित होकर यज्ञोपवित पहन पहन लिया। क्या यह एक छोटी घटना है? एक तूफान मचा है। तूफान बरपा हुआ है। अरे! एक शुद्र को, जाट को यज्ञापवित? कैसे संभव है? सबने आकर कहा कि इस यज्ञोपवित को निकाल दो। उन्होंने कहा कि क्या क्या सोचकर जनेऊ गले में डाल लिया? इंसान बनो।

तब चौधरी मातूराम ने कहा, ''सुनो! यज्ञोपवित एक मानस के गले पड़ा हुआ है। रूख टंगा हुआ नहीं है। सिर कट सकता है, लेकिन यज्ञोपवित नहीं उतर सकता।'' आप इस बात का महत्व जानना चाहते हैं? मैं आपको अपने शब्दों में समझाने का प्रयास करता हूँ।

बात संभवतः 1673 की है। जिसको भारत में आज हिन्दू कुल गौरव कहते हैं, जिसके नाम की आज बड़ी–बड़ी दुहाई दी जाती हैं, जय–जय के नारे लगाए जाते हैं, जिसका यशोगान होता है। मैं भी उसमें शामिल हूँ, यशोगान में। शिवाजी छत्रपति! शिवाजी छत्रपति को एक साधारण जागिरदार का बेटा कहा जा सकता है। मुसलमान बादशाह तो उसको क्या शहीदी देंगे, यहां के जो हिन्दू रजवाड़े थे, वह भी उसको अपने से छोटा मानते थे। किन्तु, बराबर का अधिकार देने के लिए तैयार नहीं थे। उसके भोजन के ऊपर सरसराहट हुई और उसने दान देकर सबको अपने साथ भोजन को समाप्त करने के लिए प्रयास किया। मन में आया उनके, अगर मेरा राज्याभिषेक हो जाए तो बहुत काम करके दिखाऊं। लेकिन राज्याभिषेक कैसे हो? वो तो 43 वर्ष के थे। 22 वर्श के बाद पौराणिक पंडितों के मुताबिक यज्ञोपवित का अधिकार नहीं था। इसमें आपको बीस किताबें कोट कर सकता हूं, जिनमें से पाँच–सात–आठ किताबों की चर्चा अपनी इस किताब में की भी है।

ब्राह्मणों ने कह दिया कि तुम शुद्र हो। मैं उसकी बात कह रहा हूँ। शिवाजी की बात कह रहा हूँ। मातूराम जी बहुत बाद में आए। अगर तब यह हालत थी तो शिवाजी के जमाने में क्या स्थिति थी? यज्ञोपवित का अधिकार नहीं, यज्ञ में बैठने का अधिकार नहीं। शिवाजी को बड़ी ठेस लगी। उसको कोई क्षत्रिय मानने के तैयार नहीं था। तो उन्होंने अपने एक मंत्री को भेजा, काशी। बहुत पैसे देकर भेजा। पंडितों को दक्षिणा देनी चाही। सभी ने इंकार कर दिया, शुद्रों का यज्ञोपवित नहीं हो सकता। यहां गौ–भार्गव का तो हो सकता है सम्मान, लेकिन गौ–रक्षक पर उसका सम्मान यज्ञोपवित नहीं हो सकता। आखिर में उन्होंने एक विद्वान को पकड़ा, आजाद दत्त को। वे जन्मना महाराष्ट्रीयन थे। महाराष्ट्र गौरव के

नाम से उसको ललकारा। उसको कुछ पैसा भी दिया। बुला के उसका मान–सम्मान भी किया। फिर राजस्थान के एक राजघराने से वंशवृक्ष निकालकर किसी तरह से जोड़ा कि यह क्षत्रिय है, ये शुद्र नहीं है। यहां हर किस्म का काम है। लेकिन यहां बुरा भी होता है, उल्टा भी होता है। दक्षिणा दे दो तो उसका प्रकोप टल भी जाता है। यहां हर किस्म का काम है। दुकानदारी है। इस हाथ दे, उस हाथ ले। सौदा बहुत खरा है। और 4 महीने, 11 हजार पण्डित, एक लाख से ज्यादा व्यक्ति रायगढ़ राजधानी के अन्दर टिके रहे। हर किस्म का वहां पर अनुष्ठान किया गया। पूरा दान हुआ। सोना–चाँदी, किसी भी चीज का नाम ले लो, अन्न का नाम ले लो, धातू का नाम ले लो, हीरे–जवाहारात का नाम ले लो, वो सारे का सारा दान किया जाता रहा। ये मैं नहीं कहता, उस जमाने के पण्डित कहते हैं। इस बात के लिए कि यज्ञोपवित संस्कार हो। इस बात के लिए कि शिवाजी को यज्ञ करने का अधिकार मिल जाए। इस बात के लिए चार महीने बहुत बड़ी जद्दोजहद रही और उसके ऊपर 1674 के आसपास खर्च की गई राशि का जो ब्यौरा तैयार किया इतिहासकारों ने, वह 5 करोड़ रूपये थे। आज कितनी बड़ी राशि होती है यह। और एक दिन में जितना राज्याभिषेक हुआ, सर जादूनाथ सरकार कहते हैं, उस एक दिन में 50 लाख रूपया खर्च हुआ। आज आप उसको फिक्स डिपोजिट करें, पाँच–साल बाद उससे तुलना करें और फिर अन्दाजा लगाएं कि वह कितना था? तो यह कोई छोटी क्रांति थी कि गाँव के एक आदमी को, जिनके दिल के अन्दर देश भावना की प्रेरणा थी, उसको इस बात के लिए प्रेरित किया जाए कि तू यज्ञोपवित ले? इसको इस बात के लिए प्रेरित किया जाए कि आप यज्ञ करो। आप यज्ञ को ले करके आगे बढ़ो और ये कम कुर्बानियां है क्या उन लोगों की, चौधरी मातूराम जी जैसों की, जिन्होंने सारी सोसायटी का विरोध सह करके, उस विचारधारा के ऊपर खड़ा हो करके काम किया। उस परिवार के एक महान सपूत चौधरी रणबीर सिंह जी, जो सारी उम्र जिसे, उसी विचारधारा को जिए, जो महात्मा गांधी और ऋषि दयानंद की विचारधारा को जीए। मैं इसे कहां–कहां स्वदेशी के साथ जोडूं, किस बात के साथ जोडूं, बात लंबी हो जाएगी, न मैं इतना आपका अधिक समय लेना

चाहता हूँ और मेरे ऊपर भी एक कोड़ा लगा हुआ है। आज संसद में व्हिप जारी है। मुझे भी वहां जल्दी से जल्दी वहां जाना चाहिए। मैं इन शब्दों के साथ आपको जहां इस बात के लिए बधाई देता हूँ कि आपने एक बड़ा अच्छा आयोजन किया है, वहां उन सारे महापुरूषों को जिन्होंने इस क्षेत्र की उन्नति के लिए, जिन्होंने इस देश में जागृति पैदा करने के लिए, जिन्होंने सूर्य का प्रकाश हर झोंपड़ी में पहुंचाने के लिए, जिन्होंने वैदिक व्यवस्था को जीवित रखने के लिए, जिन्होंने पुराने ऋषि की गाथाओं को जीवित रखने के लिए काम किया है, मैं उनको श्रद्धापूर्वक नमन करता हूँ। परमपिता परमात्मा सबके परिवारों पर सुख–शांति की वर्षा करे। ओउम शांति।।

मुख्य अतिथि के उद्‌गार

डा. आर.पी.हुड्‌डा

(कुलपति, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक)

माननीय डा. राम प्रकाश जी, उपस्थित महानुभाव। डॉ. साहब से मेरा संबंध कुछ पुराना है। उन्होंने मुझे हमेशा एक छोटे भाई की तरह प्यार दिया है, मुझे अपना अनुज समझा है। सही बात तो यह है कि इस वक्त जब मैं स्टेज पर आ रहा हूँ, मुझे मेरी कमजोरी कचोट रही है। मेरी अपनी कमजोरी की वजह से डा. राम प्रकाश जी, जब आए, मुझे उनकी अगवानी के लिए वहां होना चाहिए था। हालांकि वे इस तरह की औपचारिकताओं को तवज्जों नहीं देते हैं।

डा. राम प्रकाश जी को हम में से बहुत लोग जानते होंगे कि आप बहुत ही अच्छे वक्ता हैं। किसी भी विषय पर कहिए उनकी पकड़ है। उसपर वे घण्टों बोलते रह सकते हैं और इस तरह बोलते हैं कि बात कभी इधर आती है, कभी इधर जाती है, फिर समेटकर वहीं ले आते हैं, जिस मुद्दे पर उनको बोलना होता है।

कई बार पहले भी मैंने डा. राम प्रकाश जी को बोलते हुए सुना है। वे मंजे हुए वक्ता हैं। आपने भी उनको आज सुना। जब मैं यहां बैठकर सुन रहा था तो मुझे महसूस हुआ कि मुझे भी इस विषय का इतना ज्ञान होना चाहिए। लेकिन मैं विषय का उतना ज्ञाता नहीं हूँ। मुझे अपने बारे में बहुत कमी महसूस हुई है। इसलिए भी कि मैं इस विश्वविद्यालय का कुलपति हूँ।

डा. राम प्रकाश जी के बारे में आपको यह जानकार अचम्भा होगा कि वे एक साईंटिस्ट रहे हैं। आप कैमिस्ट्री के लैक्चरर हैं, कैमिस्ट्री के स्टूडैन्ट रहे हैं। यह सब होते हुए, इनका दायरा इतना लंबा और चौड़ा है, इनका ज्ञान इतना विस्तृत है और इनका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली है कि जब भी किसी स्टेज पर इनको आमंत्रित किया जाए, बड़े उत्साह से, बड़े

प्यार से आते हैं, बोलने के लिए। कहा जाए तो आप इस ढ़ंग से बोलते हैं कि सभी लोग उसमें बह जाते हैं।

आज का दिन बहुत पवित्र है। बड़ा दिन है। इसी दिन हमारे तीन स्वतंत्रता सेनानी शहीद हुए थे। सरदार भगत सिंह के बाएं–दाएं राजगुरू और सुखदेव फांसी के तख्ते पर चढ़े थे। आज इस मौके पर, यह संगोष्ठी हो रही है, डा. राम प्रकाश ने इतनी सारी बातें कह दी हैं, जो हम नहीं जानते थे। कुछ ऐसा जरूर होना चाहिए कि हम और आने वाली पीढी, जो अपने स्वतंत्रता सेनानी हैं, जिन्होंने हंसते–हंसते देश पर अपना सब कुछ कुर्बान कर दिया, उन्हें याद रख सकें।

एक छोटी सी बात और कहूँगा। जब देश में स्वतंत्रता की लड़ाई चल रही थी, तब शायद मैंने जन्म भी नहीं लिया था। आप में से शायद कुछ ऐसे लोग होंगे, जो जानते होंगे कि स्वतंत्रता की लड़ाई में किस प्रकार से कुर्बानियां दी हैं। मैं आज के दिन के बारे में एक लेख पढ़ रहा था और उसमें लिखा था कि सरदार भगत सिंह ने अपनी डायरी में जो कुछ लिखा, जब वे जेल में थे, वे डायरी लिखते थे, तो किसी सज्जन ने उनको इक्क्ठा किया है और उसने कहा है कि काश हम अपने बच्चों को ये डायरी दिखा सकें, पढ़ा सकें, उनको अवगत करा सकें कि किस प्रकार उन्होंने अपने देश की आजादी के लिए मेहनत की और कुर्बानी दी है।

मुझे इतना सुख है, मुझे इतना अच्छा लगा है कि हमने डा. राम प्रकाश को बहुत अरसे के बाद सुना है। फिर मौका मिला तो हम डा. राम प्रकाश को फिर आपके सामने लाएंगे। जब उनके पास और अधिक समय होगा और वे जो कुछ कहना चाहेंगे, कह सकेंगे। आज शायद उनके विचारों में तेज आ रहा था, विचार उमड़ रहे थे। मेरा ख्याल है कि किसी और मौके पर डा. राम प्रकाश फिर आएंगे। मैं डा. राम प्रकाश का अपनी ओर से, आपकी ओर से आदर सम्मान के साथ दिल से उनका शुक्रिया अदा करता हूँ कि वे हमारे बीच में आए, विश्वविद्यालय में आए। इन्हीं शब्दों के साथ मैं एक बार फिर उनका दिल से शुक्रिया अदा करता हूँ। मैं उनका अनुज हूँ। मैंने उनसे बहुत ज्ञान पाया है। धन्यवाद।

खण्ड–3

विशिष्ट संबोधन

REEDOM MOVEMENT IN INDIA, WITH SPECIAL REFERENCE TO HARYANA

Deepender Singh Hooda
(Member of Parliament)

Indian Freedom Movement is a great saga of valour, dedication and perseverance. The country gained freedom after a long spell of colonial rule by the British. In many respects the struggle was unique and stub-born. Its sweep was remarkable. While learning lessons from world history of liberation struggles around, it developed unique forms of struggle that were in tune with its own ethos and culture. The leadership of the struggle had realised early that it would be a fight for its freedom against a wily ruler that was powerful and resourceful to the brim. It also knew that Britain prized its possession when India was a prime factor in its scheme to rule the world and that it would not go away easily.

The country had good reasons to challenge the might of a super imperial power of the time to gain freedom. During almost two centuries of its sway, the country had to face unprecedented suppression and expropriation. The drain was debilitating. Series of famines claimed un-accounted deaths in millions. Peasantry was burdened with heavy debt. Food grains were exported when Indians starved. People arose in revolt after revolt. The pitched battle in 1857 was a clear indication that the country is united to oust the foreign rule and despite defeat, the spirit to fight was alive. Again, the Deccan peasant uprising of 1875 was another big battle in this series. The urge for freedom continued asserting again and again with varying degrees of force.

Punjab was also in ferment. Peasantry was in deep trouble on many accounts. The government was determined to implement certain legislations like the Land Alienation and Colonisation Acts that the peasantry in the region did not appreciate. The nationalist forces seized upon the situation to mobilise the vast peasant belt for the national cause of freedom movement. With help from Lala Lajpat Rai, the fiery Sardar Ajit Singh was able to harness this segment of population against the British during 1905-1907. It was known as 'Pagri Sambhal Jatta' movement that created stir throughout the region. The Government did not loose time to recognise the danger and ousted both of them to Mandalay, but had to concede to the demands of the peasantry.

The movement in Punjab (including Haryana part) during this upsurge of 1905-07 was remarkably successful to rouse the peasantry out of passiveness. Sardar Ajit Singh found in Chaudhry Matu Ram of Sanghi a ready soldier when he visited his family friend and toured some villages around Rohtak for taking the message to rural belt in Haryana part. It was a time when colonial Government was very apprehensive of Arya Samaj for its activities over this vast land. It was much worried about the hectic campaign of Sardar Ajit Singh in this region. The government felt something was wrong with the Sardar on the eve of 50th. Anniversary of 1857. Coming out of Mandalay incarnation, Sardar Ajit Singh went underground and crossed the borders to organise support for the freedom movement outside along with Sufi Amba Prashad, returning to his native land only in 1947. His nephew, Sardar Bhagat Singh, born in 1907, took over the task in his absence with remarkable dexterity and persistence till he attained martyrdom on 23 March, 1931 in Lahore at the hands of British rulers. This roused the Nation in protest

and the gave an unprecedented impetus to the freedom movement in consequence.

The Punjab peasantry largely, thereafter, remained a part of the freedom movement, barring landlords who were beneficiaries of the Raj. In the Haryana region the efforts of such stalwarts as Chaudhry Matu Ram and Ramji Lal along with few other friends, were able to mobilise a good chunk of peasantry in support of the struggle against heavy odds. Later, Chaudhry Ranbir Singh took up the job admirably. As a result, there was a good comparable number of Satyagrahies in non-cooperation and quit India movements from the old Rohtak district.

The period of 1942-45 was a time of great trial for the entire peasant movement. In August 1942, a ruthless attack was launched by the British on the entire national movement. The Government arrested the Congress leaders. It was followed by heavy repression. Country's economy was in shambles. The corrupt bureaucracy played havoc with the lives of the people. The masses of the peasantry were overtaken by famine and ruin. People died like flies in Bengal and some other provinces. Discontentment was pervasive.

Let us recount some of the features this struggle attained: Indian sub-continent had to bear a long period of foreign rule and paid quite a heavy price. The East India Company consolidated its Raj here after its victory in the battle of Plassey in June, 1757. But India did not take it lying down. There were a chain of revolts all around. Tribal areas gave a dogged fight and never accepted the slavery lying down. However, it was in 1857 that the fight in effect, laid a solid ground for a national perspective, though the British did every thing in their power to keep the country divided on religious, caste and regional levels. Communal riots were fanned. Separatism was emphasized.

The purpose was to create the impression in the minds that the scheme of self-governance for India was an impossibility to succeed. It was a daunting task indeed for the leaders of the movement to keep the national unity in diversity and simultaneously provide a challenge to the foreign rulers to quit. Gandhiji on arrival from South Africa understood the grim task and did his level best in the circumstances. He could mobilise the mass of the people and awakened the nation by devising ways and means in this difficult situation that were unique in sweep.

Britain, on the other hand, was determined to do everything possible to keep this sub-continent in possession; it terrorised India and at the same time took steps to subvert the movement adopting a policy of divide and rule. To a large extent the game worked to its advantage and the country could not be kept united against the persistent demand of Pakistan. The country paid a heavy price in blood and tears. The foreign rule ended, though, with lessons for the future to guard against.

विशिष्ट संबोधन

चौधरी सुल्तान सिंह

(पूर्व राज्यपाल, त्रिपुरा)

(24..3..2010)

बहनों और भाईयों! हिन्दुस्तान का स्वतंत्रता आन्दोलन कई भागों में बंटा हुआ है। उसका एक भाग 1857 से जुड़ा है, दूसरा भाग गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन है, कांग्रेस के द्वारा। तीसरा भाग सुभाष चन्द्र बोस और उसकी आजाद हिन्द फौज। चौथा भाग प्रजामण्डल और पांचवा भाग गोवा व दमन–दीव की आजादी है। ये सभी भाग जोड़ने से एक पूरा स्वतंत्रता आन्दोलन बनता है। इसमें पत्रकारिता का भी बहुत बड़ा हिस्सा है। एक समय था, दक्षिण से 'हिन्दू' निकलना शुरू हुआ, बिहार से 'सैनिक' निकलना शुरू हुआ, जिसे किशन दत्त पालीवाल ने निकाला। रोहतक से 'हरियाणा तिलक' निकलना शुरू हुआ, लाहौर से 'ट्रिब्यून', व 'नेशनल हैल्ड', कलकता से 'अमृत बाजार पत्रिका'। ये सारे अखबार भी स्वतंत्रता आन्दोलन के भाग थे। इनमें सबसे महत्वपूर्ण 'यंग इण्डिया' था। उसके बाद 'हरिजन सेवक'। ये दोनों महात्मा गांधी जी द्वारा चलाए गए अखबार थे। स्वतंत्रता आन्दोलन में हरेक का अपना रोल था।

असल बात है कि 1857 के स्वतंत्रता आन्दोलन में हरियाणा के लोगों का बहुत बड़ा योगदान था। राव तुलाराम, राजा नाहर सिंह और कितने ही शहीद थे, जिन्होंने कुर्बानियां दीं। फिर महात्मा जी आए। उन्होंने आकर कांग्रेस पार्टी को स्वतंत्रता आन्दोलन में बदला। कांग्रेस ए.ह्यूम ने बनाई थी। यह सरकार और लोगों के बीच में एक कड़ी थी, जो जनता की बात सरकार तक पहुंचाए और सरकार की बात लोगों तक पहुंचाए। इसमें एक एनीबेसेन्ट आईं। इस मुवमैन्ट के अन्दर बड़े–बड़े आदमी आए। पं. मदनमोहन मालवीय आदि कितने ही विद्वान। लेकिन, जब गांधी जी 1916 में हिन्दुस्तान आए तो इसे आन्दोलन में बदल लिया। इसके कई हिस्से बन गए। एक हिस्सा था, जो कहता था कि चरखा कातने से आजादी नहीं

आएगी। दुनिया के इतिहास में लोगों ने जानें देकर खूनी चक्र चलाया। यह भाग भारत नौजवान सभा का था, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का था, वह हिस्सा जय प्रकाश नारायण का था।

वर्ष 1943 में बंगाल में अकाल पड़ गया। 35 लाख आदमी भूख से मर गए। कांग्रेस पार्टी ने कहा कि शोक प्रस्ताव पास करो, तो जय प्रकाश जी कहते हैं कि शोक प्रस्ताव तो बहादुरों के लिए होता है, कायरों के लिए नहीं होता। भूख कैसे हो सकती है भारत में? सेठों के गोदाम भरे हैं और उन्हीं गोदामों के सामने लोग भूखों मर रहे हैं। वे बेवकूफ हैं। एक हिस्सा ऐसे लोगों का था।

हरियाणा के लोग इन सारी गतिविधियों में अग्रणी रहे। पत्रकारिता में 'हरियाणा तिलक' निकला, नेताओं में दुलीचन्द अंबालवी, पंडित श्रीराम शर्मा, नेकीराम शर्मा, चौधरी रणबीर सिंह जी, चौधरी देवीलाल जी, चौधरी साहब राम जी। इनमें भी दो भाग बन गए। चौधरी रणबीर सिंह जेलों में रहे। मेरा उनका 65 साल से संबंध है। पं. मांगेराम वत्स, पं. अशफाकत गोड़ बहादुरगढ़, दीवान दिलावर सिंह झज्जर। इन लोगों का मत था कि लड़ाई जेल में रहकर लड़नी चाहिए।

दूसरे महायुद्ध का जमाना था। आसौदा के अन्दर बहुत बड़ा कार्यक्रम था। चौधरी रणबीर सिंह ने आसौदा के अन्दर मीटिंग बुला रखी थी। आसौदा का हवाई अड्डा जलाने के लिए। यह गांधी जी के सिद्धान्त से अलग बात थी। बात फूट गई। चौधरी रणबीर सिंह गिरफ्तार हो गए। पं. मांगेराम भी गिरफ्तार हो गए। सभी जेल पहुंच गए। जेलों में जाकर फिर बदलाव आया। उन्होंने जेलों में जाकर देखा कि कांगेस तो गांधी ही है। कांग्रेस के अन्दर रह करके थोड़ी सी आजाद सोच का आदमी सुभाषचन्द्र बोस था। जय प्रकाश लोहिया की भी जगह यहां निश्चित नहीं है। जिसको रहना है, गांधी जी के साथ जुड़कर रहना होगा।

कल, 23 मार्च को शहीद भगत सिंह, राजगुरू, सुखदेव का शहीदी दिवस था। मैं बड़ा खुश था और दुःखी भी था। खुश तो यूं था कि सारा देश श्रद्धांजलि दे रहा है। दुःखी इसलिए था कि श्रद्धांजलि वोटों के लिए दे रहे थे। भगत सिंह की कुर्बानी के लिए नहीं दे रहे थे। यह श्रद्धांजलि ऐसी थी, जैसे

कि मीराबाई की फिल्म में मल्लिका सहरावत 'मीरा' बन जाए। शहीद भगत सिंह को श्रद्धांजलि देने वाले लोग ही, देश को खाने में लगे हुए हैं। इसलिए हमारा जो स्वतंत्रता आन्दोलन है, इसको अभी तक हम पूरी तरह समझ नहीं पाए हैं। आज हमारा स्वतंत्रता आन्दोलन का जो जोड़ है, वह बड़ा धोखा है। मैं झूठ नहीं बोलता। मैं एक निराशा के भाव में बोल रहा हूँ। इतिहास में कई बार ऐसी चीजें आती हैं कि आदमी मायूस होकर भी भाषण करता है। आज हमारा संविधान है। सोशलिस्ट, सेक्युलर, डेमोक्रेटिक, रिपब्लिक ऑफ इण्डिया। अब आप ईमानदारी से बताईए कि आप सहमत हैं इन सबसे? पाँच–पाँच साल और चार–चार साल के बच्चे राष्ट्रपति भवन के सामने कागज चुगकर रोटी खाते हैं। बारह–बारह साल की लड़कियां हमारी लालबत्ती पर गाड़ी रूकते ही भीख मांगना शुरू कर देती हैं। अनाथों को कोई भी उठाकर ले जाते हैं और फिर वहीं छोड़ जाते हैं। जहां राष्ट्रपति बैठता है, जहां प्रधानमंत्री बैठता है, जहां भारत की सीट ऑफ पॉवर है, वहां यह सब हो रहा है। क्या हम सोशलिस्ट हैं? सेक्युलर हैं?

सेक्युलर! गुरूद्वारा हमने अपने हाथ से तोड़ा। यहां पर जाट सिक्ख हमने कत्ल किए। बाबरी मस्जिद हमने तोड़ी। मुसलमान हमने कत्ल किए। चर्च को हमने फूंका। फिर हम सेक्युलर कैसे हैं?

सोशलिस्ट! हम सोशलिस्ट ऐसे हैं। आप हमारी सोशलिज्म की बात सुनकर हैरान होंगे। गांधी जी ने 'हिन्द–स्वराज' किताब लिखी। यह दुनिया की सबसे सस्ती किताब है। 1909 में लिखी थी। इसमें गांधी जी ने लिखा कि पार्लियामेंट वेश्या और बांझ है। ये लिखा 1909 में। गांधी जी कहते हैं कि वेश्या के कोठे पर कोई भी जा सकता है। वेश्या पैदा तो कुछ करती नहीं है। आज अपनी पार्लियामेंट में भगत सिंह का भाई या भतीजा नजर आता है? सरदार पटेल का बेटा–पोता नजर आता है? राजेन्द्र प्रसाद का बेटा–पोता नजर आता है? कामराज का भाई–भतीजा नजर आता है? सुभाष चन्द्र बोस का नजर आता है? वहां कौन हैं? हरियाणा का हीरो नवीन जिन्दल, पार्लियामेंट का मेम्बर। शत्रुघ्न सिन्हा पार्लियामेन्ट का मेम्बर है। ये ऑनरेबल सदस्य हैं। मैं इनकी बुराई नहीं कर रहा। हेमा मालिनी संसद की मेम्बर है। जया प्रदा संसद की सदस्य है। ये क्यों है?

आज का जो राजनेता है, उसमें हीन भावना है। उसको यह यकीन नहीं कि मेरे कहने से जनता चली आएगी। लाल कृष्ण आडवाणी तक भी यह सोचता है कि हेमा मालिनी साथ जाएगी तो भीड़ इक्कठा हो पाएगी। जो आदमी अपने आपको इतना बड़ा कहते हैं और दावेदार प्रधानमंत्री पद के बनते हैं, अगर आज उनमें इतनी हीन भावना है कि उनको अपने आप पर यकीन ही नहीं है। बिहार में शत्रुघ्न सिन्हा होंगे तो जनता भागी चली आएगी। सोशिलिस्ट नहीं, सेक्युलर हम नहीं, डेमोक्रेट हम नहीं रहे, खरीद लो पार्लियामेन्ट की सीट को और संसद में जाओ। मैं पढ़ रहा था, पंजाब से एक आदमी झारखण्ड जाकर पार्लियामेन्ट का मैम्बर बन गया, राज्यसभा में। वह 15 हजार करोड़ का मालिक है। अब उसने टर्न लिया। वह कहता है कि मैं तो भक्त हो गया ममता बनर्जी का। किसलिए भक्त हो गया?

आज ऐसी स्थिति हो गई है कि बस पूछो मत। मैं तो हैरान हूं कि अगर कलमाड़ी, ए. राजा जेल में हैं तो ये क्यों नहीं गए भगत सिंह की समाधि पर? पूर्ण हो जाती श्रद्धांजलि!

ज्ञान सिंह जी! आपकी ये संगोष्ठि का कोई मैसेज जाए तो यह संगोष्ठि ठीक है, वरना तो आए दिन सारे सभागारों में गोष्ठी होती ही रहती हैं। आज का जो राजनीतिज्ञ है, भाषण देने में बहुत मजा लेता है। प्रेस कांफ्रेस पहले रखते हैं। अपनी स्पीच पहले ही बांट देता है कि मैं जम्मू जा रहा हूँ और मेरी यह स्पीच छाप दीजिए।

आपकी युनिवर्सिटी है। अगर ठीक शिक्षा आ गई तो कुछ भला हो सकता है। अगर हम आज के विद्यार्थी में कांन्फीडेन्स पैदा कर दें तो परिवर्तन कर सकते हैं। मैं आप सबसे यही प्रार्थना करूंगा। आपने मुझे बुलाया, इसके लिए धन्यवाद, मेरी बात सुनी, उसके लिए धन्यवाद और कोई बदलाव ला दिया तो और बड़ा धन्यवाद होगा।

मैं छोटी सी बात और आपको बताना चाहता हूं। मुझे डर लगता है कि आज से 5–6 साल बाद अनाज खाने को मिल जाएगा? आप जाओ धारूहेड़ा। जो सहगल मिल 1970 में बनी। एक करोड़ रूपया लगा। 30 लाख सबसीडी के मिल गए। आज बन्द है। क्योंकि उसकी जमीन 94

करोड़ की हो गई। उन दिनों जमीन दो हजार की थी तो आज जमीन दो करोड़ रूपये प्रति एकड़ की है।

यही नहीं। साधुओं ने भी आज दुकानें खोल लीं। आप शहर में जाइए। चार–चार, पाँच–पाँच, छह–छह एकड़ जमीन में राधा स्वामी का डेरा मिलेगा। जिस जमीन में धान पैदा होता था, गेहूँ पैदा होता था, आज वहां डेरा बना हुआ है। सत्संग से तो रोटी मिलेगी नहीं। पेट तो भरेगा गेहूँ से, धान से। दो लाख रूपये एकड़ ली गई जमीन, दस साल बाद पचास लाख रूपये एकड़ हो जाएगी। इस देश में ऐसे लोगों की पूजा हो, उस देश का क्या हाल होगा?

इस व्यवस्था को बदलो। इस व्यवस्था को बदल सके तो आने वाले बच्चे कहेंगे कि हमारे बुजुर्ग समझदार थे। इस व्यवस्था को बदलने के लिए, मैं तो चाहूंगा कि शांतिप्रिय तरीके अपनाए जाएं।

ज्ञान सिंह जी, आपका बहुत–बहुत शुक्रिया। शुक्रिया तो श्रोताओं का है, जो मेरे जैसे आदमी की बातें सुनीं। मैं अस्वस्थ हूँ। कोई शब्द गलत निकल गया हो तो माफी चाहता हूँ।

खण्ड–4

स्वतंत्रता आन्दोलन में

सरदार भगत सिंह

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में भगत सिंह

—प्रो. जगमोहन सिंह

24 मार्च, 2011

सबसे पहले मैं थोड़ा इतिहास के बारे में चर्चा करना चाहूंगा और जो कुछ मेरी समझ बनी है, उसे सांझा करना चाहूंगा। मैं समझता हूं कि हमारे सोचने की प्रक्रिया युगों से रही है। एक युग है और उसके बाद दूसरा युग है। जब युग बदलता है तो कुछ मापदण्ड भी बदलते हैं। यदि हम आजादी का आन्दोलन देखें तो 1857 एक बहुत बड़ी तब्दीली वाला युग है। 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' नाम की कम्पनी यहां पर व्यापार करने के लिए आई और व्यापार के लिए काम शुरू किया। इसके बाद उसने कहा कि हमें कारखाना बनाने का हक दीजिये। फिर उन्होंने कहा कि हम अपने कारखाने की रक्षा भी खुद करेंगे। इस तरह उन्होंने अपनी सेना भी बनानी शुरू कर दी। मैं समझता हूँ कि जिस व्यक्ति ने सबसे पहले इस षड़यंत्र को महसूस किया, वह 23 साल का सिराजुदौला था। जब उसे राज मिला तो उसने महसूस किया कि सबसे खतरनाक बात हो रही है, वह है कि यह ट्रेडिंग कम्पनी धीरे—धीरे एक किला बन गई है और इस किले से वह बहुत बड़ा संकट खड़ा करेगी। इसी दौरान उन्होंने कलकत्ता वाले किले पर कब्जा कर लिया। उसके बाद 1757 की प्लासी की जो लड़ाई है, वह लड़ाई कभी थी ही नहीं। उन्होंने पहले रिश्वत से मीर जाफर को खरीदा और फौजें खड़ीं कीं। इसके बाद पासा बदल गया और सिराजुदौला को मार दिया। उसके बाद जो तब्दीली आई है, वह देखने वाली बात है।

हमारे यहां 'खालसा' शब्द का इस्तेमाल होता हैं। यह 'खालसा' शब्द 'खालशाही' से आया। क्योंकि उससे पहले किसी भारतीय की जमीन नहीं थी। खालशाही जमीन वह जमीन थी जो स्टेट की ट्रस्ट में आती थी। जो लोग पुश्तों से वहां खेतीबाड़ी करते थे, उन्हें खेती की हकदारी थी। वरना, जमीन पर किसी को कोई मलकियत नहीं थी। सन् 1857 के बाद

जमीन की मलकियत ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने देनी शुरू कर दी। उसने तीन तरह की मालकियत देने का प्रावधान किया। जब वे दक्षिण में मद्रास गए तो रैयतवाड़ी सिस्टम शुरू किया। इसके तहत जो किसान थे, उसी को जमीन की मालकियत दे दी। फिर उन्हें लगा कि यह तो ठीक नहीं है। उसके बाद जब वे पश्चिम में महाराष्ट्र आए तो उन्होंने रैयतवाड़ी, जो कि जमीन की मलकियत गाँव की होती थी, किसी व्यक्ति विशेष की नहीं मानी। लेकिन, जब बंगाल—बिहार में आए तो उन्होंने जमीन पर व्यक्तिगत मलकियत शुरू कर दी। जमीन की मलकियत का बदलना, एक नया युग शुरू करता है। इसके पहले जमीन सांझी थी। जमीन या तो ट्रस्ट के लिए दी जाती थी, या स्टेट के लिए। इसका बहुत बड़ा असर हुआ।

सन् 1857 में कम्पनी के जो तीन बड़े ऑफिसर थे, तीनों पर रिश्वतखोरी का मुकद्मा काफी दिन तक चला। आज भी उस कम्पनी राज का असर देख सकते हैं। ये तीनों थे—क्लाइव, जो उनका फौजी आदमी गिना जाता है, वारेन हेंस्टिंग्स, जो कि पहला गर्वनर बना था और मिन्ट ऐलेथ, जोकि चीफ जस्टिस था। गर्वनर ने चीफ जस्टिस को रिश्वत देकर एक महाराजा नंद कुमार, जिन्होंने सिर्फ यह शिकायत की थी कि आप ईमानदारी से अपनी जिम्मेवारी पूरी कीजिए, को फांसी दिलवा दी। ये तीनों बड़े खतरनाक थे।

उस मुकदमें में उल्लेखनीय बात है कि क्लाइव ने जो बयान दिया, वह बड़ा अजीब किस्म का है। बयान यह है कि आपको तो मुझे इनाम देना चाहिए। मैं तो आपके लिए दुनिया का स्वर्ग जीतकर लाया हूँ। स्वर्ग इसलिए कि बिहार—बंगाल इतनी अच्छी खेती पैदा करता है कि पूरे भारत को खिलाया जा सकता है। वह स्वर्ग इसलिए कि लोगों का अपना सोना—चांदी, जो बक्से में बंद करके लाते हैं और यहां का जो हथकरघा है, वहां बेच देते हैं। लेकिन, ठीक नौ साल बाद बंगाल, बिहार में बड़ा अकाल पड़ा। ढ़ाका, जो 5 लाख की आबादी वाला शहर था, वह मात्र 50,000 का रह गया। कारीगरों के हाथ का काम छूट गया। उस वक्त किसी ने टिप्पणी की थी कि ढ़ाका की गलियां किसानों, मजदूरों और कारीगरों की हड्डियों की कब्रगाह बन गई हैं।

इस भयंकर अकाल की परिस्थितियों के बीच कंपनी ने बड़ी चालाकी दिखाई। उस समय माल्थस नाम का एक कम्पनी का अधिकारी था। वह लोगों को अपनी विचारधारा में बांधने वाला प्रोफेसर था। भयंकर अकाल के बीच लोगों में कंपनी के विरुद्ध आक्रोश पैदा न हो, इसके लिए उसने एक थ्योरी निकाली, जोकि आज भी प्रचलित है कि जब जनसंख्या बढ़ती है तो अकाल पड़ते हैं और असंख्य लोग मरते हैं। ये सब हमारे अंग्रेजी शासन की वजह से नहीं है। यह तो भगवान करता है। इस प्रकार उन्होंने सांत्वना दी और आज तक वह बात बार–बार दोहराई जाती है।

उसी दौरान एक दूसरा प्रोफेसर था, रिकार्डो, जिसने इकॉनोमिक थ्योरी दी कि जमीन से पैदावार कम होती ही है। सन् 1757 के बाद इस तरह लोगों के विचारों में तब्दीली आई। इसके बाद लगातार सौ साल, 1857 की क्रांति तक, कंपनी के खिलाफ छोटे–बड़े विद्रोह होते रहे। 1857 के जो दस्तावेज हैं, उन्हें हमें अभी देखने का मौका मिला है। हमने सन् 1857 को अभी तक जिस रूप में देखा है, वह पूरी तरह विकसित नहीं है। जो हमारे अपने दस्तावेज थे, उनका हमें ज्यादा ज्ञान नहीं है, जिसकी वजह से कहानी अधूरी रह जाती है।

आजकल हम फ्री ट्रेड की बात करते हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने फ्री ट्रेड सन् 1810 से सन् 1830 तक की अवधि में बहुत तेजी से बढ़ाई। इसके तहत प्रावधान किया गया कि जो बाहर से माल आएगा, उस पर टैक्स नहीं लगेगा। लेकिन, जो लोकल व्यापारी हैं, वह 50 किलोमीटर पर टैक्स देगा। इसके प्रमाण आज भी मिलते हैं। आप आगरा से सहारनपुर तक आएं तो रास्ते में कस्टम हाऊस की बिल्डिंग्स हैं, पुराने खण्डहर के रूप में पड़ी हुई हैं। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि अमेरिका की वार ऑफ इण्डिपेण्डेस को शुरू करने वाले वहां के लोकल व्यापारी थे। जो ब्रिटिश व्यापारी था, उसके लिए टैक्स नहीं था। लेकिन, जो लोकल व्यापारी थे, उनके लिए टैक्स था। वे व्यापारी कुली बनकर जहाज में गए और वहां जाकर चाय फैंक दी। वहां से उन्होंने अमेरिका में आजादी की लड़ाई शुरू की।

यह फ्री ट्रेड वाला मामला है और सन् 1830 वाली जो थ्योरी भारत में चरम सीमा पर थी, जिससे पूरी अर्थव्यवस्था चरमरा गई। उसका असर

आम आदमी पर भी पड़ा। इसके परिणामस्वरूप ही उसने भी सन् 1857 की क्रान्ति में भागीदारी की। हम दूसरे पक्ष देखते रहे। यह क्रान्ति ईस्ट इण्डिया कम्पनी के खिलाफ थी, ये तथ्य है। मैंने लगातार इस तथ्य का अध्ययन किया और पाया कि सन् 1857 की हमारी लड़ाई ईस्ट इण्डिया कम्पनी के खिलाफ थी। सन् 1857 के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बन्द कर दिया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी खत्म हो गई। इसका मतलब है कि लोगों ने अधर्म के प्रति युद्ध किया।

इसके बाद नया युग शुरू हुआ। नवम्बर, 1858 को मलिका विक्टोरिया ने एक प्रस्ताव दिया कि घबराने की जरूरत नहीं है, क्योंकि आपको वे सब हक मिलेंगे, जो कुछ इंग्लैण्ड के एक नागरिक को मिले हुए हैं। उन्होंने माना कि यह कम्पनी की गलती थी कि वह आपके धर्म में दखल दे रही थी। हम आपके धर्म में कोई दखल नहीं देंगे। तीसरी बात यह कही गई कि जो भी हो गया है, लेकिन, अब हम बदले की भावना से काम नहीं करेंगे।

मुझे एक दुर्लभ दस्तावेज मिला है। मौलवी फजर अली, जिन्हें अण्डेमान भेजा गया था, की डायरी मिली। वे अपनी डायरी में उस समय पढ़ाने के तौर तरीके के बारे में लिखते हैं कि ''उस वक्त दिल्ली में पढ़ाने वाले मौलवी सभी अभियानों के बारे में शिक्षा देते थे और मूल मुद्दा अपने विद्यार्थियों में रचनात्मकता पैदा करने का होता था''।

मुझे उसी अवधि का एक दस्तावेजी नोट भी मिला। इसमें यूरोप के एक जीस्टर ने कहा है कि ''भारत के मदरसे और उनकी पढ़ाने की प्रणाली, यूरोप की यूनिवर्सिटी से कहीं अच्छी है।'' एक जगह लाला हरदयाल ने लिखा कि ''अगर हमें अपने आपको सभ्य बनाना है तो कम से कम जिन्दगी की व्याख्या करने की पहचान होनी चाहिए।

मैं समझता हूँ कि यह सौ साल का इतिहास है। इसलिए सौ साल के बाद एक रूप बदला और दूसरा रूप आया। यह दूसरा रूप, आजादी की लड़ाई है। मैं इसे इस तरह से समझ पाया हूँ कि यहां एक के बाद एक बड़े अकाल पड़ते गए। उस समय दिल्ली से लेकर पेशावर तक का क्षेत्र पंजाब ही कहलाता था। जैसे–जैसे अंग्रेज कम्पनी बढ़ी, उसी तरह

अकाल भी साथ बढ़े। जब वे लुधियाना की तरफ आए तो पहला अकाल अंबाला तक पड़ा। उसके बाद वह अकाल आगे बढ़ा। पंजाब में आखिरी अकाल दस साल, 1890 से लेकर 1900 तक पड़ा। इस दौरान देश के कुल 39 जिलों में से 38 जिले ऐसे थे, जो अकाल से बुरी तरह पीड़ित थे। उस वक्त किसी ने कहा कि जो औरत कभी घर से बाहर नहीं निकलती थी, उसको भी कमाकर लाना पड़ता था। यह हालत हो गई थी।

अकाल की भयंकरता के सन्दर्भ में भी एक दुर्लभ दस्तावेज मिला है। गदर पार्टी के एक नेता हुए हैं डा. पारख नाथ दास। ये प्रोफसर थे और अपना एक अखबार 'आजाद हिन्दुस्तान' निकालते थे। आत्मादास ने उनको वर्ष 1908 में एक चिठ्ठी लिखी। उन्होंने एशिया के वयोवृद्ध एवं मार्मिक लेखक लियो टॉलस्टॉय की पुस्तक 'वार एण्ड पीस', जिसने जंग के खिलाफ बड़ा काम किया था और लोग उनको अमन का देवता मानने लगे थे, का हवाला देते हुए उस चिठ्ठी में लिखा कि, 'श्रीमान जी आपको पूरी दुनिया मानती है कि आप जंग के खिलाफ और अमन के समर्थन में एक बहुत बड़ी आवाज हो। लेकिन, भारत में जो जंग चल रही है, कभी उसके बारे में भी लिखो। जंग यह है कि सन् 1890 से लेकर 1900 तक इतने अकाल पड़े कि एक करोड़ 90 लाख लोग भुखमरी व बिमारी से मरे हैं'

जब अकाल पड़ता है तो पौष्टिकता खत्म होती है। जब आदमी की पौष्टिकता खत्म होती है तो उसके बाद बिमारियां फैलती हैं। इस तरह यह पूरा सर्कल बनता है। अकाल में लोग इसलिए नहीं मरते कि अनाज की कमी होती है। लेकिन, वे अनाज खरीद नहीं सकते। वे सिर्फ इसलिए मरते हैं कि खरीद शक्ति उनकी खत्म हो जाती है। अर्थात् अनाज तो होता है, लेकिन, वे खरीद नहीं सकते। इस सन्दर्भ में मार्क डेविस की एक बहुत अच्छी किताब 'द क्रोमियम फॉलो पास्ट–द ऐलीगन इफैक्ट' आई। इसके अनुसार, ''यह लूट का तंत्र है। कम से कम साम्राज्यवादी लूट का तंत्र है।'' मार्क डेविस ने अपनी इस पुस्तक में सारी हकीकत लिखी। उसने लिखा कि ''हमारी गरीबी कुदरत और परमात्मा की देन है, यह सब कहकर हमें बरगलाया गया है।'' इससे समाज में जबरदस्त आक्रोश आया।

परिणास्वरूप, ईस्ट इण्डिया कंपनी द्वारा बनाया गया गरीबी का पूरा चित्र ही बदल गया।

उसके बाद ब्रिटिश राज के समक्ष कई तरह की चुनौतियां खड़ी हो गई। पहली चुनौती देने वाले दादा भाई नारौजी थे। दादा भाई नारौजी तो चुनौतियों की एक झलक भर थे। वे इंग्लैण्ड में रहने लगे। उन्होंने वहां संसद में पेश किए जाने वाले बजट से संबंधित दस्तावेजों का अध्ययन किया। अध्ययन के बाद उन्होंने बाकायदा आंकड़ों के साथ 180 पृष्ठों का एक पत्र बनाया, जिसमें खुलासा किया कि ''यह क्षेत्र, जिसे हम पंजाब कहते हैं, उस पर आप पैसे कम लगा रहे है। लेकिन, वहां लिख ज्यादा रहे हैं। यह गैर–कानूनी है'' दादा भाई नारौजी के पत्र में पहला ही शीर्षक, 'ऑन ब्रिटिश टाईटल ग्रुप' था। क्योंकि महारानी विक्टोरिया ने कहा था कि ''आप वैसे ही नागरिक हैं, आपको वैसा ही माहौल मिलेगा, जो इंग्लैण्ड को मिलता है।'' उन्होंने अपने इस पत्र में साफ कहा कि ''आप यह नहीं कर रहे हैं।'' इन सबके अलावा भी उन्होंने इस सन्दर्भ में बहुत कुछ लिखा। बड़ी विडंबना का विषय है कि उनके जो दस्तावेज हैं, चिठ्ठियां हैं और अन्य कागज है, उनपर किसी तरह का कोई शोध नहीं हुआ है।

वर्ष 1906 में कलकता कांग्रेस अधिवेशन में 'स्वराज' शब्द दादा भाई नारौजी ने ही दिया था। उन्होंने हमें समझाया कि ''अगर भारत की गरीबी को खत्म करना है तो यह तभी होगी, जब अपना राज होगा।'' इसके बाद हमारे आन्दोलन का आधार आर्थिक हो गया। उन्होंने बड़े अधिकारियों का आह्वान किया कि ''जितने भी आईसीएस अधिकारी हैं, खेती के साथ जुड़ें।'' किसानी की बदहाली के बारे में खूब लिखा। उदाहरण के तौर पर पंजाब पर एक बहुत अच्छी किताब लिखी गई, 'पंजाब–वार एण्ड पीस फार्मर'। यह किसानों व कृषि समस्याओं पर आधारित है।

इसी तरह अंग्रेजी सरकार के लिए बंकिमचन्द्र चटर्जी चुनौती बने। उन्होंने 'आनंदमठ' लिखा। वे पहले इतिहासकार हैं, जिन्होंने कृषि पर लिखा और तब से लेकर 1857 की बगावत तक के हालातों को देखा, जांचा,

परखा और लिखा। उन्होनें बताया कि ''किसान जब मांगता है तो वह फकीर हो जाता है।'' उन्होंने फकीरों की बगावत को लेकर बहुत कुछ कहा। एक इतिहासकार लिखता है कि कम से कम बीसवीं सदी के आरम्भ में दो शब्दों, 'स्वराज' और 'स्वदेशी' ने बड़ा आन्दोलन खड़ा किया। बंकिम चटर्जी हिन्दुस्तान के पहले या दूसरे आईपीएस थे। उन्होंने कृषि और किसानों पर शोध किया। वे कैम्ब्रिज में प्रोफेसर लगे। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि ''किसान इसलिए बदहाल हैं, क्योंकि हमारा कानून प्रबन्ध ठीक नहीं है। अगर हम इस प्रबन्ध को ठीक कर दें तो किसान भी प्रफुल्लित होंगे।'' लेकिन, जब किसी ने यह सब नहीं सुना तो उन्होंने एक दूसरा शब्द दिया, 'स्वदेशी'। इस 'स्वदेशी' शब्द का मतलब था कि ''अगर आपका पूरा गाँव खेती के साथ बाकी सब चीजों की पैदावार बढ़ाए तो दोनों तरफ से पैदावार बढ़ेगी और किसानों के हालात ठीक हो सकते हैं।'' ये दो शब्द 'स्वदेशी' और 'स्वराज' मुझे बड़े क्रांतिकारी लगते हैं।

बीसवीं सदी के शुरू में पहली लड़ाई, जिसमें अंग्रेज भागा, वह 1907 का 'किसान आन्दोलन' है। किसानों का यह आन्दोलन बड़ा कष्टकारक रहा। लेकिन, अकाल की अवधि के दौरान अंगेजों ने एक फैसला किया कि अकाल में हमें कुछ लोगों को जिन्दा रखने के लिए अनाज बांटना पड़ता है, इससे हमारे पैसे ज्यादा लग जाते हैं। ऐसे में क्यों न ऐसा करें, कि हम खेतीबाड़ी को बढ़ाएं, जिसमें किसानों को कुछ फायदा मिलेगा और हमें भी फायदा होगा। वर्ष 1907 के आंकड़े बताते हैं कि अंग्रेजों द्वारा नई नीति के तहत डेढ़ गुणा ज्यादा पैसा खर्च किया गया और उससे ज्यादा पैसा कमाया गया। लेकिन, उसके बाद भी वे टैक्स बढ़ा रहे थे। यह अकेली बात नहीं थी। उस अवधि का हिटलर द्वारा वायसराय को लिखा एक पत्र हमें मिला, जिसमें लिखा कि ''मैंने खुद फौजों में जांच की है। फौजों में बगावत इस हद तक बढ़ जाएगी कि सन् 1857 में तो आप बचकर निकल गए थे, लेकिन, 1907 में नहीं बच सकते।''

सन् 1907 के किसान आन्दोलन में सरदार भगत सिंह जी के चाचा सरदार अजीत सिंह व उनके साथियों का खास रोल था। उन्होंने अपनी ऑटोबायोग्राफी में लिखा कि ''वे बरेली गए थे, पढ़ने के लिए। कुछ साल

के बाद उनको बरेली ही आना था, क्योंकि बरेली में बैठकर ही हम लोग प्लान बना रहे थे। यह 1904 की बात है। मैंने दादा खड़ग भाई को भी बुलाया। हम सोचते थे कि नेपाल के पास जो एरिया है, वह उनको दिया जाए और वहां पर ट्रेनिंग दिलाई जाए। इस बार मुझे बरेली जाने का मौका मिला। बरेली के लोकल इतिहास पर वहां कुछ काम करना था। वहां मुझे लगा कि सन् 1857 का जो असर बरेली में था, वहां के लोगों में यह भावना नहीं थी कि हम लोग हारे हैं। मेरा ख्याल है कि इस तरह की भावना उनके मन में आ गई थी कि हम दोबारा से तैयारी करके लड़ेंगे।''

जब दिल्ली दरबार हुआ तो एक बड़ी रूचिकर घटना घटी। दिल्ली दरबार में कई राजा भी आए थे। वहीं सरदार अजीत सिंह, सरदार किशन सिंह और उनके एक साथी गंगा सिंह भी थे। जो राजा वहां आए हुए थे, वे अपने राजनीतिक पंडितों से बातें कर रहे थे कि राज्य को इक्कठा होना चाहिए। तभी वहां किसी महिला ऑफिसर का कुत्ता एकदम आया और भागकर वायसराय की चेयर पर बैठ गया। फिर वहां बैठकर भौंकने लगा। सरदार अजीत सिंह कहते हैं कि ''हमें तो बहुत अच्छा मौका मिला। हमने कहा कि आपके राज में तो कुत्ता भी कहां पर है?'' साफ है कि सब तैयारियां हो रहीं थीं। किसानों का वर्ष 1907 में उठना और उस लहर के दबाव में सरकार को वे काले कानून वापस लेने पड़े।

जब हम सरदार भगत सिंह के बचपन और उनके घर के बारे में बात करते हैं तो उनके गाँव का घर म्यूजियम के तौरपर रखा गया है। इसीलिए रखा गया है, क्योंकि वहां पर उनके दादा जी ने विरासत छोड़ी है, जो हवेलियां हैं, जिन्हें दीवानखाना कहते हैं, 1858 में बनाया गया था। उस वक्त पड़दादा जी का कहना था कि ''देखिए, सरकारें बदलती रहती हैं, रणजीत सिंह का राज गया, अंग्रेजों का आ गया। आपकी समस्या का तभी समाधान होगा, जब आप सब एक सांझी जगह पर बैठकर समस्या पर विचार करेंगे और समाधान निकालेंगे।''

सन् 1857 में पंजाब के कुछ लोगों ने ब्रिटिश राज को स्वीकार कर लिया। जब अंग्रेज आ गए तो उन्होंने कहा कि ''अब डर–वर की कोई बात नहीं है। अब तो इनके साथ हाथ मिलाएं।'' अंग्रेजों ने कहा कि ''आप

हमारी मदद कीजिए, हम आपको अभयदान देंगे।'' सुन्दर सिंह मजीठीया ने अपने बड़े लड़के को ताकत सिंह के पास भेज दिया कि जायदाद मिल जाएगी। पंजाब की आधी जायदाद पंजाब की तरफ से लड़ने के कारण छीन ली गई थी और भी छिनेगी। इस पर उनका जवाब था कि शायद जिन्दगी में ऐसे इम्तहान की घड़ी एक दफा आती है, जब आदमी उसूल और जायदाद में से एक चुनता है। वे कहते हैं कि ''स्पष्ट कर दूं कि मैं उसूल को चुन रहा हूं। जब मेरा जोर होगा तो जायदाद फिर से बढ़ा लूंगा। वरना, जितनी भी जायदाद है, उसी में गुजारा चलेगा। लेकिन, एक बात मैंने तय कर ली है कि जो जायदाद मुझसे छीनी गई थी, वह किसी जागीरदार के पास नहीं जाएगी। (उससे पहले उन्होंने एक मेहनती मुसलमान किसान को लाकर बैठा दिया।) जब किसी जागीरदार को देंगे तो मैं उनके हक में लडूंगा। मेरे बच्चों को मेहनत करने वाले से कोई शिकवा नहीं होगा। जो मेहनत करेगा, वह खाएगा। लेकिन, जागीरदार आएगा तो मेरी आधी फसलें हैं, कुदरती तौरपर मर जाएंगी।'' वे कहते हैं कि ''उसूल क्या है? वहां एक झण्डा जी हैं। गुरू तेग बहादुर सिंह की शहादत के बाद वे सन्त बागी हो गये और गुरू गोविन्द सिंह जी ने वहां पर सभी मौजूद बागियों को कहा कि इसको हमने कुछ नहीं देना है? बागियों पर कन्ट्रोल करने के लिए उन्होंने बुलाकर उनको मार दिया। आज देखने में यह क्रूरता लगती है, लेकिन उस युग में शायद यह मामूली बात थी। उसके बाद एक नई जगह बनाई, जहां पर लोग अपना हिस्सा, जो भी देना चाहते थे, वो देते थे।''

भगत सिंह का घर उसूलों को प्रतीक रहा। भगत सिंह के दादा जी उसे और उसके बड़े भाई जगत सिंह को गर्मी में वहां लाते थे और उस उसूल को बार–बार उन्हें सुनाते थे। अजीत सिंह ने अपनी आत्मकथा में यह बात कही कि दादा जी ने उनको इतनी दफा यह बात बताई कि मैं 40 साल तक जहां भी रहा, अंगेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ता रहा।

भगत सिंह के बारे में बहुत सी अच्छी धारणाएं सुनने को मिलती है। जैसे कि उनके मजबूत इरादे थे, स्पष्ट इरादों वाले थे वगैरह–बगैरह। हम नहीं मानते कि वह कोई विशेष इंसान थे। वह भी एक आम बच्चों की

तरह ही थे। भगत सिंह कहते थे कि ''मैं ज्यादा भ्रमित था। मेरे दादा जी ने इतना बड़ा काम कर दिया था कि इससे आगे मैं क्या करूं? मुझे अपने बारे में कुछ नहीं पता था कि मैं आगे क्या करूंगा? एक चीज जो घर में थी, कि एक सांझा व्यवहार था। क्योंकि सभी प्रेम से रहते थे।'' उनकी माता जी, यानी हमारी नानी जी, जिन्हें हम बेबे जी कहते थे, ने एक दफा कहा कि जब भगत सिंह पैदा नहीं हुआ था तो मैं 'चण्डी की बात' पढ़ती थी, तो मेरे मन में सवाल आया कि ये 'चण्डी की बात' का जो सदाचार का पक्ष है, यह कहां से आया। बाद में पता चला कि 1857 में सतगुरू रामदास जी ने एक नयी लहर को जन्म दिया था। बेबे जी कहती थीं कि ये सतगुरू की वाणी पढ़नी बहुत जरूरी है। क्योंकि, इसमें समाज को आगे बढ़ाने वाली बातों और समाज को पीछे करने वाली बातों के बीच लड़ाई है व उनके बीच संघर्ष है। आप तभी आगे बढ़ने वाली ताकतों के साथ जुड़ सकते हैं, जब आप ये वाणी पढ़ेंगे।

इस तरह भगत सिंह का जो विशाल मन बना, उसमें सभी तरह की संस्कृतियों का योगदान रहा। उनके दादा जी बहुत बड़े इंसान थे। उन्होंने आर्य समाज को सिर्फ इसीलिए ग्रहण किया क्योंकि, आर्य समाज के दो बहुत खूबसूरत उसूल हैं। पहला, आपकी मुक्ति लोगों की मुक्ति के साथ जुड़ी हुई है। इसलिए, जहां भी अकाल आए, वे वहीं गए। उसके घर में 22 लड़के, जो यतीम (अनाथ) थे, जिनके माता–पिता नहीं थे। वे भी उसी घर में पले–बढ़े थे। उन लोगों में से एक से मैं मिला हूं। एक फील्ड मार्शल थे, जिसे राजा राम कहते थे, वह शहीद हो गए।

यह एक पारिवारिक प्यार की सत्ता है। भगत सिंह, जब खेतों में बन्दूक बो रहा था, वह उसका इतिहास है। क्योंकि सन् 1857 की तैयारी जो हो रही थी, उस पर विचार हो रहा था कि हम उसको क्यों नहीं जीत पाए? उस बातचीत में कहीं न कहीं ये विचार भी आया कि हमारे पास बन्दूकें नहीं थी, जिसके कारण ऐसा नहीं हो पाया। सरदार अजीत सिंह नेपाल राजा के पास हथियार लेने के लिए गए। उसने कुछ हथियार पकड़ा दिए थे। लेकिन, ये कोई खास नहीं थे। शायद

जब यह सब बात हो रही थी तो हथियारों की कमी का भगत सिंह के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

12 साल की उम्र में भगत सिंह ने जलियांवाला बाग देखा। वहां जाकर उसे लगा कि अंग्रेज कितना क्रूर है। कितनी बेरहमी से लोग मार दिए गए हैं। फिर उसके बाद 1921 में गुरू नानक के जन्म स्थान पर महन्तों को अंग्रेजों ने मरवाया। उन्होंने 148 सिखों को गुरूद्वारे के अन्दर जिन्दा जलाया। भगत सिंह ने सोचा कि अंग्रेज अकेले ही नहीं, बल्कि वे भारत में से भी कुछ लोगों को साथ लेकर इस तरह की क्रूरता कर रहे हैं। शायद यह क्रूरता उन्होंने करवाई भी इसलिए थी कि लोगों को लगे कि यह चलन हमारा नहीं है, यह तो यहां होता ही है।

उस वक्त भगत सिंह ने गुरू की सीख ली। जब भगत सिंह कुछ पढ़ रहे थे तो उनसे पूछा गया कि तुम क्या पढ़ रहे हो? उन्होंने कहा कि मैं 'पात–ग्रन्थी' पढ़ रहा हूं। जब वे दसवीं में पढ़ रहे थे तो 1921 में महात्मा गांधी जी ने आह्वान किया कि सब स्कूल छोड़कर मेरे साथ आईए। अन्य छात्रों के साथ उन्होंने भी स्कूल छोड़ दिया। तब वे अपने दादा जी को पत्र के जरिये हर खबर भेजते थे। जैसे रेलवे वाले भी हड़ताल की तैयार कर रहे हैं। एक हफ्ते में हो जाएगी। इसका मतलब है कि इन सब चीजों को भी वे बराबर देखते थे।

लेकिन, सबसे बड़ी घटना हुई, वह थी सन् 1921 में जब गांधी जी ने आन्दोलन वापिस लिया। नौजवानों को लगा कि जितना जोश था, उस पर एकदम ऐसा ब्रेक लग गया, जैसे कि बाहर गिर जाते हैं। लेकिन, गांधी जी की एक बात खुले दिमाग से देखनी चाहिए और भगत सिंह ने भी कहा है कि गांधी जी ने आजादी की लड़ाई में जो सबसे बड़ा कदम उठाया, वह आम आदमी को आजादी की लड़ाई के साथ जोड़ा गया। इसलिए, कहते हैं कि उसी में से इंकलाबी संभावनाएं पैदा हुईं। जब आम आदमी उसके साथ जुड़ेगा, तो फिर उसकी जरूरतें पूरा करने के लिए आगे बढ़ना होगा।

इसके बाद पहली सोच यह निकली कि अगर हम भी गुरिल्ला युद्ध शुरू करें तो अंग्रेज को मजबूर कर सकते हैं। ये विचार राम प्रसाद बिस्मिल

सहित जोशीले युवाओं के समूह में आया। लेकिन, जैसे ही काकोरी केस हुआ, उसमें कुछ लोग पकड़े गए और उस घटना के प्रति आम लोगों की जो प्रतिक्रिया थी, वह विवेकपूर्ण नहीं थी। अंग्रेजों ने कहा कि ये लोग डाकू हैं तो, उन्होंने कहा कि होंगे। उस वक्त भगत सिंह एक पत्रकार के तौर पर केस की कार्यवाही देखने के लिए दर्शक दीर्घा की पहली लाईन में बैठ गए। सबने सोचा कि यह लड़का बेवकूफ है, जो पगड़ी बांध कर यहां बैठा है। भगत सिंह ने कहा कि मैं एक पत्रकार हूं और रिपोर्टिंग करता हूं। अपनी पुस्तक में भगत सिंह एक जगह लिखता है कि मेरा लोगों के साथ इतना गहरा संबंध है कि अगर मैं वासराय पर हमला करके भी आ जाउं तो मेरे गांव के लोग कट जाएंगे, लेकिन मानेंगे नहीं।

यह साल बी.के.दत्त जी की शहादत का सौ साला है। हमने 18 नवम्बर को उनका जन्म दिन मनाया। उनकी बेटी और दोस्त आए। उन्होंने राजगुरू की बायोग्राफी लिखी है और बी.के.दत्त की बायोग्राफी भी लिखी है। कानपुर में वे सब जिस तरह से एक साथ रहे, वे एक दूसरे के पूरक थे। जब भगत सिंह लाहौर में थे तो सुखदेव उनका पूरक था। यानी वे एक दूसरे के पूरक साथी थे।

उन्होंने एक बड़ी रोचक कहानी सुनाई। बी.के. दत्त की बेटी भारती दत्त ने बताया कि पहली दफा जब मैं अपने गांव गई, तो वहां एक वृद्धा ने बहुत प्यार किया और उसे चूमा। उसने कहा कि बेटी में तो तेरा इंतजार कर रही थी। उसने एक कहानी सुनाई कि वहां पर उनके घर के सामने एक हवेली है, जहां भगत सिंह और बी.के. दत्त, कुछ दिनों तक यहां आकर रहे थे। मैं उनको रोटी देने जाती थी। यही बात चन्द्रशेखर के बारे में है। जब वे 19 साल के थे तो शायद इसीलिए घर से निकल गए होंगे कि कहीं पकड़ा न जाऊं। चन्द्रशेखर आजाद एक साधु बनकर, तारागढ़ी की एक झुग्गी में रहते थे।

भगत सिंह की प्रेरणा प्रक्रिया कुछ अलग किस्म की है। भगत सिंह की माता खद्दर पहनती थी। पंजाब में यह चलन बाबा राम सिंह से है। अपने हाथ का बुना हुआ ही पहनिए। वे कहते हैं कि बेटी खद्दर पहनना बहुत अच्छी बात है, सादा रहना बहुत अच्छी बात है। लेकिन कांग्रेस की

तरह समझौतावादी नहीं होना है। एक बात और उन्होंने कही कि जिन्दगी में उसूलों से समझौता नहीं हो सकता। लड़ाई में तो समझौता हो सकता है, कभी तेज हुई, कभी कम हुई। लेकिन, उसूलों पर कभी कोई समझौता नहीं हो सकता।

बहुत दिनों से मेरे मन में यह एक प्रश्न आ रहा था कि भगत सिंह मेरे लिए इसलिए तो बड़ा नहीं है कि वह मेरा मामा लगता है। क्योंकि, घर में हम हमेशा अपने बुजुर्गों की शेखियां बघारते हैं। लेकिन, जब हम मिर्जापुर में गए तो खुशकिस्मती से एक बड़ा बुजुर्ग, वर्नागलीराम सरोहा भी वहां आए हुए थे। मैने उनसे पूछा कि आप बताईये कि आप भगत सिंह को इतना सम्मान क्यों देते आए हैं? तब, उन्होंने शानदार जवाब दिया कि देखिए, जब 19वीं सदी में लोगों में निराषा ही निराशा थीं। एक तरह से वह निराशा का काल था। लेकिन, जब भगत सिंह आए, निराशा दूर होती चली गई।

आप कहीं भगत सिंह का एक शब्द भी किसी के खिलाफ नहीं पाएंगे। उनका किसी के साथ कोई गाली–गलौच नहीं हुआ। नेहरू जी के साथ भी वार्तालाप है और बहस है। इसी तरह गांधी जी के साथ भी हैं। उन्होंने गांधी जी के बारे में कहा कि हमें उस देवता को इतना सम्मान तो देना ही चाहिए कि उन्होंने आम आदमी को आजादी के लिए तैयार कर दिया और आपके लिए एक इंकलाबी संभावनाएं पैदा कर दीं। अब आप उनको बढ़ा लीजिए, आजादी का मतलब उनको सिखा दीजिए।

भगत सिंह का लिखना है कि 18 साल की उम्र में यह करतार सिंह सराभा एक पूरा अध्याय लिख रहा है। यह 18 साल का लड़का सबसे खतरनाक आदमी है, जोकि आजादी और बराबरी की बात करता है। भगत सिंह लिखते हैं कि मेरे अन्दर यह सब कहां है? दूसरी बात उन्होंने लिखी कि मैं इतना पढ़ूं कि मेरे जो अपने विचार हैं, वे किसी दलील के आगे न हारें। मैं इतना पढ़ूं कि मेरे सामने जो भी दलील आए, उसका जवाब मैं दलील से दे सकूं। यह भी एक प्रक्रिया का हिस्सा है कि उनके मन में पढ़ने की इतनी लालसा थी।

इस प्रकार उन्होंने एक मन होकर किताबें पढ़ीं हैं, उनका अभी तक कुछ अनुमान नहीं है। अभी पाकिस्तान से रिकार्ड़ आया है, उसमें क्या–क्या किताबें पढ़ लीं गईं, उनका ब्यौरा है। कुल मिलाकर भगत सिंह के जो शिद्दत से जानने की चाह थी, वही असली भगत सिंह बनाने की प्रक्रिया है।

भगत सिंह अपने एक लेख में लिखते हैं कि उसके बाद मैं यथार्थवादी बन गया अर्थात मेरा नजरिया यथार्थवाद में बदल गया। यह 'यथार्थवाद' क्या है जो भगत सिंह को बनाता है? वह उसका यथार्थवाद है। वह कहता है कि यह यथार्थवद ही मेरा विश्वास है, जो असलियत है, सामने है। आखिर ये शब्द आया कहां से? तब, इस जिज्ञासा के साथ मेरे मन में आया कि क्यों न मैं गणेश शंकर विद्यार्थी के संपादकीय पढ़ूं, क्योंकि उसी में मुझे कई चीजें मिल सकती हैं। भगत सिंह ने उनको खूब पढ़ा था। वह एक ऐसा आदमी है, जिन्होंने भगत सिंह को बहुत प्रभावित किया। बाद में मुझ विद्यार्थी जी के ही एक संपादकीय में इस यथार्थवाद के बारे में पढ़ने को मिला।

भगत सिंह ने लिखा कि भारत के अन्दर तीन कमजोरियां हैं। जब तक ये तीन कमजोरियां हैं, भारत को आजादी नहीं मिल सकती। उन तीन कमजोरियों में पहली यह है कि हम रब (भगवान) के नाम पर लड़ रहे हैं। जब तक ये साम्प्रदायिकता खत्म नहीं होगी, तब तक हमें आजादी नहीं मिल सकती है। दूसरी यह है कि हमें, इंसानी हक के लिए लड़ना नहीं आता है। तीसरी कमी यह है कि जो नौजवान लड़के–लड़कियां हैं, वे जब तक पूरी तनदेही के साथ संघर्ष नहीं करते, तब तक आजादी नसीब नहीं होगी। भगत सिंह ने इन कमजोरियों को दूर करने और नौजवानों से साम्प्रदायिकता को निकालने की चुनौती को लिया।

उसके बाद, भगत सिंह के एक्शन वाले काम आते हैं। भगत सिंह और उसके साथियों ने जो एक्शन किया है, वह इंस्टीच्यूशन (संस्था) के विरूद्ध हैं। भगत सिंह का मानना था कि यह कोई व्यक्ति नहीं संस्था है। भगत सिंह का मुख्य उद्देश्य यह था कि लोगों के अन्दर से डर निकले और सरकार के अन्दर जाए।

मैं कहता हूं कि महाभारत काल में अभिमन्यू कौरवों के चक्रव्युह में फंसकर क्यों मरा? क्योंकि उसे अधूरा ज्ञान था। लेकिन, भगत सिंह और उसके साथी पूरा ज्ञान लेकर गए। उन्हें पता था कि वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद को चैलेंज करने जा रहे हैं। असेम्बली में बम फेंकने के बारे, जब उन्होंने बयान दिया तो पूरी दुनिया ने उसे पढ़ा। कानूनी तौरपर भी कोई ऐसा शब्द नहीं था, जिसे ठीक किया गया हो। मोतीलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, काफी समय तक उनके साथ रहे। मैं समझता हूं कि गांधी जी की और भगत सिंह जी की जो विरासत है, उसको हमें अच्छी तरह से समझना चाहिए। भगत सिंह के बारे में बातें तो बहुत हैं और मेरा कहने का मन है। लेकिन, ये बातें कभी खत्म नहीं होने वाली हैं, इसलिए बेहतर यही है कि आप भी अपने विचार सांझा करें। धन्यवाद।

BHAGAT SINGH:AS AN IDEOLOGUE

Dr. Kushal Pal

Department of Political Science Dyal Singh College Karnal.

The world is well acquainted with the unparalleled patriotism and heroic sacrifice of Bhagat Singh who laid down his life at a young age for the termination of the British rule in India.But Bhagat Singh as a great political and social with a profound ideology of his own has been utterly neglected.The fact is that Bhagat Singh presented political and economic philosophy which reveals him to be leaning towards socialism as he championed a society without class and caste disparities.His ideas have great relevance in the present day society when our political leaders are accused of serious corruption charges, when terrorism and secessionism have threatened the unity and integrity of the country, when socio-economic evils like casteism, communalism, untouchability, poverty, unemployment, hunger, disease are still posing a very serious challenge to the social fabric of our country even after 64 years of its independence.

Present research paper purposes to analyze the ideological evolution of Shaheed Bhagat Singh. This is an effort to overcome a rather vague and sentimental notion regarding Bhagat Singh's contribution to the freedom movement in India. His valiant and brave activities tend to overshadow some of the more vital aspects of his

ideology. Moreover, different schools of thought and ideologies have attempted to give his ideas colours of their own. The present study takes up Bhagat Singh as an Ideologue to bring to light the neglected aspects of his philosophical thought. The intention behind this is to remove misconception regarding Bhagat Singh's real revolutionary nature which was for a just society in independent India and not merely freedom from foreign rule.

The present paper seeks to remove some of the cobwebs which surround Bhagat Singh. This among other factors, would ensure that Bhagat Singh would not be misused by forces inimical to the ideals and values which Bhagat Singh stood for. The objective is to demystify the ideological Bhagat Singh and not just to glorify him as a revolutionary. Bhagat Singh's relevance to modern Indian political thinking also needs to be examined.

Unlike any other freedom fighter of his time, Shaheed Bhagat Singh had acquired an unparalleled stature and glory in a very brief span of his life because he was not just a brave revolutionary but also a profound thinker, an ideologue with a keen sense of analysis and farsightedness. His ideas on terrorism were very clear. Denying the charge that he was a terrorist, he stated that he is a revolutionary with definite ideas and ideology. He wrote, "I am a revolutionary who has a well planned programme"[1]. This stands in sharp contrast to the present day demogonges, who are motivated by ulterior motives.

By revolution, he meant that the contemporary order which was based on manifest injustice must go. To him, producers and labourers in spite of being the most necessary elements of society were robbed by the exploiters of the fruits of their labour who deprived

them of their elementary rights. Radical change was, therefore, necessary and it was the duty of those who realize this to reorganize society on a socialist basis. Unless this was achieved and the exploitation of man by man and of nation by nation was eradicated and imperialism brought to an end, the suffering and carnage with which the humanity was threatened could not be prevented and all talks of ending wars and ushering in an era of universal peace was nothing but sheer hypocrisy. Bhagat Singh also had a clear vision of the post-revolution structure of the society. He was of the view that after successful socialist revolution, the society should be reorganized according to egalitarian principles. He visualized that the revolution would usher in a new social order. The revolution would ring the death knell of capitalism, class distinctions and privileges. It would bring joy and prosperity to the starving millions who were sweating then under the terrible yoke of both foreign and Indian exploitation. It would give birth to a new state, new social order, and above all, it would establish the dictatorship of the proletariat and would for ever banish social parasites from the seat of political power.[2] It is pertinent to mention here that although the development policy since independence has stressed on the principle of growth with justice but the dream of Bhagat Singh to establish a socialist order with none to exploit is yet to be fully realized. It means that his ideas on distributive justice and the dream for a socialist order are valid even today.

On the use of force in revolution, he emphasized that revolution was certainly not a thinking of brutal campaign for murder and incendiarism. It is not few bombs thrown here and there; neither it is a movement meant to destroy all remnants of civilization and blow it

to pieces. Revolution is not a philosophy of despair or a creed of desperadoes, revolution might be anti-religiosity but it could never be anti humanity. One may cite here the case of Bhagat Singh who threw a bomb in the Central Legislative Assembly to refute his claims on force. But it is important to mention here that when he threw the bomb in the Assembly, he also threw some leaflets "to make the deaf hear". Jawahar Lal Nehru rightly points out in this context that "it was a big blast to attract the attention of the people of the country."[3]

Bhagat Singh proved himself to be a realist when he critically analysed the problem of untouchability. He strongly remarked that we could not ask for greater political rights when we ourselves deny the elementary rights to human beings.[4] He wrote, "Before we accuse people coming from other lands, we should see how we ourselves behave towards our own people.For him, it is shameful that we worship animals but hate human beings who perform menial jobs for us. He is of the view that an unclean work does not justify untouchability.[5] A mother who removes the filth of her children does not become an untouchable. Bhagat Singh maintained that poor people from other castes are also considered untouchables because of their economic conditions and this problem is a barrier in social inter-course and socio-economic development. He stated that untouchables should be given freedom to use the facility of schools, colleges, hospitals and roads. Unless their economic situation improves, they will not be treated as equals in the society.

Bhagat Singh further regretted that due to wide spread poverty in India crores of people died of starvation. People should not sit quie when slavery and poverty in India persist. The rich might not be

thinking of freedom because they are already living a luxurious life and their interests adequately safeguarded under the colonial rule. But for the starving people who knew that they have to die with no other option before them in such a situation, they were bound to resort to revolutionary activities; because it is generally understood that slavery is the root cause of revolutionary activities. He further stated that oppressive measures could not revolution, "History of the past shows that severe punishments and hangings can not check revolutionary conspiracies. Torture and oppression, however, dreadful, cannot suppress the desire for freedom. Innumerable youth, who could have been an asset in an independent country have fallen victims to the oppression and torture of the tyrant rulers of India. Thousands of patriots have been cut to pieces to create fear psychosis. This is being done to discourage them from participating in revolutionary activity and struggle for freedom. All actions of panel punishment including hanging and imprisonment have failed to check conspiracies. Instead these have only increased the desire for martyrdom.[6] Thus, Bhagat Singh presented concrete analysis of the root causes behind revolutionary. He was of the firm conviction that oppression and torture could not solve this problem. He asserted that if this could have been the cure for conspiracies, these would have been banished long back from the society. He held the view that these measures could check this problem for a short period,but could never have an everlasting impact as the root cause lay somewhere else. He strongly asserted that, "Till the memories of bondage and poverty of barbaric ages continue to exist, no power on this earth can wipe off conspiracies." [7]

At the time when Hindus and Muslims were fighting with each other, Bhagat Singh made secularism as the cornerstone of his thinking. He believed that a true patriot in service of the nation and humanities should not be over-powered by communal sentiments. For him, a religion which divided the people, preached hatred instead of love and which blocked the intellectual growth by promoting superstitions could never be his religion.

Bhagat Singh had a very deep understanding of religion and he was of firm conviction that religion had lost its relevance in the sense in which this concept had generally been used. He opined that all the religions which have come into being so far had divided people and set them against each other. The amount of blood which has been shed on this earth by the so-called custodians of religion in the name of religion exceeds the blood shed by others. The truth is that the paradise on this earth has been destroyed in the name of religion. Bhagat Singh strongly advocated that the path which promotes human happiness, equality and brotherhood is the true religion … Every activity that fights against the forces of communalism and leads to classless society is religion in real and true sense.[8]

Bhagat Singh fought a constant struggle against communalism and vehementaly asserted that human beings should certainly be respected more than animals but unfortunately in India people kill each other for the sake of holy animals, religious prejudices and superstitions which are a great obstacle in the advancement of the society. We should strongly root them out.[9] He not only analysed the nature of communalism but also the causes behind the communal riots. He opined that the improvement of economic conditions were necessary

as it was always possible to incite communal riots through financial inducement as a larger number of people are suffering from hunger and starvation. Thus, he proceeded to make an analysis on the economic basis of the causes underlying communalism and also suggested the remedy for the improvement of the economic conditions of the toiling masses which, at that time, was not possible as the country was under foreign rule. Even more significant was his insistence on instituting class consciousness among the poor workers and peasants as that alone would enable them to identify their real enemies and stop them from fighting among themselves.[10]

Bhagat Singh clearly realized the diversities of India and stressed the need to reconcile and overcome them so as to build a united nation. He visualized not just a free India but a united country free from social conflicts. According to him, a genuinely united country with an identity of its own would not only be able to stand up against the foreign rulers but would also be able to face its problems better.

He propagated not only freedom from the Britishers but also freedom of the oppressed from the oppressors. His revolt was not a prescription for chaos as revolutionaries are generally understood to be but a step towards the goal of socialist system where there would be no exploitation of man by man where there would be no rich and poor and where everybody irrespective of sex, caste, religion and race would be able to develop his/her abilities to the maximum possible extent and live a descent and dignified life.[11]

Bhagat Singh was above all kinds of parochialism and was fully dedicated to the cause of India's independence and to build up a just society bound not by narrow national boundaries. He saw the

Indian National struggle in the broader context of international struggle for freedom, peace and justice.

Thus, Bhagat Singh, as a great thinker, tried to come to grips with an important aspect of social, economic and political reality of Indian society through an analysis at both the objective and subjective levels. Significantly, he based his analysis on materialist premises – the economic roots and the class dimension of the problem. He, in fact, suggested a struggle between classes– between the oppressed and the oppressors – at both the national and international levels. At this time when these problems still dominate us and threaten to tear apart our society, we could, perhaps, take a cue from the insights provided by Bhagat Singh. But we have to be very cautious while applying his methodology to solve our problems. In this age of globalization, the subjective and objective conditions have sufficiently changed. As such, application of his ideas in toto is neither feasible nor advisable. Yet the appalling poverty, the ever increasing crisis on account of corruption by the political elites, the apathy towards the issues being faced by the masses demand the active involvement and constructive application of his ideology developed empirically in the concrete realities of Indian society.

(Endnotes)

1. Bhagat Singh, "I am a Revolutionary not a Terrorist," Janvadi Sanskritik Manch, Fatehabad, 1987, p.2.
2. Sawyasachi, Shaheed-e-Azam Sardar Bhagat Singh, Yugantar Parkashan, Mathura, 1964, p.27.

3. Jawahar Lal Nehru, "Glimpses of World History". Cited in Satya Rai (ed.) 'Colonialism and Nationalism in India ', Puja Press, Delhi, 1958, p. 406.
4. Bhagat Singh,Kirti,cited in Jagmohan and Chaman Lal(eds.)Bhagat Singh Aur Unke Sathiyon Ke Dastavez,Rajkamal Paperbacks,New Delhi,1987,p.195
5. Ibid.p.197
6. Ibid.p.172
7. Ibid.
8. Sawaysachi,op.cit.p.33
9. Bhagat Singh,Kirti,Uttarardh(special supplement on Bhagat Singh),No.32-34,October-1988,p.20
10. Ibid.p.24
11. Kushal Pal,Bhagat Singh:As A Revolutionary,(unpublished M.Phil.disseration)Kurukshetra University Kurukshetra,December-1992,pp.61-64

भगत सिंह का उभार और उनकी प्रासांगिकता का प्रश्न

रेखा खासा
पी.के. शर्मा
रोहतक

23 मार्च–स्वाभिमान का प्रतीक दिवस

तेइस मार्च भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास का अविस्मरणीय दिन है। सन् 1931 में उस दिन अमर शहीद भगत सिंह अपने दो साथियों के साथ भारत के भविष्य की खातिर शहीद हो गए थे। उनके निकटतम साथी और संगठन के मुखिया वीर चन्द्रशेखर आजाद एक महीना पहले ही, संयोग से, 27 फरवरी को इलाहाबाद में अपनों की साजिश के शिकार हो कर हथियारबंद ब्रिटिश पुलिस के साथ लोहा लेते हुए खेत हो चुके थे। उस दिन भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को लाहौर की केन्द्रीय जेल में फांसी पर लटका कर अंग्रेज हाकिमों ने सुख की सांस ली और सपना लिया था कि वे इन वीरों की कुर्बानी व उनके संघर्ष को बेमायने कर देंगे। वे सम्भवत नहीं जानते थे अथवा बेपरवाह थे कि इनकी शहादत से जिस ऊर्जा का संचार हुआ है उससे पार पाना ब्रिटिश शासन के लिए लगभग असम्भव है। उनकी लड़ाई मात्र रोजी–रोटी के लिए नहीं थी, वे देश के स्वाभिमान की जंग लड़ रहे थे। भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद भारत के स्वतन्तत्रता आन्दोलन की इंकलाबी लहर के लोकप्रिय प्रतिनिधि बन चुके थे और ब्रिटिश शासन के प्रति जनआक्रोश चरम पर जा पहुंचा था।

पेशे से किसान कुटुम्ब में 28 सितम्बर 1907 को जन्मे भगत सिंह के घर का प्रमुख पेशा स्वतन्त्रता की जंग बन चुका था। जब भगत सिंह का जन्म हुआ उस समय भारत के अवाम यहां कब्जा जमा कर आ बैठे विदेशी लुटेरों और आततायी व्यापारियों की हथियारबंद सत्ता को उखाड़ने की खातिर 1857 में घटित पहली व्यापक जनतान्त्रिक क्रांति की पचासवीं सालगिरह मना रहे थे। भगत सिंह के चाचा अमर सेनानी, सरदार अजीत सिंह की कमान में पंजाब का देहात उबाल पर था। ग्रामीण भारत,

विशेषकर किसानों को लामबंद करने के प्रयास तेज हो रहे थे। जगह–जगह प्रतिरोध फूट रहा था।

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जज्बात अपने परिवार की विरासत से प्राप्त करके भगत सिंह आजादी आन्दोलन से जुडे। उनके परिवार का हर सदस्य इस लड़ाई का हिस्सा बनता आया, वह भी बने। उनकी यात्रा परिवार से जन्मे माहौल से आरम्भ होती है और अपनी लगन, आजादी के लिए तडप और स्वाभिमान की उत्कृष्ट चेतना के चलते मात्र 23 साल के अपने जीवनकाल में वह देश की आंख का सितारा बन कर उभरे। उधर, उनके सहयोद्धा वीर सेनानी चन्द्रशेखर आजाद को आजादी आन्दोलन में ठेलने की निजी परिस्थिति भिन्न होते हुए भी, सामान्य माहौल ब्रिटिश दमन–शोषण के प्रति देश में खड़ा आक्रोष था। दोनों अपने समय के युवा योद्धा थे। यह चमत्कार नहीं, ठोस परिस्थिति में उनकी अपनी तडप तथा लगन की देन थी –स्वाभिमान की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति।

छोटी सी उम्र में, भारत के इन दो लाडलों की अपने देश के प्रति एक–निष्ठ लगन तथा सिद्धान्त के लिए अपने को स्वाह करने की बाज़ी लगा कर विदेशी शासन के विरुद्ध गैर–समझौतावादी संघर्ष की गाथा से अवाम अभीभूत थे। दूसरों से सर्वथा अलग! अन्याय, अत्याचार, और शोषण के विरुद्ध लड़ने के अपने इरादे पर डटे रह कर बेइन्तहा कष्ट सहने व आजादी के लिए मांगी जा रही कीमत देने की तत्परता और बेलाग कुर्बानी, सोच में पंथनिर्पेक्ष बेबाकीपन तथा सादगी भरी जीवन–शैली, अध्यनशीलता, साफ समझ व शालीन आचरण की भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद अद्वितीय मिसाल थे और एक खास देशज जनपक्षीय पॉलिटिक्स का प्रतीक बन गए।

यह अनायास नहीं है कि भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद की दास्तान लोगों को आज भी हिलोड़ती है। यह इस बात का परिचायक है कि अमर शहीद की छवि जन–जन के दिलो–दिमाग पर आज भी ताजा है। यह बेनज़ीर जोड़ी नेताओं की पंक्ति से अलग थी; अवामी हित के लिए कुर्बान होने वाले लोगों की कतार के ये योद्धा थे। इसीलिए अवाम भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद को अपने दिल–ओ–दिमाग के अधिक निकट पाते हैं। वे उनके अपने थे, अपने बीच से थे।

ये दोनों वीर योद्धा आमजन की सन्तान थे। सामान्य–साधारण परिवारों के अपने थे। न धनबल से राजनीति करने ये आगे आये थे, न नेता बनने की चाह से इन्हें सादगी बरतने की सलाह मिली थी; जो थे, जैसे थे, उस गुदडी से निकल कर अवामी हित की खातिर लड़ाई के मैदान में उतरे योद्धा थे। इस पक्ष ने ही इन्हें आमजन का चहेता बना दिया था, जो रुतबा दूसरा कोई हासिल नहीं कर सका। देश मे मुक्ति आन्दोलन के सवालों को जन चेतना का अंग बनाने में उनका योग अद्वितीय है जो उनकी आज भी शोहरत का रहस्य है।

भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद उस समय की आतंकवादी धारा से अलग हट कर अपनी छोटी सी आयु में ही धारदार इंकलाबी बने। इस युद्ध के वीर सेनानी, चन्द्रशेखर आजाद उस सेना के सेनापति थे जिसको संगठित करने में भगत सिंह ने निर्णायक भूमिका निभाई थी। ब्रिटिश शासन को सशस्त्र चुनौती देने वाली आतंकी लहर को इंकलाबी लहर में बदलने का इनको श्रेय जाता है जिसे बाद में अनेक लोगों ने सींचा। यह बड़ी चुनौती थी।

23 मार्च का महत्व

सरदार भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु की शहादत एक इतिहास की घटना बन गई है। हंसते–हंसते फांसी का फंदा चूम लेने की पहले भी अनेक मिसाल हैं। भारत में भी ऐसी मिसालों की कमी नहीं रही। लेकिन, एक चालाक और बेरहम दुश्मन की ताकत को, उसी की जेल में बैठ कर, ललकारने और उसे छकाने वाले बेजोड संघर्ष को चलाते हुए बेखौफ फांसी पर चढने की यह एक अद्वितीय मिसाल बनी।

अपनी शहादत के दिनों उम्र के हिसाब से चन्द्रशेखर आजाद और भगत सिंह अधकचरे ही थे। एक ने 25वीं शरद ऋतु पार की थी तो भगत सिंह मात्र 23 वर्ष के हुए थे। उस उम्र में जिम्मेदारी ओढ कर चलते हुए कोई नौजवान फिसलता है तो इसलिए माफी का हकदार है कि जीवन के इस पहर में गिरते उठते सीख का समय माना जाता है। लेकिन, ये थे कि सामाजिक जीवन के महार्थियों को मात देते लगते थे!

लक्ष्य के प्रति निष्ठा और कर्तव्यपरायणता की ऊंचाइयां उस जमाने की सामान्य बात होते हुए भी विशिष्टता लिए उधम सिंह, मास्टर दा व प्रीतिलता वाडेकर जैसे एक से बढ कर एक नौजवान भारत के इतिहास की शोभा बढाते दिखाई देते हैं। भगत सिंह और आजाद भी इनमें थे। लेकिन, आचरण–व्यवहार का वह बडप्पन, दृष्टि की स्पष्टता, बौद्धिक क्षमता का वह शिखर, नैतिक बल औैर चारित्रिक–वैैचारिक परिपक्वता तथा तर्कशीलता का दर्जा उनमें दिखा वह किसी अन्य में नहीं। उनके चरित्र के इस लक्ष्ण का बखान करने के पीछे मकसद किसी अन्य को छोटा दिखाना नहीं है। उस जमाने में समाज में बदलाव की खातिर जो आए वे सभी श्रद्धा के पात्र हैं। यहां मकसद सिर्फ उस अन्तर को दर्शाना है जिसके ये शहीद मूर्त रूप बने और कडे संघर्ष के बाद बने। मकसद यह रेखांकित करना है कि वैचारिक ईमानदारी व स्पष्टता के सामांजस्य में आचरण पद्धति की बदौलत आदमी उन ऊंचाइयों को छू सकता है जिसे आम आदमी दिल खोल कर अपनी श्रद्धा देता है। चन्द्रशेखर आजाद और भगत सिंह जनगण की मुक्ति आन्दोलन के ऐसे चरित्र हुए हैं जिन्हें देश के अवाम ने अपनी अपार श्रद्धा दी है। आज भी वे घोलमाठा करने के तमाम प्रयासों के बावजूद सम्मान के पात्र बने हुए हैं औैर उनके मन–मस्तिष्क पर सवार हैं जिस जगह अन्य कांई नहीं।

भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद एक नम्बर की राजनीति के सिपाही थे जहां राजनीति किसी व्यक्ति के निजी हित का साधन न रह कर सामाजिक उद्देश्य का जरिया बनती है, जहां आचरण निर्धारित लक्ष्य तथा कथनी के साथ मेल रख कर चलता है। आजकल जिस दो नम्बर की राजनीति का बोलबाला है और जिसकी धमक उस जमाने में भी सुनाई पडने लग गई थी वह भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद को मोहित नहीं कर सकी थी। उससे तो वे अपनी छोटी सी जिन्दगी के आखिरी सांस तक लोहा लेते रहे। जनपक्षी लक्ष्य की खातिर उनकी राजनीति का छोर जीवन न्यौछावर करने की सीमा तक फैल चुका था जहां कहीं झिझक नाम की चीज नहीं थी।

इस सब के बीच भगत सिंह की राजनीति के एक पहलू पर कम ही ध्यान दिया गया है, लेकिन जो उन्हें अद्वितीय बनाता है। अपनी राह

को रोशन करने का उतावलापन उनमें था किन्तु, पागलपन नहीं। किसी महान नेता की लकीर के फकीर ये लोग नहीं बने। अहसास होते ही उन लोगों ने उस जमाने की उस 'आतंकी' राह से पीछा छुडाने में देर नहीं लगाई जिसका वे बेखौफ हिस्सा थे; आतंक व इन्कलाबी राह के फर्क को समझते ही बेहिचक आगे बढ गए; न इन्कलाब का वैसा अर्थ लगाया जिसे यहां के कुछ 'कम्युनिस्ट' यन्त्रवत मान कर चल रहे थे, हालांकि उनके पीछे लेनिन के उद्धरण चिपके हुए थे। अपने सिद्धान्त के लिए अडिग गैर–समझौतावादी राह की मिसाल बने तो वैचारिक सच को पाने की एक आवश्यक लोच उनमें थी; कठमुल्लेपन व अंधता से दूर और सच को ग्रहण करने को सदा तैयार!

मुक्ति आन्दोलन का अधूरा सफरनामा

भारत में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सन् 1857 में छिडे युद्ध को सामान्यत स्वतन्त्रता आन्दोलन की पहली जंग कहा गया है। स्वयं कार्ल मार्क्स जैसे विद्वान ने उस समय लिखे अपने लेखों में इसे इसी तरह वर्णित किया था। इससे यह ध्वनि निकलती है कि सन् 1857 से पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी शासन को मानो यहां स्वीकार कर लिया गया था। ऐसा नहीं है। इसका एक अन्य पहलु है कि सन् 1857 के कथित पहले स्वतन्त्रता आन्दोलन के बाद ब्रिटिश शासन के विरुद्ध छिड़े प्रतिरोध को कभी दूसरा स्वतन्त्रता आन्दोलन कह कर चिन्हित नहीं किया गया। न यह कहा गया कि उक्त शासन के विरुद्ध सन् 1857 के बाद प्रतिरोध बंद हो गया और पहला आन्दोलन ही अन्तिम हो कर रह गया। सच तो यह है कि इस विदेशी शासन को सन् 1857 से पहले और बाद में भी निरन्तर चुनौती मिलती रही थी। सन् 1857 के युद्ध की विशेषता है कि यह देश व्यापी प्रतिरोध की अभिव्यक्ति बना। इसी अर्थ में मार्क्स अथवा अन्य लोगों द्वारा सन् 1857 के युद्ध को पहला स्वतन्त्रता आन्दोलन माना गया है। इसके बाद ब्रिटिश शासन के विरुद्ध छिड़े आन्दोलन को स्वतन्त्रता आन्दोलन व मुक्ति आन्दोलन के दो विशिष्ट नामों से जाना गया है।

भगत सिंह व उनके साथी ब्रिटिश शासन के विरुद्ध छेड़े गए अपने प्रतिरोध को मुक्ति आन्दोलन कह कर चिन्हित करते थे। वे ब्रिटिश

शासन से आजादी के साथ–साथ ही हर तरह के शोषण–दमन से मुक्ति के पैरोकार थे। इस तरह ये लोग भारत के मुक्ति आन्दोलन के वैचारिक, सांगठनिक व राजनीतिक सरदार (नेता) बन कर उभरे थे। उनकी ख्याती इसी रूप की थी। उनकी शहादत के बाद मिली ख्याती को भुनाने की जो होड़ आज तक चली आ रही है उससे उनके इस चरित्र को अनदेखा करने का माहौल अवश्य बना है। यदि पूरे आजादी आन्दोलन पर निगाह डाल कर देखा जाए तो पता चलेगा कि भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद नामक ग्रुप का आन्दोलन असल में यहां मुक्ति आन्दोलन को रूप देने का प्रयास था।

वैचारिक सफरनामा

भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद सच में क्या थे और किस बात के लिए वे संघर्ष में कूदे और क्यों? इस प्रश्न पर चर्चा की पृष्ठभूमि को ठीक से विवेचना हेतु उस समय की विशेषता को रेखांकित करना आवश्यक है। इन वीरों के सक्रिय जीवन का दौर, 1917 की रूसी समाजवादी क्रांति के परिणामस्वरूप विश्व स्तर पर घटित वैचारिक एवं व्यावहारिक क्षेत्र में युगान्तकारी परिवर्तन का काल था, तो भारत में भारी उथलपुथल का समय रहा। यहां के पहले दौर में कदम–कदम पर आजादी आन्दोलन की फिज़ा फिर से बनती जा रही थी। भारी चोट खाने के बाद सहमा भारत विदेशी शासन के अन्याय व शोषण के विरुद्ध अन्दर से सुलग रहा था। सन् 1917 की रूसी क्रांति और 1919 में जलियांवाला बाग की शहादत ने यहां भी वैचारिक एव व्यावहारिक क्षेत्र में इंकलाबी आकांक्षों की चिंगारी को सुलगाने का काम किया। इस पृष्ठभूमि में सन् 1857 की असफल क्रांति के बाद से लोगों में भारी शोषण व दमन से उभरी इस गहरी टीस को अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद और भगत सिंह ने अलग तरह की वाणी दी। एक जगह पहुंच कर इसमें उनका अपना स्थान तैयार हुआ था। ऐसा नहीं है कि दूसरे किसी ने वह नहीं कहा जो इन शहीदों ने आवाज लगाई। लेकिन, आजाद और भगत सिंह की बात में जैसा दम लोगों को सुनाई दिया उसका तेज अन्य में कहीं नहीं था।

यह दौर सामान्यतः 1931 तक चला। इस मुक्ति आन्दोलन के जनक भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद की शहादत के साथ ही यह आन्दोलन थम सा गया। बाद में चिटागांग शस्त्रागार पर हथियारबंद चढाई में मास्टरदा व प्रीतिलता वाडेकर की सन् 1933 में शहादत के बाद बचा खुचा प्रयास भी समाप्त हुआ। 1933 के बाद से भारत में संघर्ष का रुप पलट कर फिर आजादी आन्दोलन का रह गया, जिसपर मुख्यतः गांधीजी का वर्चस्व बना, हालांकि 1946 में रॉयल इंडियन नैवी यानी नौसेना के रंगरूटों की बगावत में सुधारवादी आन्दोलन से हट कर प्रयास की छाप थी, जिसे स्थानीय जन–समर्थन भी मिला.

भगत सिंह व चन्द्रशेखर आजाद को विरासत में आजादी की पहली जंग और उसके बाद अंग्रेज शासकों द्वारा यहां चलाये गये व्यापक आतंक का साम्राज्य मिला था। उससे इन्होंने आवश्यक सबक लिया और अपनी रणनीति एवं कार्यनीति को परिष्कृत करने पर निरन्तर सतर्क रहे। चन्द्रशेखर आजाद–भगत सिंह ने सन् 1857 से आरम्भ हुए आजादी आन्दोलन को व्यवस्था परिवर्तन यानी देश के मुक्ति आन्दोलन में तबदील करने की जद्दोजहद शुरु की। वह दौर लेनिन के नेतृत्व में 1917 की समाजवादी क्रांति के प्रभाव का दौर था। भारत के लिए उपयुक्त राह की तलाश में भगत सिंह ने जहां दुनियां के इंकलाबी विचारकों को खंगाला, 1917 के बाद सोवियत संघ में चल रहे प्रयोग का मन लगा कर अध्ययन किया और जिस सीमा तक सम्भव हुआ देश के भविष्य का अपना चित्र बनाने में लगे। उस समय उनके विचार की सीमा, समय की सीमा थी। उस समय की सीमा का उच्चतर भाव उनमें था। यह उनकी विशेषता रही है जो उनके बौद्धिक विकास का परिचायक है। जिस दिन भगत सिंह इस तरह के विचार–मंथन में लगे उस दिन वे कार्यकर्त्ता थे, कोई नेता नहीं! नेता बनना उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया; उस दिन भी नहीं जब वे व्यापक प्रचार–प्रसार के चलते आम जन के दिलों में जगह बना चुके थे! जनवरी, 1931 में लाहौर जेल से लिखे एक लेख में वे कहते है कि मैं 'एक राजनीतिक कार्यकर्त्ता' हूं'।

आन्दोलन की सफलता– असफलता ने इन्हें कभी विचलित नहीं किया। यूं भी इंकलाबी आन्दोलन की यही सीख रही है। इतिहास में

अनेक मिसाल हैंः विदेशी शासन के विरुद्ध, आजादी के लिए, सन् 1857 में देश की पहली जनतान्कि क्रांति घटित हुई। पूरे पांच महीने तक देश में अलग तरह की शासन व्यवस्था चलाने का प्रयास हुआ और साथ ही ब्रिटिश लुटेरों का सफाया करने का अभियान चलता रहा। अन्ततः यह प्रयोग परास्त हो गया जैसा आगे चल कर मार्च 1871 में फ्रांस की राजधानी के नाम से जानी जाने वाली क्रांति, पैरिस कम्यून के साथ तीन महीने बाद घटा।

देश की स्वतन्त्रता के लिए चन्द्रशेखर आजाद और भगत सिंह दोनों ही पहले 'आतंकी' राह के सिपाही बने। दर्शन के बतौर आतंकवाद के प्रवर्तक प्रिंस क्रॉपाटकिन से वे प्रभावित होकर आगे बढे। अंग्रेज हुकूमत की नादिरशाही के आगे देश के नौजवानों के सामने एक समय विकल्प नहीं था। स्वतन्त्रता के लिए आतंकवादी दर्शन में ये लोग राह खोज रहे थे। उन्हें गांधी की राह तर्कहीन लगती थी। आन्दोलन के अनुभवों और दार्शनिक अध्ययन के एक स्तर पर अपने कुछ मित्रों के साथ ये दोनों आतंकी राह से अलग राह की खोज में लगे और आगे बढ गए। इसमें भगवती चरण वोहरा व पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी ने मदद की।

सरदार भगत सिंह उस इंकलाबी संगठन के वैचारिक सरदार बने जिस संगठन को चंद मित्रों ने 1928 में अलग से रूप देना आरम्भ किया था, हालांकि इसमें संगठन के अन्य नेताओं के योग को भी नकारा नहीं जा सकता है। उस विचार का सार वह मार्क्सवादी सोच थी जिसका आकर्षण रूस में 1917 की सफल क्रांति के कारण उस समय चरम पर था, हालांकि उसका तार्किक असर पहले भी कम नहीं था। रूस के हल जोतते किसान को, कारखाना मजदूर के संग खडा होने में उसी तर्क ने इंकलाब का हामी बनाया था। भगत सिंह व भगवती चरण वोहरा उस दौर की सृष्टि हैं जिसे इस सफल क्रांति ने पंख दिए। वे भारत के लिए ऐसा ही सुहाना चित्र लेकर चल रहे थे। यह उस समय पूरी तरह संगत एवं स्वाभाविक था। अन्य के मुकाबले भगत सिंह भारत में उस विचार की सबसे उत्कृष्ट सृष्टि बने। यह उनकी उपलब्धि थी।

एक सफर तय करके चन्द्रशेखर आज़ाद–भगत सिंह बेसबरी से मूलतः साम्यवादी चिंतन के पैरोकार बनें। समाजवादी इंकलाब पर

लेनिन की सोच व कार्यशैली ने रूस में 1917 की क्रांति के जरिये सफलता के शिखर को उस समय छूआ। दुनियां भर के इंकलाबियों का इससे अभिभूत होना स्वाभाविक था। भगत सिंह व चन्द्रशेखर उनमें थे। उस समय तक उपलब्ध विश्व स्तर के इंकलाबी अनुभवों के आधार पर उनका मत जिस तरह की कर्मशैली में वैज्ञानिक समझ को ढाल सकता था उसे पूरी लगन से अपने व्यवहार का आधार बनाया और वे अवामी आकांक्षा के प्रतीक बने।

यह अलग बात है कि आर्थिक–राजनीतिक व प्रशासनिक क्षेत्र के सवालों पर इनकी मार्क्सवादी समझ उस वक्त की अवधारणाओं की सीमा को पकड़ पाने अथ्तवा पार पाने में समर्थ नहीं हो सकती थी। यह सोवियत प्रयोग की विफलता के बाद की परिघटना है। 1931 में साम्यवादी सोच को जितना बेहतर समझ सकते थे उसकी यहां वे उच्चतम अभिव्यक्ति थे। इस अभिव्यक्ति की अद्भुत ईमानदारी को देख, जनता ने उन्हें असीम सम्मान दिया।

भगत सिंह विचार और कर्म से इंकलाबी थे। उन्होंने सोच–समझ कर मार्क्सवादी जीवन–दर्शन को अपनाया और विचारशैली में वस्तुवाद के पैरोकार रहे जो इनकी रग–रग में रम गया था। विचार के मामले पर वे अन्तिम सांस तक अडिग एवं गैर–समझौतावादी रहे। उसी जीवन–दर्शन में देश का वे भविष्य देख रहे थे।

ब्रिटिश काल की जेलों में रहते हुए जितना वे पढ़–लिख सके उसपर मार्क्स से लेकर प्लेखनोव, लेनिन आदि तक के विचारकों का प्रभाव और सोवियत संघ में हुए व्यावहारिक प्रयोग की छाप है। मार्क्सवादी राजनीतिक–अर्थशास्त्र के जिन प्रमुख सवालों पर वे अपनी मान्यताओं को जाहिर करते हैं उनमें पांच प्रमुख पक्ष हैं:

ये पक्ष हैं:

(1) जीवन–दर्शन एवं विचार पद्धति

(2) क्रांति और राजसत्ता का सवाल

(3) राजनीतिक पार्टी की अहमियत और उसके पेशेवर कार्यकर्त्ताओं पर टिके अतिकेन्दित चारित्रक स्वरूप

(4) विकास की धारणा अथवा विकास मॉडल का सवाल

(5) सामाजिक गठन में पेशेवराना जत्थेबंदियों के महत्व का सवाल

स्वतन्त्रता आन्दोलन में भगत सिंह–चन्द्रशेखर आज़ाद एक विशिष्ट परिघटना का प्रतिनिधित्व करते है.। इसके निम्ने आधार–भूत पहलू हैं:

1. ये लोग कुछ गोलमोल व्यक्तित्व के धनी नहीं थे, जो हर तरह के विचार से मेल खाते हों। उन्होंने भारत में समाजवादी क्रांति के लिए जमीन तैयार करने का बीड़ा उठाया और मार्क्सवाद को अपना जीवन दर्शन बनाया।
2. उन्होंने मार्क्सवाद को किसी पुस्तक विशेष अथवा व्यक्ति विशेष तक सीमित करके नहीं समझा
3. वे हर तरह की धार्मिक आस्था से मुक्त थे। उनका नज़रिया वस्तुवादी था।
4. वे व्यक्तिवाद से जूझ रहे थे और उसके खतरे को पहचानते थे।
5. उनकी प्रथम आस्था अवाम के प्रति थी, हालांकि उनका नज़रिया विश्व–व्यापी था। हर तरह की संकीरणता से वे मुक्त थे। उन्हें चरमपंथी कहना या समझना गलत है।
6. उन्होंने आतंकवादी दर्शन को बिसार कर इंकलाबी लहर को अपनाया था।
7. उन्होंने 1920–25 में बनी भारत की कम्युनिस्ट पार्टी और उनके नेताओं से हटकर, सन् 1928 में अलग से जत्थेबंदी खड़ी करने का काम किया.
8. वे गांधी की आर्थिक–राजनीतिक सोच से किनारा करके चल रहे थे।
9. भगत सिंह–चन्द्रशेखर को अलग करके नहीं देखा जा सकता हैं; वे एक दूसरे के पूरक हैं.
10. परिस्थिति के अनुसार रणनीति की लचक उनमें थी, किन्तु मौकापरस्ती से दूर थे।
11. यह सरासर गलत है कि वे कभी रोमॉटिक इंकलाबी रहे। उन जैसी वस्तुपरक समझ और सांगठनिक पकड़ शायद ही किसी बिरले इंकलाबियों में उस समय रही।

जीवन–दर्शन के बतौर भाववाद को छोड़ कर, भगत सिंह व उनके साथियों ने अध्ययन–मनन के बाद, वस्तुवादी विचारशैली को अपनाया जिसमें कहीं कोई लोच दिखाई नहीं पड़ती है। सादगी और न्याय के लिए संघर्ष उनकी जीवनशैली का अंग बना। जनशक्ति पर अटूट विश्वास और जनसमर्थन पर भरोसा उनका संबल रहा। चक्रांत और ओच्छेपन से दूर रहते हुए सामूहिक विचार एवं कार्यपद्धति इनकी आचरण–विधि बनी तथा शालीनता इनकी पहचान, पढ़े– लिखों की हैकड़ी से सर्वथा मुक्त।

अपनी वैचारिक यात्रा के पहले सौपान को पार करके, सन् 1928 में भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद ने 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन का गठन किया। उससे पहले वे उस समय की आतंकी लहर से जुड़ कर देश को आजाद करने के लिए लड़ रहे थे। जनवारी, 1931 में ड्रीमलैण्ड की भूमिका लिखते हुए उनका स्पष्ट मत था कि

''अपनी पूरी कोशिशों के बावजूद मुझे ऐसी एक भी क्रांतिकारी पार्टी नहीं मिली जिसे इस बात का स्पष्ट ज्ञान हो कि वह किस बात के लिए लड़ रही है। अन्य सभी पार्टियों में जो लोग थे वे मात्र इतना जानते थे कि उन्हें विदेशी शासकों से लड़ना है। वह विचार अपने आप में सराहनीय है, लेकिन उसे क्रांतिकारी विचार नहीं कहा जा सकता है।''(भगत सिंह के सम्पूर्ण दस्तावेज पृष्ठ 265)

यह नहीं कहा जा सकता है कि आज की तरह कहीं जगह ने मिलने पर इन्होंने अलग पार्टी या संगठन बनाने का प्रयास किया था। उस समय राजनीति में ऐसा रुझान नहीं उभरा था। मात्र वैचारिक धरातल पर ही अलग जत्थेबंदी का प्रश्न खड़ा होता था। भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद के सामने भी अलग जत्थेबंदी हेतु यही वैचारिक प्रश्न प्रमुख था। वे निर्णायक तौर पर आतंकी लहर से अलग होकर इंकलाबी लहर के पुरोध ा बने और कथित कम्युनिस्ट पार्टी को इस मामले में खारिज करके आगे बढे। यह इनकी नयी शुरुआत थी।

देश में तब तक एक 'कम्युनिस्ट' नाम का दल होते हुए भी चन्द्रशेखर आजाद सहित अपने अनेक सहभागियों के साथ मिलकर

उन्होंने भारत की माटी में यहां की जरूरत के अनुरूप एक नया इन्कलाबी संगठन बनाया था जिसके तहत वह सन् 1928 के बाद से काम करते थे। संगठन के प्रति उनकी निष्ठा किसी से कम नहीं थी। इसके महत्व को भी उन्होंने अच्छी तरह समझा था। उपलब्ध दस्तावेज इस तथ्य को बखूबी स्पष्ट करते हैं।

इन्कलाबी लक्ष्य को केन्द्र में रख कर संघर्ष को आगे बढाने के सिलसिले में भगत सिंह जरूरत के समय स्वयं अपने प्रिय संगठन की लक्ष्मण–रेखाओं से आगे निकलने से नहीं चूके और अपने क्रियाशीलता को नहीं गंवाया। उन्होंने संगठनों को मात्र अवामी हित का साधन भर माना, संगठन के आग्रह के दायरे में सिमट कर लक्ष्य की मौत को अस्वीकार कर दिया। यह उनकी कुव्वत थी कि संघर्ष के लक्ष्य को सर्वोपरि रखा और 'संगठन' को भी अमर बना दिया, भले उनके बाद यह संगठन अपने बाल्यकाल से आगे नहीं बढ पाया और अंग्रेज हुकूमत इसे बिखेरने में कामयाब हो गई। इसके अलग कारण रहे। यह हालात का संयोग था।

हर बिल का खूंटा नही

भगत सिंह–चन्द्रशेखर आज़ाद का देश में बहुत ऊंचा रुतबा है। शहादत के 80 वर्ष बाद आज भी बना हुआ है। यह उनकी अहमियत को दर्शाता तथ्य है। आजादी के बाद एक स्थिति अचरज पैदा करती हैः आर्य समाज के लोग भगत सिंह को आर्यवीर बना कर पेश करते हैं तो भाजपा इन्हें एक 'राष्ट्रवादी' छवि में कैद करना चाह रही है, तो कम्यंनिस्ट दल इन्हें अपने अनुकूल पेश करने पर लगे रहते हैं और माओवादी अपनी सशस्त्र क्रांति की लीक को इनसे जोड़ कर पेश करते आ रहे हैं। हर राजनीतिक दल से जुड़े युवा संगठन इन्हें अपना ताबीज मान कर चलते ही है। हर कोई उन्हें अपना बता रहा हैं; मानों वे सब तरह के छेदों में फिट होने वाला खूंटा हों जो वह कतई नहीं हैं! आम लोगों के ज़हन में भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद के रचे–बसे नाम, काम व छवि को सन् 1947 के बाद से भुनाने की यह दौड़ का अजब नज़ारा देखने में आता है।

तब, आमजन के मन में प्रश्न उठ खड़ा हो कि आखिर भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद का असल रूप क्या बनता है? किसी के लिए यह प्रमाणित करना अत्यन्त कठिन है कि ये लोग सब तरह के खांचे में फिट होने वाले कोई खूंटा है। यह प्रमाणित तथ्य है कि उनका अपना दर्शन, अपनी अलग राह थी। सच है कि ये दोनों इंकलाबी अपने देश से प्रेम करते थे। भगत सिंह की पृष्ठभूमि आर्य समाज से जुडे इनके दादाजी से थी। ये मार्क्सवाद को अपनी राह की रोशनी पर कर चले और वक्त पडने पर पिस्तोल का प्रयोग करने से नहीं चूके। किन्तु यह भी इससे बढ कर सच है कि वे 1928 से 1931 के बीच की अपनी राजनीति यात्रा में धुर इंकलाबी बन कर उभरे।

आज सामान्य आदमी भगत सिंह को याद करें इसमें कुछ अचरज नहीं। ऐसा करने पर उसकी प्रशंसा होगी। उनके धुर वैचारिक विरोधी भी ऐसा करते हैं तो यह उनके मामले में लोकलाज का तकाज़ा है जो यह प्रमाणित करता है कि उनकी ख्याती को भुनाने की चेष्टा हो रही है। जब ऐसे राजनीतिक दलों द्वारा उनको याद किया किया जाता हैं जिनका उनकी सोच से निकट का भी वास्ता नहीं तब भाव भारी असंगति से परिपूर्ण भी हो जाता है; खतरा यह है कि भगत सिंह–चन्द्रशेखर के बारे आम–जन के मन में धारणा स्पष्ट होने की जगह उनकी विचारधारा के सम्बंध में भ्रम खड़ा करने वाली स्थिति ही होती है।

प्रश्न तब उनकी प्रासंगिकता का खड़ होता है जिसके सन्दर्भ में इन शहीदों के सही सही आंकलन की बात महत्व रखती है। इससे आगे, वर्तमान सन्दर्भ में उनके विचारों की ठोस समझ का है। अपनी शहादत के बाद ये वीर जितने लोक–प्रिय बने उतना ही इन्हें अपने मकसद के लिए भुनाने के प्रयास हैं। यह दूसरा सच है कि अन्य महापुरुषों की तरह भगत सिंह के लिखे–कहे शब्दों का उद्धरण देकर उन्हें अपने अपने चौखटे में कैद करने के प्रयास रहते ही हैं। अर्थात ऐसे लोग बीसवीं सदी के तीसरे–चौथे दशक के आयने में सन् 2012 के हिन्दुस्तान को पढना चाहते हैं।

किसी परिघटना, विचार अथवा व्यक्तित्व की परख हेतु विवेचना/मंथन में प्रश्न की थाह पाने के लिए सबसे बड़ी अडचन नजरिये में भिन्नता की आती है। दूसरी रुकावट हित–साधना की है। इनसे पार

पाने पर पुरानी विचार–पद्धति से पीछा छुडाना आवश्यक हो जाता है, अन्यथा दृष्टिभ्रम मतान्तर को पक्का करने का काम करता है। साथ ही आवश्यक रहता है कि सन्दर्भ–स्थिति का वस्तुपरक मूल्यांकन करने में निजी मत से कोई कितना निजात पा सका है और विचार का सार कहां है। यह मंथन प्रक्रिया का वैचारिक पक्ष है।

विचार से इंकलाबी लोग न बुतपरस्त होते हैं, न व्यक्तिपूजक, हालांकि इतिहास की धारा में व्यक्ति विशेष की भूमिका का संयोजन सामाजिक प्रक्रिया का आवश्यक अंग हैं जिसे सच्चाई तक पहुंचने वाले सभी को स्वीकारना पड़ता हैं। भगत सिंह तो कर्म से भी इंकलाबी थे। समय के दस्तावेज यी कते लगते हैं। यह भी बुनियादी बात है कि सच स्थान और काल सापेक्ष होता है, वह सभी काल के लिए एक समान नहीं रहता। सन्दर्भ बदलने पर उसका स्वरूप बदलता है। परख की इस अवध ाारणा का सीधा अर्थ है कि किसी ऐतिहासिक पुरुष की सार्थकता को सदा के लिए उसकी कहावत, उसकी लिखत में नहीं देखा जा सकता है। ऐसा करने से गलत परिणाम हाथ लगेंगे और परिणाम में उस व्यक्तित्व को ही ओच्छा करके बैठेंगे।

अपनी राह की तलाश में हर कोई अपने पुरखों से सीखता है, किन्तु जरूरत के लायक अपनी राह का निर्माण करने की जिम्मेदारी उसी के अपने कंधे पड़ती है। सीखने का यही तात्पर्य बनता है। अपने पुरखों को याद किया है, उनका सम्मान हुआ है, उन्हें प्रतिमा का दर्जा देकर स्तुतिगान से संतोष मात्र धर्मान्ध पुजारी कर सकते हैं। धर्मागत अभ्यस्त कोई 'इंकलाबी' भी यह दोहरा सकता हैं। केवल अग्रणी तहजीब में यह परिपाटी नहीं रही।.

मार्क्स–एंगेल्स, बाद में लेनिन–स्टालिन, माओ, हो चि मिन्ह, ची गवेरा आदि अपने पुरखों से सीख लेने में यह नजरिया न अपनाते और अपने पूर्ववर्ती महापुरुषों की लिखत को ही पीटते रहते तो वे हेगेल, प्लेखनॉव अथवा मार्ती होते, स्वयं कभी इतिहास पुरुष की भूमिका नहीं निभा सकते थे। वैचारिक नवीनता में बौद्धिक गत्यात्मकता की जरूरत होती ही है। नकलची कभी वैचारिक सृजन नहीं कर सकता है और वैचारिक जड़ता का धनी कभी समाज को आगे लें जाने जैसी जिम्मेदारी

में सार्थक योग देने की क्षमता अर्जित नहीं कर सकता है। बड़े अदब और शालीनता व विनम्रता के साथ कहें तो, वैचारिक बौनेपन से ओच्छी राह ही तैयार होती है।

अनेक कम्युनिस्ट दिग्गजों की तरह भगत सिंह भी उस समय मान कर चल रहे थे कि ''एक इन्कलाबी पार्टी के बिना इन्कलाब सम्भव नहीं''। कम्युनिस्ट नेताओं ने तो 'इन्कलाबी पार्टी को इन्कलाब की पूर्व शर्त कहना ही आरम्भ कर दिया है! इस जुमले के अनुरूप नौजवान भगत सिंह–चन्द्रशेखर आज़ाद ने भी माना कि इन्कलाब के लिए ऐसी पार्टी बनाना जरूरी है। इस सवाल पर उस समय तक यही प्रभावी सोच थी। उनकी शिक्षा–दीक्षा उस समय दुनियां भर में आकर्षण का केन्द्र बने कम्युनिस्ट दर्शन से हुई थी, किसी विशेष देश की पार्टी अथवा नेता से नहीं। इसमें लेनिन अथवा तीसरे कम्युनिस्ट इन्टरनैशनल द्वारा सन् 1921 में प्रतिपादित 'इन्कलाबी संगठन के सिद्धान्त' शामिल थे। चूंकि स्वयं लेनिन ने 1922 में इंटरनैशनल की काग्रेस में ही इन सिद्धान्तों को खारिज कर दिया था परन्तु, उनके अस्वस्थ होने का लाभ लेकर बाद में इस दस्तावेज को आम जानकारी में नहीं आने दिया गया तो अन्य इंकलाबियों की तरह सम्भवत भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद का ग्रुप भी लेनिन द्वारा संगठन के प्रश्न पर पलटी गई सीख से अनजान ही रहे।

इंकलाबी आन्दोलन पर भगत सिंह द्वारा अनुमोदित अवधारणाओं को आजके सन्दर्भ में परखें तो पाते हैं कि 21वीं सदी के आरम्भ, और सोवियत प्रयोग के ढह जाने के बाद, का भारत वह भारत नहीं है जिसको 1931 तक भगत सिंह और उनके साथी जूझ रहे थे। न वह वैसी दुनियां रह गई है जिसमें भारत को अपनी जगह तलाशनी है। सोवियत प्रयोग की सफलताओं और असफलताओं ने जिन वैचारिक सवालों को खड़ा किया है उनपर भगत सिंह की परिपाटी को निभाते हुए क्रियात्मक रूप में विचार करके ही आज के भगत सिंह का निर्माण होगा, न कि उस वक्त कहे अथवा लिखे शब्दों को दोहराने से। भगत सिंह और उनके साथियों की खासियत यह रही थी कि वे नकलची न बन कर, सामाजिक बदलाव हेतु वैचारिक क्रियात्मकता के प्रयोगी थे।

इंकलाब के सवाल पर उस समय लेनिनी विचार था कि 'एक वर्ग की राजसत्ता को उखाड़ कर दूसरे वर्ग की राजसत्ता पर कब्जा करना' इंकलाब का लक्ष्य है। चूंकि राजसत्ता मुख्यतः एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग को हथियारों की ताकत पर दबा कर रखने का संस्थान है, इसलिए वह वर्ग विशेष की तानाशाही का रूप है तथा समाजवादी दौर में इस सर्वहारा की तानाशाही को अतिकेन्द्रिकृत होना लाजिमी है, जबकि मार्क्स ने साम्यवाद हेतु राजसत्ता के विलीन होने की सोच दी थी। लेनिन का यह भी कहना था कि इंकलाब की शक्ति सर्वहारा है। लेनिनी समझ के अनुसार किसान वर्ग सर्वहारा का ढुलमुल सहयोगी है जिसे स्वयं समाजवादी दौर में सर्वहारा में बदलने का लक्ष्य है यानी इसे विलीन होना है, जहां खेती का स्वरूप भी उद्योग का होगा! सोवियत संघ के गिरने तक समझ रही कि वेतनभोगी श्रमिक ही इस युग की सबसे प्रगतिशील शक्ति है। भगत सिंह ने भी उस समय अपने लेखों में इन मान्यताओं पर पूर्ण सहमति जताई थी।

राजनीतिक दल के बारे में लेनिनी समझ है कि वह किसी वर्ग के आर्थिक–राजनीतिक हितों का औज़ार है और इस परिप्रेक्ष्य में एक कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा वर्ग का अगुआ दस्ता है, इसलिए इंकलाब की पूर्व–शर्त है तो, सर्वहारा की तानाशाही का औजार। इसका ढांचा भी अतिकेन्द्रिकृत ही हो सकता है, जिसमें 'जनवादी केन्द्रीयता' का सिद्धान्त प्रमुख है।

विकास पर लेनिनी समझ में 'बिजलीकरण' साम्यवाद की नींव है। अर्थात तीव्र गति के औद्योगिकरण से प्रचुर उत्पादन सम्भव है जो एक दिन साम्यवाद के लिए वस्तुगत परिस्थिति उत्पन्न करेगा।

वर्ष 1917 की क्रांति को ठोस जमीन देने का काम सोवियत संघ में चला। लम्बे समय तक वहां की 'सर्वहारा वर्ग के अगुआ दस्ते' की देखरेख में सर्वहारा की तानाशाही' को लाल सेना का कवच मिला और औद्योगीकरण की जबरदस्त लहर में कृषि को भी उद्योग में बदल लिया गया। आबादी का अधिकतर हिस्सा वेतनभेगी मजदूर में बदल लिया गया। किन्तु, वर्ष 1991 के पहुंचते–पहुंचते यह समाजवादी समाज के निर्माण का प्रयोग धड़ाम से गिर गया। वहां करोड़पतियों की जमात सामने आ खड़ी मिली। स्वयं 'लाल सेना' पूंजीवाद की वाहक बनीं। व्यक्तिवाद की गूंज से माहौल भरा मिला।

सोवियत संघ में घटित हुई इस उलटफेर से विश्व स्तर पर शक्ति–सन्तुलन में भारी फेरबदल हुआ है। पूंजी की सत्ता का फिर विश्व में एकछत्र वर्चस्व कायम हुआ। इससे नये सवाल खड़े हुए है, जिनका पहले के भगतसिंह–युग में अर्थ अलग तरह का था। परिस्थिति में इस उलटफेर से अनेक अवधारणाओं की रंगत और सीरत बदली है। इसके बाद से देश एवं विश्व स्तर पर हालात में जिस तरह का बदलाव आया है, उसमें इन योद्धाओं की विरासत को परिष्कृत करके ही लिया जा सकता है। स्थिति में बुनियादी उलटफेर की यही मांग है। अनेक अवधारणाओं पर प्रश्न उठे है जिनपर भगत सिंह ने अनुमोदन किया था। इनमें अन्य के अतिरिक्त, राजसत्ता और राजनीतिक दलों की प्रासांगिकता का सवाल पहले उभरता है तो विकास की अवधारणा पर पुनः मंथन की आवश्यकता खड़ी होती है। फिर, विकास का रथ यदि समाज में अपने साथ घोर व्यक्तिवाद की जड़ों को सींचता मिले तब स्वयं समाज के अस्तित्व को खतरा दस गुणा बढ़ता है और यदि विकास के केन्द्र से मनुष्य हट कर पूंजी विराजमान होती हो तो, विकास के तात्पर्य पर सवाल उठता है। मार्क्स, लेनिन तथा भारत में भगत सिंह द्वारा अनुमोदित उन पुरानी पड़ गई लिखतों को दोहरा–दोहरा कर उनके व्यक्तित्व को नापने–परखने का कुछ अर्थ नहीं बचा है, जो अक्सर अभी तक होता रहा हैं।

मार्क्स, लेनिन एवं यहां भगत सिंह–चन्द्रशेखर आजाद के चारित्रिक गुणों की व्याख्या उनके इन सवालों पर उस जमाने के कथन से न होकर आज की बदली हुई स्थिति में उपयुक्त नयी समझ को खड़ा करने में निहित होती है। समाज को अपंग न करके उसे इतिहास के आगले सौपान तक ले जाने की यही राह बनती है जिसकी खातिर सिंह एक दिन इंकलाबी बनने निकले थे!

जाने–अनजाने हर राजनीतिक दल, हर किस्म का राजनीतिक दल आज पूंजी के साम्राज्य को जिताने अथवा बचाने में लगा हुआ है, वे भी जो कहने को पूंजी की सत्ता के विरुद्ध आग उगलते हैं। सोवियत संघ के प्रयोग में वहां की शासक कम्युनिस्ट पार्टी का यही दुःखद इतिहास सामने आया। इस शासक दल ने सोवियत संघ की अवामी सक्रियता एवं सृजनशीलता को कदम–कदम कैडर की मार्फत अपने हाथ में समेट लिया

और क्रम में औद्योगिक व वित्तीय पूंजी का दब कर निर्माण किया, जो 1991 में पहुंच कर प्रति–क्रांति की शक्ति बनीं। बतौर संस्था राजनीतिक दलों की तब अवाम के लिए सार्थकता का प्रश्न खड़ा होता है। स्वयं सर्वहारा वर्ग के 'प्रगतिशील एवं इंकलाबी चरित्र का भी तब कुछ नहीं बचता है, जब वह अपने वर्ग की सत्ता को बचाने में अगले मोर्चे पर कहीं खड़ा दिखाई नहीं दिया है। भारत में सबसे विचित्र स्थिति उन दलों की है जो अपने को 'कम्युनिस्ट अथवा सोशलिस्ट' बता कर इंकलाबी होने का दावा करते आ रहे हैं, और भगत सिंह की याद में सिर नवाते हैं।

भगत सिंह युग तक संगठन के सवाल पर चूंकि लेनिनी सोच अपने समय की सबसे उन्नत समझ थी, इसलिए भगत सिंह ने इसे अपनाया और प्रतिपादित किया था। इसमें कुछ विरोधाभाषी नहीं है। सत्य है कि सरदार भगत सिंह इन सवालों पर सिद्धान्त प्रतिपादित करने में लेनिन के स्तर पर नहीं पहुंचे पाये थे, न पहुंचने की स्थिति उनके आसपास बनी थी। उन्होंने अपने चारों ओर जो घटते देखा, जो व्याख्या सुनी–पढ़ी उसे ही तर्क मान कर स्वीकार किया था। 1991 की उलटफेर से जो स्थिति बनी और जिस तरह एक कथित इंकलाबी संगठन का जनाजा निकला उसके बाद की स्थिति पर विचार करना उस समय असम्भव था।

दलों के जन्म की कथा

बतौर संस्था एक राजनीतिक दल के जन्म का इतिहास है। एक समय किसानी के दायरे से 'स्वतन्त्र' होने के क्रम में व्यापारी तबके के प्रचारमन्त्र 'स्वतन्त्रता, बराबरी व बन्धुत्व' के कार्यरूप वयस्क मताधिकार पर आधारित जनतन्त्र वजूद में आया था। चूंकि जनतन्त्र में जनता की □ागीदारी निहित है और उसकी सक्रियता से जिस जनशाक्ति का उदय होगा वह अपार है। जनता की सक्रिय–शक्ति के '□भूत' से जल्दी ही यह तबका भयभीत हुआ। यह जनशक्ति उसके शोषण पर टिके तन्त्र की मौत का निमन्त्रण है, इसे समझने में सरमायेदार तबके ने देर नहीं लगाई। वह स्वयं छोटा सा तबका है जो आबादी के बहुत बड़े □ाग को वंचित रखने व उसके शोषण से उत्पन्न दर्द का कारण है। विद्रोह का □य इसी सामाजिक तथ्य पर टिका हुआ है। जनतन्त्र में प्रतिनिधितन्त्र के इतिहास की यही गाथा बनती है।

अपने जनतन्त्र को 'प्रतिनिधि–तन्त्र का रूप देकर इस भय का निराकरण हुआ। इसे संसदीय जनतन्त्र का नाम दिया गया। राजनीतिक दल इसी प्रतिनिधि तन्त्र को संचालित करने की गर्ज़ से एक दिन वजूद में खड़े हुए थे। इससे पहले इतिहास में राजनीतिक दल के अस्तित्व का कहीं निशान तक नहीं मिलता है।

इस 'प्रतिनिधि–तन्त्र' के जरिये जनगण की सक्रियता व पहलकदमी को पंगू करने अथवा निर्धारित दायरे में बान्ध कर रखने का काम इन राजनीतिक दलों ने किया। इसी उपक्रम ने पूंजी की ताकत को जनता की शक्ति के भय से मुक्त किया। यह इतिहास है। राजनीतिक दल उस केन्द्री□ृत संसदीय राजनीति का उत्कर्ष हैं जो पश्चिमी देशों व यूरोप में उद्योगों की सेवा हेतु उ□र कर सामने आई थी। उस आर्थिक ढांचे की आकांक्षाओं को सरंजाम देने के लिए खड़ी हुई राजनीति में ये दल उभरे जिनका लक्ष्य पक्ष या विपक्ष में बैठ कर राज चलाना है।

लेनिन द्वारा प्रतिपादित सर्वहारा के अगुआ दस्ते के बतौर सोवियत संघ की शासक कम्युनिस्ट पार्टी का करदार अन्ततः सर्वहारा की शक्ति का नहीं, पूंजी की सेवादार का बना। इसलिए उसका अलग से सर्वहारा के वर्ग हितों का चरित्र गायब है जिसपर इतना विश्वास करके रूस के इंकलाबी चले थे। सोवियत संघ का प्रयोग ढह जाने के बाद से वहां की शासक पार्टी की कार्यप्रणली के सन्दर्भ में 'जनवादी केन्द्रीयता' का सवाल उभरता है कि इंकलाबी मुहीम में उसकी क्या सार्थकता बचती है? स्वयं कम्युनिस्ट पार्टी में समा गई बौद्धिक बौनेनप की जड़ों पर निगाह डालने से प्रश्न की महत्ता उभरती है।

जिस विकास की राह को सोवियत संघ में लेनिन–स्टालिन के नेतृत्व में वहां के शासक दल ने चुना, वह औद्योगीकरण का था। अभी तक सब क्षेत्रों में विकास के इस महामार्ग पर भरोसा करके चला जा रहा है। भगत सिंह के युग में भी यही युक्ति सर्वमान्य थी।

यह सर्वमान्य धारणा है कि अपने जीवन की धारा को बदलने के संघर्ष में मौलिक फर्क व्यक्तिवादी और समष्टिवादी नजरिये का है। जो उत्पादनशैली व्यक्तिवाद को जन्म दे वह समाजपरक नहीं हो सकती है। 74 साल के सभी प्रयासों के बावजूद, सोवियत संघ में घोर व्यक्तिवाद का

उसी तरह उभरना जैसा पूंजीवादी–साम्राज्यवादी पश्चिम के देशों में, खासकर अमरीका में देखने को मिलता है। इसपर विचार नहीं हुआ है।

उत्पादनशैली में दोनों तरह के खेमों में यह साझे की विरासत है। दोनों में उद्योग व व्यापार विकास की धुरी हैं और दोनों घोर व्यक्तिवाद को झेल रहे हैं। परखने का प्रश्न है कि उद्योग व व्यक्तिवाद में क्या और कैसा सम्बंध है। इंकलाब के प्रश्न पर संवाद के सन्दर्भ में उसकी मूल शक्ति को चिन्हित करने का भी है। मार्क्स 'पीपुल्स पॉवर' अर्थात जनशक्ति को पूंजीवाद के विरुद्ध इंकलाब की शक्ति कहते हैं। लेनिनी सोच ने एक अंश, सर्वहारा को इतिहास की प्रगतिशील शक्ति बता कर ज्रतिष्ठत किया। सोवियत प्रयोग ने सर्वहारा के चरित्र पर जैसी रोशनी डाली है, उसके बाद इस पहलू पर प्रश्नचिन्ह लगा है। प्रश्न उठा है कि व्यवस्था चलाने का अधि ाकार जनता का अपना हो अथवा उसके किसी 'प्रतिनिध' के पास, जैसा अब तक होता आया है।

नयी समाज रचना के सन्दर्भ में राजसत्ता की भूमिका और इसलिए इंकलाब में सत्ता हथियाने की अवधारणा, समाजवादी निर्माण अवधि में अति–केन्द्रित शासन व्यवस्था की लेनिनी सोच, सर्वहारा वर्ग की ऐतिहासिक जिम्मेदारी तथा उसके हिरावल दस्ते के बतौर एक कम्युनिस्ट पार्टी की अवध ाारणा 1991 में सोवियत प्रयोग ढह जाने के बाद गहन पड़ताल में गलत ठहरी है। इन सवालों पर पुरानी सोच की अब कुछ सार्थकता नहीं है, भले अपने जमाने में इन्हें भगत सिंह–चन्द्रशेखर आज़ाद ने अपनाया। काल की सीमा को पहचानने का यही अर्थ बनता है। इससे चन्द्रशेखर आज़ाद–भगत सिंह की आब बढ़ेगी। यही इन्होंने अपने समय किया जिससे वे उस पायेदान पर पहुंचे जिसे देश आज भी सलाम करता है।

इस मायने में चन्द्रशेखर आज़ाद व भगत सिंह की चिंतन धारा का उनके लिखे वाक्यों से नहीं उनकी सोच के सार से परिष्कृत करने की जरूरत है जो ललक तथा वैचारिक कर्मठता भगत सिंह में देखने को मिलती है। आज भी उनकी सार्थकता बनी हुई है। वे उमंग भरे जवान भारत की युवा शक्ति के प्रतीक हैं जिसने देश के स्वाभिमान की खातिर अपने को स्वाह किया। शहीद भगत सिंह पर बीते सालों अनेक प्रकाशन सामने आए हैं। इनमें ऐसा कुछ नहीं रहा जो पहले सामने न आया हो।

मौजूदा ठोस स्थिति के साथ संगति रखते हुए आज एक तर्कसंगत नज़र से अपने इन पुरखों को देखें। सरदार भगत सिंह के इस गत्यात्मक चरित्र के मौलिक सार को समझ कर ही कहा जा सकता है कि यदि स्वयं भगत सिंह का वास्ता आज जैसी परिस्थिति से होता तो वे भी इसी नजरिये से आज के सवालों पर विचार करते।

सन्दर्भ

1. भगत सिंह और उनके मष्त्युंज्य पुरखे –वीरेन्द्र सिन्धु
2. पत्र और दस्तावेज – वीरेन्द्र सिन्धु
3. भगत सिंह के सम्पूर्ण दस्तावेज – प्रो. चमन लाल
4. भगत सिंह और उनके साथी – अजय घोष व गोपाल ठाकुर
5. भगत सिंह की जेल डायरी
6. अजीत सिंह, एन एक्जाइल्ड रिवोल्युशनरी – के. एल. जोहर व बाबर सिंह
7. अमर शहीद सरदार भगत सिंह – जितेन्द्रनाथ सान्याल
8. क्रांति–युग के संस्मरण – मन्मथनाथ गुप्त
9. चुनी हुई रचनाएं – गणेशशंकर विद्यार्थी
10. तहरीक विशेषांक, 1995
11. तहरीक, सितम्बर, 2007

खण्ड–5

स्वतंत्रता आन्दोलन में हरियाणा की भूमिका

The Evolution of National Movement in Haryana

Prof. Ranbir Singh
Consultant
Haryana Institute of Rural Development
Nilokheri

Although the institutionalized form of the national movement in India, the Indian National Congress, had come into being in 1885, its progress remained rather slow in Haryana till 1912 on account of the following reasons:

1. The repression that had been let loose on the people of the region as a punishment for their participation in the Revolt of 1857, the First War for Indian Independence, had completely demoralized them. So much so that a sort of subject political culture had emerged here. This is evident from the popular saying such as *Police Key Peetay Ka aur Kichad Key Fisley Ka Bura Nahin Manna Chahiye* (one should not mind the thrashing by the police and slipping the mud) and *Afsar Key Agari aur Ghore Key Pichari Nahin Jana Chahiye* (one should go in front of the officer and in the back of a horse). The things have reached such a pass that even a single Police Constable could drive the entire village to the Police Station[1].
2. The absence of means of irrigation, large scale presence of drought prone areas, lack of productivity, primitive methods of agriculture, absence of the spirit of enterprise, frequency of famines, heavy burden of land revenue, agriculture indebtedness, neglect of the development of Haryana region by the Provincial Government after it was tagged with the Punjab in 1858

had virtually pushed a large section of its society on the verge of starvation threshold[2].
3. The lack of urbanisation and the non-existence of the well off Princely states, like that of Patiala, which could promote the art and culture, the virtual absence of a social reform movements and the stranglehold of the traditional institutions like, *Tholedars* and the powerful presence of the *Jajmani System* had made the people non-receptive to the progressive ideas of nationalism.[3]
4. The complete hold of the district administration (the Deputy Commissioner), revenue administration (*the Tehsildars, Girdawars/Qanongoes, Patwaris*), the police administration, the Superintendent of Police (*Kaptan*), Deputy Superintendent of Police (*Chhota Kaptan*), Sub-Inspector (*Thanedar*), Assistant Sub-Inspector (*Chhota Thanedar*), Head Constable (*Hawaldar*), Constables (*Sipahi*), Informer (*Mukbar*) and the Watchman (*Chowkidar*) had made the people so much subservient that they could not think of participation in the national movement.[4]
5. The non-existence of the educated middle class due to the absence of colleges and other institutions of higher learning had left no scope for the emergence of a political leadership capable of mobilizing the masses for the national movement. Even the creation of the Municipalities and the District Boards could not lead to its emergence. So much so that the creation of the Punjab Legislative Council by the Indian Council Act (1909) popularly known as the Minto-Morley Reforms could make no difference in this context.[5]

6. It were these factors that were responsible for the relatively smaller participation from Haryana region in the annual sessions of the Indian National Congress and the non-activation of the District Congress Committees from 1885 to 1910.[6]

But the second decade of the 20th century witnessed the spread of the national movement in both urban and rural areas due to the following reasons:[7]

1. The Arya Samaj movement was able to strike roots in Haryana region due to the leadership of Swami Sharadhanand, Lala Lajpat Rai and on account of the role of Zaildar Matu Ram, Dr. Ramji Lal, Master Baldev Singh and Chaudhary Piru Singh. The social awakening that the Samaj was able to bring about in the peasant castes in general and the Jats in particular through the process of sanskritization led to the creation of political awakening in them which in turn contributed to the growth of national movement.
2. The transfer of the capital of India from Calcutta to Delhi in 1912 led to its emergence into an important centre of education, trade and the politics. It was this factor which had strengthened Arya Samaj Movement and had also created a small educated middle class in the urban and the rural areas of Haryana. It was this class which provided the political leadership and mobilized its masses for the national movement.
3. The starting of the First World War in 1914 too proved to be catalytic factor in the above context. It is pertinent to mention here that a large number of rural youth had joined army during the war. They got a chance of fighting for the British in many countries of the Europe. This exposed them to new ideas. After their demobilization they became harbingers of modernization. They played an important role in the promotion of education and establishment of educational institutions. In other words, they played an important role in creating the objective conditions which proved receptive to the national movement.

The impact of the above factors is evident form the large scale participation from Haryana region in general and Rohtak district in particular in the anti-Rowlett Act agitation that had been launched by Mahatma Gandhi in 1919.[8]

But, the paradoxical as it may sound, the national movement was weakened in Haryana reference in the second decade of the 20th century due to the following reasons:[9]

1. The differences in the Congress between the liberals, who believed in the constitutional methods, and the Gandhians, who advocated the use of non-violent agitation – Satyagraha, had driven the liberals like Chhotu Ram out of the party. He believed that the non-payment of the land revenue by the peasants would lead to confiscation of their lands and would deprive them of their only means of livelihood.
2. This in turn alienated the major segment of the peasantry from the Congress Party. Here, it is pertinent to mention that Chhotu Ram who became the First President of the District Congress Committee, Rohtak in 1916 had considerable influence on the peasantry in

general and the Jats in particular. He impressed upon the peasantry that their class interests demanded collaboration with the colonial regime as their primary exploiters were the traders and the money lenders and the collaboration with the British would help them in checking the same.

3. The class and caste character of the Congress leadership in Haryana region was also instrumental in the alienation of the peasants in general and the Jats in particular from the national movement. Here it is pertinent to mention that despite the presence of a few Jats peasants like Zaildar Matu Ram and Master Baldev Singh, the trading castes Banias and Khatris and the high castes Brahmins had the hegemony over the Congress organization at that time.

4. The Congress stand on the Land Alienation Act (1900) also pushed the peasantry out of the support base of the national movement. Here it is pertinent to mention that the Congress wanted its revocation as it perceived the Act as discriminatory against the non-peasant castes. The attitude of the leadership of the party towards the money lenders and the trading classes also proved harmful to it in this context. The competition within the middle class between the entrenched and the new entrants in legal profession from the agriculturists castes and the earlier entrants from the high castes also contributed to the erosion in support for the national movement.

5. The division of the constituencies of the Punjab Legislative Council into the urban and rural Mohammadan/Hindu/Sikh also adversely affected the support for the national movement. This happened because the Congress was projected and perceived as a party of urban Hindus and as a body opposed to the interests of the rural sector in general and as an anti-Mohammadan, anti-Sikh and anti-peasantry political party in particular.

6. The division in the Congress between those who were opposed to the participation in the election of the Provincial Legislative Council and those who favoured contesting these elections also hurt the cause of the national movement. Those who disagreed with the Gandhian line of the boycott of elections formed the Swaraj Party for contesting the elections. This divide made adverse impact on the base of the national movement.

7. The sharpening of rural and urban divide and the agriculturist, non-agriculturist divide that had been assiduously promoted by the colonial regime too proved to be stumbling block in the way of the growth of the national movement in the region. Since the leadership of the Congress was dominated by the urban elite from the non-agriculturists castes, the rural elite from agriculturist castes was alienated from it to a large extent. As a matter of fact the caste and class character of the Congress leadership at then gave the party an image of a pro-urban and pro-money lender outfit on the one

hand and as an anti-rural and anti-peasant party on the other hand.

8. The growth of the Congress was also hampered due to formation of the Unionist party in 1923 as a political platform of the agriculturist and the rural interests. This party was able to wean away from the Congress party the rural elite and the peasantry. Besides, the support of the colonial regime helped the party in weakening the hold of the Congress by enlisting the support of the Ex-Army men, the *Zaildars* and *Nambardars* who had considerable influence in the rural areas. Another factor that helped the Unionist party and harmed the Congress was the success of the Unionist party in claiming that the they are pursuing the creed of Gandhism by promoting the cause of rural sector in general and the peasantry in particular.

9. The Congress was also pushed into the background by the fact that the party lacked mass leaders. Its leaders had limited appeal in the urban areas and that too was confined to the merchant castes. On the contrary, the Unionist party had become unstoppable after the emergence of Chhotu Ram as a leader of the peasantry in general and of the Jats in particular. His success in getting the Golden Laws enacted for providing the relief to the peasantry from the cluches of money lenders had further strengthened his position.

The national movement remained relatively weak in Haryana in 1920s and 1930s due to the failure of its leadership in creating a broad social coalition for extending its support base. Its appeal remained limited to the high castes, the Brahmins, in the rural areas and to the Banias in urban areas. It failed to get support from the peasant castes, the backward castes (the artisan castes) and the scheduled castes. It had no following among the Muslims and the Sikhs. Both these communities perceived the Congress as the party of the Hindus. And, it had to share the Hindu base not only with the Unionists but also with the Hindu Maha Sabha. Perhaps, its high caste image also prevented it form mobilizing the support of the backward castes and the scheduled castes. But another inhibiting factor was the prevalence of Jajmani System which had made the backward caste artisans and the scheduled caste agricultural labourers dependent on the landlords who were aligned with the Unionist party.[10]

But the situation got changed in the 1940s and the Congress was able to marginalize the Unionist party due to the following reasons:[11]

1. The economic hardship that had been caused to the people due to the rise in prices of various goods and the scarcity of essential commodities after the outbreak of the Second World War in 1939. It created resentment among them against the unionist Government and that was used by the Congress leaders for weaning them away from the collaborationist Unionist party and winning them over for their party which represented the national movement.

2. The Individual Satyagraha (1940) and the Quit India Movement (1942) also strengthened the national movement in the region. A significant number of persons

from here had participated in these two movements. Besides, these movements had strengthened nationalist feelings in the masses and this subsequently enabled the Congress leaders to mobilize their support for the party.

3. The adoption of the resolution for Pakistan by the Muslim League at its Lahore session in 1940 brought the issue of the integrity of India and threat of partition of the country to the centre stage and pushed to the periphery the provincial, the regional, the caste and the class issues. This naturally strengthened the national movement and helped in turn in broadening the support base of the Congress which was the institutionalized form of the national movement.

4. The Congress was also benefitted by the resentment that had been caused in the peasantry of Haryana by the decision of Unionist Premier of Punjab Sikandar Hayat Khan to sign Sikandar-Jinhah Pact in 1939 in which he had agreed for the dual membership of the Muslim members of the party – the membership of the Unionist party as well as the Muslim League. He had also promised to support Jinhah in the national politics. As Jinhah stood for Pakistan and was opposed to the national unity and the Hindu interests, it resulted in the alienation of the peasantry from the Unionist party. This strengthened the national movement and consequently the Congress party in Haryana.

5. The Congress party was also helped in expanding its base and in strengthening the national movement in Haryana by the role of the Indian National Army (INA) of Subhash Chander Bose during the Second World War. As the Haryanvis constituted a sizable segment of the INA, its fight against the British imperialism was bound to increase the feelings of nationalism and benefit the Congress Party. The INA trials in 1945 further strengthened these feelings. Above all, after their return to the villages of Haryana, the INA personnel created a new awakening in the rural society of the region by spreading the anti-British feelings. This in turn gave a fillip to the national movement and benefitted the Congress party due to its nationalist and anti-imperialist credentials.

6. The death of Chhotu Ram, the undisputed leaders of the peasantry, in 1945 created a vacuum of leadership in the unionist party. His successors were not tall enough to retain the support of the peasantry. They did not have his chrisma. Consequently, this class shifted its support from the Unionist party to the Congress party. The Congress leaders like Chaudhry Ranbir Singh and Pandit Sri Ram Sharma too played an important role in mobilizing their support for the Congress party.

7. Lastly, the Congress was benefitted by the political situation that had emerged in 1945 after the Second World War. The Independence had become imminent. The threat of partition had become stronger. The communal divide had been sharpened and the communal riots had become frequent. In such a situation,

the provincial parties like the Unionist party had become irrelevant. The Congress, which represented the forces of nationalism, was bound to fill this vacuum in Haryana.

The above description and analysis obliviously leads us to arrive at the following tentative conclusions:

1. The institutionalized form of the national movement, the Congress party, could not make much headway in Haryana during the pre-First World War phase owing to historical reasons which had resulted in the social, cultural, economic and political backwardness of the region.
2. It was strengthened during the First World War and immediately after that due to the awakening that had been brought about due to the impact of Arya Samaj and the Ex-Army men who had been demobilized after the War and the emergence of the educated middle class in the region after the transfer of capital from Calcutta to Delhi in 1912. This got reflected in the mass participation in the anti-Rowlett Act agitation in 1919.
3. But the decision of Chhotu Ram to quit the Congress and his success in emerging as the undisputed leader of the peasantry weakened the national movement as the bulk of this class was mobilized by him in support of the Unionist party. Consequently, the national movement was weakened and this adversely affected the support base of the Congress in Haryana despite the heroic efforts of the party leaders like Zaildar Matu Ram and Sri Ram Sharma. This found reflection in the poor performance of the Congress in the elections to the Punjab Legislative Council from 1921 to 1936 and in the elections to Punjab Legislative Assembly in 1937 as well as in the limited participation from the region in the Non-Cooperation Movement and the Civil Disobedient Movement.
4. But the political developments during and after the Second World War helped the Congress in strengthening the nationalist movement in Haryana. It enabled it to emerge as the dominant party in the region. This is not only evident form the increased participation in Individual Satyagraha in 1940 and the Quit India Movement in 1942 but also by the resounding success of the Congress in the 1946 elections to Punjab Legislative Assembly.
5. Before closing, it may be submitted that the above generalizations should be treated as no more than tentative hypothesis and need to be further tested through an in depth study of the national movement in Haryana.

References

1. For details, refer to Chattar Singh, *Social and Economic Change in Haryana*, National Book Organization, New Delhi, 2004.
2. K.C. Yadav, *Haryana: Itihas Avam Sanskriti, Bhag-II*, Manohar Publications & Distributors, New Delhi, 1999, pp. 37-65.

3. These observations are based on my discussions with Prof. D.R. Chaudhary a well known scholar based at Rohtak.
4. K.C. Yadav, op. cit., pp. 138-143.
5. These observations are based on my discussions with late Dr. O.P. Grewal, Professor of English in Kurukshetra University, Kurukshetra who was a perceptive scholar on the history, society, culture, economy and politics of Haryana.
6. For a different perspective see K.C. Yadav, op. cit., pp 172-175.
7. Anupma Arya, *Religion and Politics in India*, K.K. Publications, Delhi, 2001, pp. 67-74.
8. K.C. Yadav, op. cit., pp 201-209
9. Saroj Malik, 'The Emergence and Decline of the Unionist Party', *Punjab Journal of Politics*, Vol. XXXII-XXXIII, 2008-09, pp 94-99.
10. These observations are based on my discussions with a well known expert on Punjab and Haryana Politics, Prof. Paul Wallace of University of Missouri, Columbia (USA).
11. Saroj Malik, op. cit., pp. 99-100.

हरियाणवी किसानों की भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में भूमिका

सूरजभान दहिया

मैं इस शोधपत्र का प्रारम्भ प्यूईरटो रिकान इतिहासकार समूह द्वारा 1970 के शुरुआत में परिभाषित घोषणापत्र के अंशों से कर रहा हूँ "हम एक असमंजस की स्थिति में हैं कि जो हमारा इतिहास हमारे सामने प्रस्तुत किया जा रहा है वह सम्पूर्ण इतिहास जो घटित हुआ है उसका मात्र एक अंश ही है – यह एक जटिल स्थिति है उन असंख्य गुमनाम लोगों को इतिहास से वंचित कर दिया गया है जो सदियों से सामूहिक महत्वपूर्ण क्रियाओं, अपने कारनामों तथा अनुकरणीय समाज की सेवा में रत रहे। वे इतिहास की प्रक्रिया का अभिन्न होते हुये भी बेइतिहास क्यों रहे?"[1]

अब हमें इस इतिहास की संकटमय स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। मैंने यह एक विचारधारा के प्रतिरुप का उल्लेख किया है जो कुछ समय से एक ठोस आधार के साथ उभर रही है। कुछ हद तक यह रुस के जार की असत्य व भ्रांतिक कहानी की प्रतिक्रिया हो सकती है जब उन्हें बताया गया कि पुस्किन किसान नेता पुग्गाचव का ऐतिहासिक विवरण देने की योजना बना रहे हैं। इसपर जार ने झुंझलाकर टिप्पणी कर दी थी कि "इस किसान व्यक्ति का कैसा और कौनसा इतिहास है?"[2]

भारत के 1857–1947 तक लंबे स्वतंत्रता आन्दोलन में हरियाणा के किसानों की आरम्भ से ही सक्रिय भूमिका रही। परंतु अभी तक यह इतिहास की खोज का एक अछूता हिस्सा रहा। यत्र तत्र हमें हरियाणवी किसान नेताओं की स्वाधीनता आन्दोलन में भूमिका का विवरण मिल जाता है। परंतु, यह अपर्याप्त ही कहा जा सकता है। इससे यह बात उभर कर सामने आती है कि इतिहासकार इस अध्याय को धरातल से अध्ययन अभी तक नहीं कर पाये हैं – क्या इसे एक बड़ी भूल नहीं माना जाना चाहिये? उन हजारों हरियाणवी किसानों की सक्रिय भूमिका का इतिहास में उल्लेख क्यों नहीं, जो ब्रिटिशराज के विरुद्ध सदैव संघर्षरत रहे, जिसके परिणामस्वरुप

उन्होंने राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ा। इतिहासकार भी ग्रामीण स्तर पर चले इस आन्दोलन को भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का अभिन्न अंग बनाने की क्यों अनदेखी कर गये? हमें हरियाणा के स्वाधीनता आन्दोलन को इतिहास की दृष्टि से ग्रामीण से उठा जन आन्दोलन या किसान घटित स्वाधीनता आन्दोलन समझना चाहिये। दूसरी ओर, यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि व्यापक किसान आन्दोलन की उपेक्षा करके स्वतंत्रता आन्दोलन को एकल बनाकर एक विषैला इतिहास रचित कर दिया, जिसमें व्यक्ति विशेष का गुणगान है, कुछ की जीवन गाथा हैं तथा एक आध के वीरता के विवरण हैं और कुछ स्मारक निर्माण की प्रक्रियाएँ हैं। यह इतिहास तो अधिकांश लोगों को इतिहास का अभिन्न भाग ही नहीं माना; इतिहास की दृष्टि से उनके जीवन को ही गायब कर दिया गया है। यह एक सामाजिक जघन्य अपराध है। इस इतिहासिक वेदना का शुद्धीकरण होना नितान्त अनिवार्य है।

तहसील के रिकार्ड तथा अन्य प्रशासनिक व राजस्व स्रोतों में किसानों के जीवन, रहन–सहन, टैक्स आदि संबंधित सामग्री एवं सूचनाओं का विस्तृत विवरण है जिससे सहज ही किसान आर्थिक इतिहास का लेखन किया जा सकता है। यहां से नूतन ग्रामीण आर्थिक इतिहास लेखन का आरम्भ हो सकता है। यह पारम्परिक इतिहासकारों के लिये 'सिलीकोन–चिप' बन सकती है।

इससे इतिहासकारों को एक प्रेरणा भी मिल सकती है कि वे इतिहास में गुमशुदा लोगों को तलाश करके इतिहास में रिकार्ड कर सामने लाये जैसी कि ली–राय लाडूरी की तीव्र अभिलाषा है।[3]

उस प्रयास का तात्पर्य इतिहास का मानवीकरण करना है तथा असंख्य स्वाधीनता के प्रति समर्पित एवं सक्रिय जन को इतिहास में लाना है। मेरे इस शोध पत्र की भावना इसी प्रकार की है, जिससे हरियाणा के भूतकाल को जन इतिहास के साथ जोड़कर हरियाणा का सम्पूर्ण एवं स्वच्छ–सत्य इतिहास प्रस्तुत किया जाये। वर्ष 1868 में जब सर विलयम हंटर अपनी ऐतिहासिक संरचना शुरु कर रहे थे तो उनका एक स्पष्ट उद्घोष था, "मेरे इस ऐतिहासिक लेखन में जन जुड़ा है – सिर्फ जनसाधारण – न कम न ज्यादा।"

उनके कहने का मकसद यही था कि वह पारम्परिक इतिहासकारों की भांति कोई लेखन नहीं कर रहे हैं। वे कहते हैं : "मैं तो उस समय के भारतीय सामाजिक इतिहास लिखने के लिए समर्पित हूँ।[4]

मैं भी इस अपने शोध पत्र में ग्रामीण परिवेश के जन इतिहास को ऊपर लाने के लिए प्रयत्नशील हूँ तथा उन घटनाओं पर जोर देने के लिए संकल्पित हूँ, जो हरियाणा में गाँव के लोगों के साथ स्वतंत्रता आन्दोलन काल में घटित हुई तथा उनके कारण गाँव का जनजीवन आर्थिक व सामाजिक स्तर पर कितना कष्टदायी बनाया रहा।

हरियाणा के स्वतंत्रता आन्दोलन को समझने से पूर्व हमें इसकी आर्थिक स्थिति व इसके आर्थिक इतिहास का अवलोकन करना होगा। 19वीं सदी के प्रारम्भ में जब हरियाणा क्षेत्र अंग्रेजी कम्पनी सरकार के अधीन आया तो कम्पनी सरकार की लोगों पर भारी टैक्स लगाकर शोषण करने के सिवाय अन्य किसी बात में दिलचस्पी नहीं थी। उसे भू–राजस्व से ही तिजोरी भरनी थी। पूरे साल कठिन परिश्रम करने के उपरान्त कृषि पर होने वाले खर्च और राजस्व भर देने के बाद किसान को क्या बच पाता था? यह पूर्ण विवरण सोनीपत जिले के एक गाँव थाना कलाँ के 1826–27 में सर कैम्बल द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण से स्पष्ट है।[5] जिसका निष्कर्ष नीचे दिया जाता है :–

फसल	कृषि के अन्तर्गत क्षेत्र (एकड़)	उत्पादन (मन) (रुपये)		कृषि उत्पादन देय		सरकार को हिस्सा (रुपये)	किसान का रुपये
		अनाज	भूसा	आय	व्यय		
खरीफ	869	5913	7503	8074	2686	2691	2697
रबी	668	7279	7134	8345	3246	2782	2317
योग	1537	1319	214637	16419	5932	5473	5014

उपरोक्त तालिका में इस गाँव के समस्त कृषि उत्पादन का पूरा ब्यौरा दिया है। दूसरे शब्दों में, यहां के 174 किसान परिवारों की वार्षिक

आय के आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं, जोकि दोनों फसलों को मिलाकर कुल 5014 रुपये बैठती है। अर्थ हुआ कि यहां के एक किसान परिवार की लगभग 23 रुपये प्रतिवर्ष अर्थात् दो रुपये से कम प्रति मास आमदनी होती थी। इसी प्रकार की आर्थिक स्थिति अन्य गांवों में भी थी।

वर्ष 1847 तक पूरे पंजाब पर कंपनी सरकार का अधिकार हो चुका था और किसानों पर भारी राजस्व का बोझ असहनीय हो गया था। इसके विरुद्ध वातावरण बनता जा रहा था। ब्रिटिशराज में खेती हर समाज की स्थिति और विद्रोह के लिए बनती जमीन का विश्लेषण करते हुये डा. हबीब ने लिखा है :

"खेतिहर समुदाय के अंग के रुप में सिपाही भी महालवाडी व्यवस्था के उत्पीड़न से बेचैन थे। इसे इतिहास की भारी विडम्बना ही कहा जायेगा कि ब्रिटिश अधिकारियों ने जिस इलाके से अपने लिए ज्यादातर सिपाही भर्ती करने का फैसला किया, धीरे–धीरे दूसरे सूबों से निपटने के बाद, उन्हीं इलाकों में ब्रिटेन की खिराज–वसूली का सबसे ज्यादा बोझ लाद दिया गया। बंगाल तथा बिहार के स्थायी–बंदोबस्त और मद्रास–प्रेसिडेंसी के रैयतवाडी इलाकों में करो की स्थायी दरों ने कंपनी के प्रभुत्व के इन पुराने इलाकों में राजस्व बढ़ाये जाने की संभावना की सीमा जैसी तय कर दी थी। बंबई प्रेसिडेंसी की रैयतवाडी व्यवस्था इस तरह सूत्रबद्ध की गई थी, जिससे राजस्व में कही ज्यादा लचीले ढ़ंग से बढ़ोत्तरी हो सके। फिर भी यह उत्तरी भारत की महालवाडी व्यवस्था ही थी, जहां राजस्व में अंधाधुंध बढ़ोतरी की इच्छा बेरोकटोक सामने आ रही थी।[6]

किसानों द्वारा आबियाना न देने का अभियान वर्ष 1847 से ही शुरु हो चुका है। उधर, ब्रिटिश सेना में भारतीय सिपाही भी सर्विस के हालात से दुःखी होते जा रहे थे। एक सिपाही को 7 रुपये प्रतिमास वेतन मिलता था और उसके पास घर भेजने को बहुत कम बचता था। दूसरे, वह अपने घर के हालत से परेशान रहता था। एरिक स्टोक्स ने लिखा है कि 'आखिर सिपाही भी वर्दी में एक किसान ही तो था।' भारत में ब्रिटिश–राज के विरुद्ध भारतीय जनमानस में उभरते आक्रोश और भारतीय स्वाधीनता

आन्दोलन की संभावनाओं को लेकर कार्ल मार्क्स ने 1853 में लिखा था कि : 'अंग्रेजों द्वारा प्रशिक्षित भारत की देशी–सेना वहां के मुक्ति संग्राम का उपकरण बन सकती है।' 1828, 1843 और 1855 में भी देश के विभिन्न हिस्सों में किसानों, सन्यासियों आदि द्वारा ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ बगावत दर्ज हो चुकी थी।

जिस तरह फ्रांसीसी राज्य क्रांति में किसानों और सैनिकों के मजबूत गठबंधन (बुद्धिजीवियों के समर्थन से) की विद्रोह में अहम् भूमिका थी, ठीक उसी तरह मार्क्स की भविष्यवाणी के अनुसार मार्च–मई–1857 में भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय लड़ाई में भी किसानों, किसान–पुत्र सैनिकों और शायर–गायकों की प्राथमिक भूमिका रही।

भारतीय सिपाहियों ने अम्बाला में मार्च, 1857 में जो चिंगारी सुलगाई, वह धीरे–धीरे मेरठ और दिल्ली में मई तक ज्वाला बनकर धधकने लगी और इस तरह भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम की शुरुआत हुई। डा. हबीब ने इसे सैनिकों और किसानों की संगठित एकता का संग्राम कहा है। 'अगर सिपाहियों की बगावत सन् 1857 की क्रांति की रीढ़ थी तो इसे विस्तार देने का काम किसानों ने किया। अगर हरियाणा से बिहार तक के विस्तृत इलाके में, जिसके गांवों से सिपाही आते थे, इस विद्रोह ने असैनिक आबादी के दिलों में सहानुभूति के तार झंकृत नहीं कर दिये होते तो इसका इतना विशाल रुप नहीं होता। इसने एक बड़े इलाके में खेतिहर–विद्रोह का रुप ले लिया।'[7]

सन् 1857 में ब्रिटिश आर्मी की बंगाल कमान में 1,3,5,676 भारतीय सैनिक थे, जिसमें से आधे विद्रोह में शामिल हुये थे। अखिल भारतीय स्तर पर भारतीय सैनिकों की संख्या 2,33,000 थी। जिसमें से केवल 90,000 ही इस संग्राम में सक्रिय हुये।[8] निःसन्देह यह स्वाधीनता संग्राम उत्तरी भारत में अधिक तीखा रहा था।

हरियाणा, जो दिल्ली से सटा राज्य है, सदैव ही दिल्ली की विदेशी सत्ता के विरुद्ध संघर्षरत रहा है। आजादी की इस लड़ाई में हरियाणा देशभर में अग्रणी था। इस क्षेत्र के गांव–गांव, नगर–नगर में इस संग्राम ने जनक्रांति का रुप ले लिया था। यहां की खापों तथा सर्वखापों ने नगाड़ों

पर चोट कर अपने आपको इस आजादी की लड़ाई में सम्मिलित कर लिया था। बल्लभगढ़ के राजा नाहर सिंह, झज्जर के नवाब अर्ब्दरहमान खां, रेवाड़ी के राव तुलाराम व गोपाल कृष्ण, फर्रुखनगर के नवाब अहमलकुली, बहादुरगढ़ के शासक जंगखां, हांसी के हुकमचंद कानूनगो व मिर्जा मुनीरबेग, सिरसा के भट्टी सरदार, मदीना के चौधरी दौलता, मेवात के बहादुर मेवाती जैसे रण–बांकुरों ने हरियाणा के कोने–कोने में इस संग्राम का नेतृत्व किया था।

अम्बाला छावनी में पलटन 5 व 60 ने विद्रोह का आरम्भ किया तो इसका दूसरी कम्पनियों ने भी साथ दिया। मेरठ की बागी सेना ने योजनाबद्ध तरीके से 10 मई को 'दिल्ली कूच' का नारा देकर अगले दिन लाल किले पर अधिकार कर लिया। इसके अगुआ राव कृष्ण गोपाल थे जो उस समय मेरठ के कोतवाल थे व रावतुला राम के अनुज थे।

12 मई, 1857 को दिल्ली के लालकिले में आम दरबार आयोजित कर बहादुरशाह जफर को हिन्दुस्तान का शासक घोषित कर दिया गया। इस दरबार में हरियाणा की आठ रियासतों बल्लभगढ़, पटौदी, रिवाड़ी, फर्रुखनगर, झज्जर, बहादुरगढ़ और लोहारु के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त प्रमुख खापों के चौधरियों ने हिस्सा लिया था। इस संगठित विद्रोह ने बहादुरशाह जफर को अपना नेता बनाया और उन्हें राष्ट्रवादी जन उभार का नायक बना दिया। विद्रोही–सैनिकों को एक नेतृत्व मिला एवं लालकिले पर एक ऐलान कर दिया : "खल्क खुदाका, मुल्क बादशाह (बहादुरशाह) का, अमल अवाम का।"

इस दरबार में निर्णय लिया गया कि देश के शेष भागों से गोरी सेना को निकाल दिया जाये और आजाद किये क्षेत्रों का प्रशासन पंचायतें, खापों व सर्वखापें 'जनता सरकार' के अन्तर्गत संभालें।

सन् 1757 के प्लासी युद्ध जीतने के बाद अंग्रेजों की भारत में जड़ पक्की हो गई थी। बंगाल, बिहार और उड़ीसा के एक साल के प्रशासन के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के अंग्रेज अफसरों ने भू–कर लगभग 100 प्रतिशत बढ़ा दिया था। अगले दस वर्षों में यह फिर 100 प्रतिशत बढ़ा दिया गया। इस कमरतोड़ भू–कर से यहां भयंकर अकाल पड़ा, जिसमें करोड़ो लोगों

की मौत हो गई। उसपर गवर्नर–जनरल हेस्टिंग्ज़ ने कंपनी सरकार को ईग्लेंड में बड़े गर्व के साथ रिपोर्ट भेजी – "इस क्षेत्र में एक–तिहाई जनसंख्या की मौत के बाद और लगातार कृषि क्षेत्र में कमी होने के बाद, 1771 में भू–कर से हमें 1768 की तुलना में अधिक वसूली हुई है।

दिल्ली और पेशावर के बीच किसानों ने भू–कर की वृद्धि स्वीकार नहीं की। अतएव, वर्ष 1857 का जनआंदोलन अपेक्षित था। हरियाणा में लगभग हर गांव इस आन्दोलन से जुड़ा,। नतीजा यह हुआ कि ब्रिटिश साम्राज्य की यह जवान–किसान युगल शक्ति महानतम क्रांति के रुप में परिवर्तित हो गई। सैनिकों ने खंभों से तोप बनाई, तो किसानों ने हल से तलवारें।"[10] हर गांव में किसानों ने स्वाधीनता संग्राम का इतिहास रचा जिसका उल्लेख इस प्रकार है –

– सोनीपत जिले में कुडंली गांव के किसान सूरजराम ने अपने 19 साल के अविवाहित पुत्र जवाहर सिंह, पड़ौसी बाजेराम और अन्य किसानों के साथ दिल्ली से पानीपत की ओर रसद जानेवाली अंग्रेज सैनिक टुकड़ी को बंदी बनाया। संग्राम के ठंडा होने के बाद सोनीपत के एक व्यापारी की मुखबिरी पर अंग्रेजों ने जमकर ग्रामीणों पर अत्याचार किये। आजादी की लड़ाई की अगुआई कर रहे सूरजराम, उसके पुत्र जवाहर सिंह व पड़ौसी बाजेराम को 20 साल के लिये काला पानी भेज दिया। ये स्वतंत्रता सेनानी कभी नहीं लौटे। उनके वशंज परसराम, प्रतीय, इन्द्र सिंह व प्रमोद सिंह आदि के अनुसार मुखबिर व्यापारी को अंग्रेजों ने कुडंली, लामपुर व खामपुर गांवों को पट्टे पर दे दिया।[11]

– स्वाधीनता संग्राम के नायकों में लिबासपुर (सोनीपत) गांव के लोगों का योगदान अग्रणी था। उस गांव से गुजरते अंग्रेज तहसीलदार को उदमीराम ने अपने साथियों जसराम, रामजस, सहजराम, रतिया व मुल्कचंद आदि के साथ मिलकर तेजधार हथियारों से मौत के घाट उतार दिया। आजादी की जंग असफल होने के बाद, अंग्रेज सेना ने लिबासपुर गांव को खूब लूटा। उदमीराम को पीपल के पेड़ से बांधकर मौत के घाट उतार दिया। उनके साथियों को पत्थर के भारी कोल्हू के नीचे रौंदकर मरवा दिया।

– देश के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास पानीपत जिले की वीरता व शाहदत से भरा हुआ है। जिले में स्वाधीनता संग्राम की कमान गांव बला के रामलाल जाट ने संभाली। कप्तान हयूज स्वतंत्रता सेनानी से मुकाबला लेने हेतु बला पहुंचे। जबरदस्त फायरिंग दोनों ओर से हुई। परंतु, अंग्रेज अफ़सर को पीछे हटना पड़ा। दूसरे गांव से फिर फिरंगी आये, इस बार उन्हें और झटका लगा। अंग्रेजों को रामलाल जाट का खौफ हो गया और तीसरी बार भी हयूज को हार देखनी पड़ी। फिरंगियों पर जीत की सूचना मिलते ही तीन हज़ार स्वतंत्रता सेनानी रामलाल से आ मिले और अंग्रेजी सेना के हर मुकाबले का करारा जवाब दिया।

– उधर समालखा के आसपास के गांवों के किसानों ने फिरंगियों और उनके सहयोगियों के विरुद्ध बगावत कर दी। देशभक्तों ने अंग्रेज हुकूमत को राजस्व देना बंद कर दिया था और इस क्षेत्र में स्थित ईस्ट इंडिया कंपनी सरकार के कार्यालय पर कब्जा कर लिया। क्रांतिकारियों ने समालखा से लेकर यमुना नदी के आसपास के इलाके पर कब्जा कर लिया।[11] साथ में दिल्ली व अंबाला की ओर जाने वाले सभी रास्तों पर भी कब्जा कर लिया।

– अंग्रेजों ने जींद, कैथल, पटियाला के राजाओं व नवाबों से विद्रोह को दबाने के लिये सहायता मांगी। ईनाम के लालच में जहां पानीपत जिले के गढ़ी छाजू के मुखियाओं जोधा, जयराम और जयसुख ने क्रांतिकारियों की मदद नहीं की और इस क्षेत्र का राजस्व अंग्रेज सरकार को जमा करवा दिया। देशी रियासतों की मदद से समालखा के क्रांतिकारियों पर जुल्म किये गये। किन्तु, फिरंगियों के खिलाफ बगावत का दीप जलता रहा। अंत में अंग्रेजों ने इस ज्वाला को शांत कर दिया और गढ़ी छाजू के मुखियाओं को ईनाम भी दिया।

– पानीपत जिले की नौल्था, भालसी व कुराना जैल के तहत आने वाले 35 बड़े गांवों के क्रांतिकारियों का वीरता से भरा महान् गांव नौल्था, मंडी, चमराडा, पुठर, बुआना, लाखू, बांध, शाहपुर, परढ़ाना, कराद, भाऊपुर, इसराना, जौंधनकला, ब्रह्मण माजरा, डिडवाडी, पलड़ी, बिजावा ने अंग्रेजों के खिलाफ बगावत कर दी। नौल्था जैल के जैलदार उदमी सिंह जागलान के फरमान पर सभी 16 गांवों ने अंग्रेजी हुकूमत को राजस्व देना बंद कर

दिया। वहां पर अंग्रेज अधिकारियों के कार्यालय व बंगले जला दिये। अंग्रेजी हुकूमत के सैनिक वहां से भाग गये।

– नौल्था जैल के गांवों के जाबांज रोहतक जिले के क्रांतिकारियों से जा मिले तथा दुश्मन की सेना का मुकाबला करने के लिये दिल्ली पहुंच गये। 22 दिन के बाद वे वहां से लौटे।

– भालसी व कुराना जैल के तहत 19 बड़े गांवों में भी फिरंगियों के विरुद्ध पुरजोश आवाज उठी। वहीं भी लोगों ने राजस्व देना बंद कर दिया। क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों व इनका साथ देने वाले राजाओं व नवाबों के सैनिकों को चुन–चुनकर मौत के घाट उतारा। यहां देश की आजादी की जंग की हवा बहती रही और बहादुर ग्रामीण फिरंगियों की सेनाओं से लोहा लेते रहे।

– इसी दौरान, फिर समालखा के पास गांव पिनाना, मौजा शामडी, खोढा के गांववासियों ने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ बगावत की। शामडी के बिरला जाट, हरसहाय, सिंहराम, बहादुर, हरीराम व हरकू ब्राह्मण, लीगर जाट, जमुना, धुनी, हरदयाल, रामलिख नम्बरदार ने बगावत की कमांड संभाली। किशन जाट ने पिनाना में फिरंगियों के खिलाफ नेतृत्व किया। दिसंबर माह में यहां अंग्रेजी सेनाओं के साथ कड़ा मुकाबला हुआ। अन्त में, क्रांतिकारों का संघर्ष खत्म हो गया और उन्हें सरेआम अंग्रेजों ने फांसी पर लटका दिया। इस प्रकार पुनः पानीपत जिला अंग्रेजों के अधीन हो गया।

– करनाल जिले में असंध, सिवान, जलमाना, गौदंर, सालवान व डाचर के किसानों ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध बिगुल बजाया। उन्होंने असंध के थाने पर कब्जा कर लिया और राजस्व देना बंद कर दिया। जलमाना के क्रांतिवीरों ने थानेसर की जेल पर आक्रमण किया। परंतु, अंग्रेजों से वे यह जेल छुड़ा न सके।

संग्राम की असफलता के पश्चात् देशी रियासतों की मदद से क्रांतिवीरों को यहां असहनीय यातनाएं दी। इस क्षेत्र पर किसानों पर सजा के रुप में 10 प्रतिशत राजस्व की वृद्धि का बोझ भी डाल दिया।[12]

– कैथल जिले के गांव पुंडरी व फतेहपुर स्वाधीनता संग्राम के केन्द्र बिन्दु थे। जून मास में यहां सभी किसानों ने राजस्व देना बंद कर दिया। कैथल में तैनात अंग्रेज कप्तान ने अमानुष दमनचक्र चलाया था। क्रांति से पूर्व भी वर्ष 1943 में अंग्रेजों द्वारा कैथल राज्य को कब्जाने पर कड़ा संघर्ष हुआ था और 11 अप्रैल 1843 को अंग्रेजों द्वारा स्थापित सात चौकियों को देशभक्तों ने उखाड़ फैंका और अंग्रेजों को यहां से भगा दिया। उस समय कैथल का राजस्व करीब एक लाख सात हजार रुपये सालाना था। अंग्रेजों ने बाद में इन चौकियों को पुनः स्थापित कर लिया और क्रांतिकारियों को कठोर दंड का सामना करना पड़ा।

– अंबाला से स्वाधीनता संग्राम की शुरुआत हुई। क्रांति का ऐलान यहां पांचवीं और साठसीं स्वदेशी पैदल सेना ने किया था। अंग्रेज भारतीय क्रांतिकारियों से अति भयभीत रहते थे। समय की नजाकत को भांपते हुये अंग्रेज अफसरों ने बाद में स्वदेशी सेना से समझौता किया। परन्तु बाद, में एक ही साथ 130 क्रांतिकारियों को मौत के घाट उतार दिया। जो लोग गिरफ्तार किये गये उन पर भी तरह–तरह के जुल्म ढाए। जिन लोगों ने स्वदेशी सेना की क्रांति हेतु मदद की थी, उन्हें भी तरह–तरह की यातनाएं दी।

– रोहतक जिले में आजादी की जंग मुख्यतः खापों के बैनर तले लड़ी गई। यहां महम, सांपला, मांडोठी गांवों की भूमिका अग्रणी थी। संपूर्ण रोहतक जिला अंग्रेजी शासन से मुक्त था। चौबीसी महम के जस्सी और भैणी सुरजन के आशाराम चौधरी आजाद चौक महम के नायक हैं।

– दिल्ली के समीप गुड़गांव, फरीदाबाद और मेवात जिले के किसानों ने पहली जंग–ए–आजादी में अपनी बहादुरी व देशभक्ति का परिचय दिया। यहां के प्रत्येक गांव में क्रांतिकारी लौ प्रज्जवलित थी।

'मारो फिरंगी' के नारे से नूह इलाके में आजादी की लड़ाई लड़ी गई। पिनगांवा के एक वीर किसान सररुद्दीन के नेतृत्व में पिनगवां, पुन्हाना, तावडु व फिरोजपुर झिरका पर अधिकार कर लिया। मेवात की थड़ी चौपाल में मेवों की पंचायत हुई और यहां से अंग्रेजो को भगाने का फैसला लिया गया। फिर, नूह, नंगली व अडंबर के मेवों ने वीरता का परिचय दिया और

यहां के अंग्रेज अफसर मेकसन को मौत के घाट उतार दिया। सितंबर में क्रांति विफल होने पर यहां 52 लोगों को फांसी दी गई। शाहदत देने वालों में शहामत खां, वजीर खां, जवाहर खां, धन सिंह व धन्नु आदि प्रमुख थे।

– शहजाद फिरोजशाह मेवाती के नेतृत्व में एक और अभियान सोहना, तावडू भातबारात एवं ईंदरी आदि स्थानों पर चला जहां कैप्टन कार्लफोर्ट डुमड सहित तीन अफसर अन्य ब्रिटिश सेना के सैनिक मारे गये।

– झाड़सा में स्वाधीनता संग्राम का मोर्चा जालम सिंह व फिर बख्तावर सिंह ने सम्भाला। आजादी हासिल करने के लिए इन वीरों ने अंग्रेजी हुकूमत के सामने मुसीबते खड़ी कर दी। देश की आजादी के लिए बाद में इन महासपूतों को फांसी पर झुलना पड़ा।

रेवाड़ी में आजादी की जंग का नेतृत्व महानायक राव तुलाराम के पास था, जिन्होंने हजारों जवानों की एक मजबूत सेना तैयार की और अपने सहयोगी गोपालदेव के साथ जंग छेड़ दी। ब्रिगेडियर जनरल शावर्स के नेतृत्व में 20 सितंबर 1857 को दिल्ली से 1500 सिपाहियों की एक फौज भेजी गई और पाटौदी में युद्ध हुआ और वहां राव तुलाराम की पराजय हुई। राव तुलाराम के सैकड़ों जाट, अहीर व मेव देशभक्तों ने अपनी शाहदत दी।

–अंग्रेज अधिकारी मेटकॉफ ने लिखा है कि गुड़गांव के एक–एक गांव को नियंत्रण में लाने के लिए हमें पांच पलटन और तोपखाने के दस्तों के साथ जाना पड़ता था। मेवातियों की वीरता से प्रभावित होकर अंग्रेजी अधिकारी लार्ड कैनिंग ने लिखा है कि मुसलमान बादशाहों को मेवातियों ने भी तंग किया था और हमें तो कुछ ज्यादा ही परेशानी में डाला।[13]

मेवात के प्रसिद्व इतिहासकार सद्दीक अहमद मेव के अनुसार पहली जंग–ए–आजादी का आगाज चांद खां मेवाती नामक सिपाही की गोली से हुआ। 12 मई को गुड़गांव पर अधिकार होते ही मेवाती पूरे जोश के साथ क्रांतिकारी हो गये।[14]

– भिवानी–हिसार–सिरसा क्षेत्रों में आजादी की शुरुआत हांसी से हुई थी। लाइट–इनफैंटरी के कमांडिंग आफिसर व अन्य अधिकारियों को यहां से भागना पड़ा – इसमें से 11 मारे गये थे। मिर्जा मुसील बेग की

अगुवाई में दादरी के घुड़सवारों ने हिसार की चुंगी लूट ली। 27 मई को मोहम्मद आजम हिसार पहुंचे। सूबेदार शाहनूरखां के नेतृत्व में विद्रोह किया। दो अंग्रेजों को गोली मार दी और जेल तोड़ कर रिहा कर दिया। उपायुक्त वैडरबर्न को गोली मार दी और तहसीलदार डेविड थाम्पसन को भी मार डाला। यहां इस दौरान 12 और अंग्रेज अफसर मारे गये।

– रानिया के नवाब के नेतृत्व भट्टियों ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया और जून के पहले जनरल वॉन कौटलेंट लाहौर से बुलाये गये सिपाहियों के हिसार पहुंचे और गांव औढ़ा में नवाब रानिया से जा भिड़े और छः सौ सैनिक मारे गये। अंग्रेज विजयी हुए। दूसरी लड़ाई घग्गर नदी के किनारे हुई। इसके बाद अंग्रेजों ने बर्बर अत्याचार किये। सिरसा के बाद, हिसार पर कब्जा कर लिया। मंगाली, जमालपुर, हाजिमपुर सहित कई गांवों के 133 लोगों को फांसी पर लटकाया। 25 अगस्त को मोहम्मद आजम ने पुनः मंगाली गॉव में अंग्रेजों से टक्कर ली। परन्तु वह अंग्रजी सेना को हरा न सका।

इसके बाद अंग्रेजों ने रोहनात गाँव पर कहर बरपाया। गांव वालों ने दिलेरी से मुकाबला किया। लेकिन, अंग्रेजों ने गांव को नष्ट कर दिया। सैकड़ों लोग मारे गये। क्रांतिकारी मंगलखां पकड़ा गया। आसपास के आध ा दर्जन गांव के लोगों को हांसी में बर्बर तरीके से रोड–रोलर से कुचलकर मार डाला। बाद में क्रांतिकारी हुकमचंद जैन व भतीजा और मुनीर बेग को गिरफ्तार कर लिया। दिल्ली से दूसरी बार 25 अगस्त को हिसार लौटे आजमाने तोशाम पर आक्रमण किया। यहां तहसील दफ्तार पर कब्जा कर लिया। तहसीलदार नंदपाल, थानेदार प्यारेलाल, कानूनगो खजान सिंह तथा काफी जवानों को मौत के घाट उतार दिया। परन्तु, बीकानेर फोर्स तथा अंग्रेज सैनिकों की ताकत ज्यादा होने से विद्रोही सैनिकों ने तोशाम छोड़ना पड़ा और उनके 50 व्यक्ति शहीद हुये।[15] लगभग सारा हरियाणा क्षेत्र सितंबर 1857 तक पुनः अंग्रेजों के अधीन आ गया था।

देशी रियासतों का सहयोग और अन्य कारणों से अंग्रेजों का 14 सितम्बर 1857 को हरियाणा पर पुनः अधिकार हो गया। 4 मास 4 दिन हरियाणा क्षेत्र में खाप पंचायतों की जनता सरकारें कार्यरत रही। इतिहास

जॉन विलियम ने, जो उस दौर की घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी थे, विवरण दिया है कि "सच तो यह है कि हिन्दुस्तान में हमारी सत्ता की पुनर्स्थापना का सेहरा हमारे हिन्दुस्तान समर्थकों पर है, जिनकी हिम्मत और बहादुरी ने हिन्दुस्तान को अपने हमलावरों से छीनकर हमारे हवाले कर दिया।"

उन्होंने अपनी रिपोर्ट में लिखा, "दिल्ली की हमारी घेराबंदी बिल्कुल नामुमकिन होती, अगर पटियाला और जींद के राजा हमारे मित्र नहीं होते और अगर सिखों ने हमारी बटालियनों के लिए भर्ती नहीं होती।[16] कंपनी के एक इतिहासकार केव ब्राउन ने लिखा है "वे दिल्ली के बीचोंबीच रहते हुये शहर में मौजूद विद्रोहियों से संबंधित हर वह सूचना, जिसका जानना हमारे लिए जरुरी था, कागज की पर्चियों पर लिखकर चपातियों की परत में, जुतों के तलों में, पगड़ियों की तहों में हम तक पहुंचती रही।[17]

इस युद्ध में एक करोड़ लोगों की जानें गई जो उस समय की भारत की जनसंख्या का 7 प्रतिशत था। मुरादाबाद में 500 उलेमाओं की मृत्यु हुई। कोई दस लाख सनातन धर्मी मारे गये।[18]

वीरसावरकर ने अपनी पुस्तक "भारतीय स्वतंत्रता समर" में लिखा है कि अंबाला और दिल्ली के बीच हरियाणा के लोगों को कतारों में खड़ा करके राक्षसी तरीके से कत्ल किया जाता था।"

हरियाणा में अंग्रेजी अत्याचार पर एक इतिहासकार ने लिखा है कि फौजी अदालत पहले ही इस बात की शपथ लेती थी कि अपराधी ने अपराध किया हो या न किया हो, उसे मौत की सजा दी जायेगी।[19] अकेले हरियाणा में 24 हजार लोग शहीद हुये थे व सिर्फ दिल्ली में ही 25 हजार लोगों को फांसी पर लटका दिया था।[20]

ब्रिटिश सैनिक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1857 में हरियाणा के 134 गांवों को आग लगाकर जलाया गया। 51 गांवों को निलाम किया।[21] हजारों किसानों की जमीन–जायदाद कुर्क कर दी गई। लाल किले पर राजा नाहर सिंह, नवाब झज्जर अब्दुर्रहमान आदि को फांसी दी गई। झज्जर की लाल डिग्गी में सामूहिक फांसियां दी गई। कई लोगों को वृक्षों से बांध कर मौत के घाट उतार दिया। बच्चों और औरतों को कूँओं में

फिकवा दिया। हरियाणा प्रांत को अंग्रेजों ने विभाजित करके इस क्षेत्र की सामूहिक विरासत को क्षति पहुँचाई।[22]

उपरोक्त धरातली तथ्यों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मुट्ठी भर फिरंगियों ने देशी दलालों के राष्ट्रधाती सहकार, तत्कालीन विद्रोही नेतृत्व के निजी स्वार्थ, डाह के कारण हमारी राष्ट्रीय आकांशा को कुचल दिया था। हमारी औपनिवेशिक गुलामी गद्दारी का नतीजा थी। हरियाणा के सन्दर्भ में इस क्रांति के बारे यह लिखना आवश्यक है कि जहां कहीं हरियाणा के क्रांतिकारियो ने अंग्रेजों पर विजय पाई वहाँ पुनः अंग्रेज, पटियाला, जींद, नाभा व बीकानेर की रियासतों की मदद से आगे बढ़े। परिणामस्वरुप क्रांति की असफलता के बाद पटियाला के राजा को अंग्रेजों ने कानौड व नारनौल की निजामत दी, बावल निजामन नाभा रियासत को व दादरी का क्षेत्र जींद की रियासत को दिया गया।

यहां यह बताना भी जरुरी है कि पटियाला के राजा ने कानौड का नाम बदलकर अपने बेटे महेन्द्र सिंह के नाम पर महेन्द्रगढ़ रखा, जो आज तक प्रचलित है। यह हमारी गुलामी को इंगित करता है। देशद्रोही की एक लंबी सूची है।

हरियाणा के क्रांतिकारी नेता अधिकतर किसान अथवा गरीब परिवारों से थे। इसलिये हमें Roslie Llewellyn - Johnes की टिप्पणी "A need to look the big stories" पर गहन अध्ययन करना चाहिए। यह लेखक सन् 1857 के उस उपेक्षित इतिहास पर काम कर रहे हैं जिनपर बिलकुल शोध नहीं हुआ है। प्रो. विपन चन्द्र का कहना है कि फ्रांसीसी क्रांति से कम नहीं था यह विप्लव। एरिक स्टोक्स ने अपनी पुस्तक 'द पेजेटं ऐडं द राज : स्टडीज इन एग्रेरियन सोसाइटी ऐडं पेजेटं रिबेलियन इन कोलोनियल इंडिया, कैंब्रिज" में उस समय किसानों के असंतोष और उनके विद्रोह का जिक्र किया है। क्योंकि अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों से अगर किसी वर्ग को सबसे अधिक नुकसान हुआ था, तो वे किसान और हस्तशिल्पी थे। इसलिए उन लोगों ने इस विद्रोह में अपनी व्यापक भागीदारी सुनिश्चित की थी। भले ही यह किसान संघर्ष अपनी मंजिल तक नहीं पहुंच सका, लेकिन इस जनआन्दोलन ने स्वाधीनता की एक ऐसी

मशाल जला दी जो बाद में स्वतंत्रता आन्दोलनों को मार्गदर्शन करती रही यानि जब हल जाग उठे तो नेता भी पैदा हो गये।

इस स्वतत्रंता संग्राम के पश्चात्, हरियाणा क्षेत्र में अंग्रेजी सरकार का दमनचक्र तीव्र गति से चला। हर मामले में इस क्षेत्र की उपेक्षा हुई। सरकारी नौकरियाँ यहां के लोगों को देनी बंद कर दी। राज्य में नहरो, सड़कों का निर्माण नहीं करवाया। शिक्षा, स्वास्थ्य, रेल और अन्य सेवाओं को लगभग बंद कर दिया। सामाजिक क्षेत्र में खाप पंचायतों पर बिलकुल प्रतिबंध सा लग गया – इस संस्था को सभी अधिकारों से वंचित कर दिया। राज्यों में नहरों की खुदाई न होने के कारण हरियाणा की कृषि प्रभावित हुई। यह क्षेत्र निरन्तर सूखे व अकाल के प्रकोप में आता गया तथा किसानों की आर्थिक हालत बिगड़ गई। हरियाणावासी इसके कारण सामाजिक, शैक्षिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक दृष्टि से बुरी तरह पिछड़ गये।

अगले 50 वर्षों में हरियाणा की हिस्ट्री सूखे व अकाल के इर्दगिर्द घूमती रही। क्रांति के ठीक तीन साल बाद 1860–61 में यह क्षेत्र अकाल की चपेट में आ गया। इसके बाद यहां 1868–69, 1869–70, 1877–78, 1895–96, 1896–97, 1899–1900 में भयंकर सूखे व अकाल की स्थिति रही। लगातार इस प्रकार के प्रकोपों से किसानों की आर्थिक स्थिति बिलकुल चरमरा गई।

वर्ष 1860–61 के अकाल में दिल्ली और आगरा के 53,500 वर्ग मील के क्षेत्र में दो करोड़ लोग प्रभावित हुये तथा 5 लाख लोग अकाल प्रकोपित गांव से विस्थापित हो गये थे।[23] आने वाले अकालों में तो हरियाणा क्षेत्र के गांव के गांव (विशेषकर – हिसार, भिवानी, सिरसा एवं महेन्द्रगढ़ जिलों के क्षेत्र में) उजड़ गये थे, जन व पशुधन क्षति के अतिरिक्त आर्थिक विपदा का इतिहास अति कष्टदायक रहा। इतनी भयानक आपदा के कारण ही ब्रिटिश सरकार अकाल कोड – 1883 बनाने पर विवश हुई थी। इतने लंबे सूखे व अकाल के समय को निकालना किसानों के लिए चुनौती बनी। उन्होंने जीने के लिये अपनी जमीन गिरवी रखी थी, जमीन बेची भी तथा अपने सभी साधन– बैल, गाय–भैंस आदि भी बेचने पड़े। इस प्रकार की किसान पीड़ा लोकगीतों

के माध्यम से इतिहास ट्रैजेडी बन गई। एक लोकगीत की निम्न पंक्तियाँ इस ट्रैजेडी को सत्यापित करती हैं –

"एक रोटी का बैल बिका, और एक पैसे का बिका ऊंट,
चालीसा ने खो दिया – भैस गाय का ब्यात।
चालीसा ने चौत्तीस मारे जी गये वैश्य व कसाई,
वो मारे ताखड़ी और उसने छुर्री चलाई।।"

ऐसे भयंकर काल में तो सूदखोर व व्यापारी किसानों को कर्ज़ा भी नहीं देते थे।

किसानों की निर्धनता एवं पीड़ा पर वर्ष 1879 में फनसावे ने अपनी रिपोर्ट में लिखा हैः–

"1877–78 के सूखे के पश्चात् किसानों ने जिले के कुछ कृषि क्षेत्र के 1.25 प्रतिशत भाग को बेचा। तथा उसका 5 प्रतिशत भाग गिरवी रखा। गिरवी पड़ी जमीन पर किसानों पर साढ़े छः लाख रुपये का कर्ज़ा था जो वार्षिक भू–कर का दो–तिहाई बैठता है। गिरवी रखी भूमि पर लिये गये कर्ज़े की ब्याज दर 18 प्रतिशत तथा व्यक्तिगत अमानत पर यह दर 24–30 प्रतिशत थी। गिरवी पड़ी भूमि पर ब्याज पीढ़ी–दर पीढ़ी चलता रहता था।

लोगों को गहरी पीड़ा थी कि 'उघाई बहुत करड़ी है' – 'भू–कर ज्यादा सख्त व भारी है'[24] वर्ष 1869–70 में एक एकड़ काश्त भूमि का मूल्य 10 रुपये था तथा 1891–92 में एक एकड़ की कीमत 90–100 रुपये तक पहुँच गई। इस प्रकार की कृषि भूमि मूल्य में वृद्धि से शोषित एवं निर्धन किसान साहूकारों और व्यापारियों को अपनी जमीन स्थानान्तरण से विवश होने के कारण मानो सूदखोरों का बंधुवा मजदूर बनकर रह गया। ब्याज दर अधिक होने के कारण मूलधन लौटाना किसान की समर्थता के बाहर हो गया था।

दूसरी ओर, इस क्षेत्र में एक सामाजिक चेतना के युग की शुरुआत हो चुकी थी। यहाँ दिनों दिन आर्यसमाज का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। इससे सामाजिक पुर्नजागरण का सूत्रपात हुआ और सामाजिक उत्थान हेतु शिक्षा प्रसार में वृद्धि होती चली है। साथ–साथ सामाजिक

कुरीतियों के विरुद्ध दृढ़ता से संघर्ष करने का लोगों को आत्मबल मिला। उसे सामाजिक वैज्ञानिक हरियाणा क्षेत्र में वर्ष 1857 की क्रांति के पश्चात् पुर्न–उत्थान का युग (1885–1915 का काल) परिभाषित करते हैं।

यद्यपि अंग्रेजी हुकूमत सन् 1857 की जनक्रांति को दबाने में सफल हो गई परन्तु, इस क्रांति ने ब्रिटिश प्रशासन के सम्मुख अनन्त चुनौतियां ला खड़ी कर दी। प्रशासन जनआक्रोश, विशेषकर उत्तरी भारत के किसान की ब्रिटिश सरकार के प्रति प्रतिवादी होना अति चिंता का विषय बना हुआ था। इस संबंध में ईग्लैंड तथा भारत में गहरा मथंन चल रहा था। भारत के ब्रिटिश प्रशासन को गहन अध्ययन के पश्चात् उत्तरी भारत के किसान – (दिल्ली से पेशावर क्षेत्र) की परिश्रमता एवं वीरता के बारे में पूर्ण ज्ञान हो चुका था। सन् 1885 में तत्कालीन सेना अध्यक्ष ने तो साफ–साफ अपने मिल्ट्र–डिस्पैच में बर्तानिया सरकार को लिखकर भेज दिया था "उत्तरी भारत के किसान विशेषतः हरियाणा पंजाब के किसान की हमदर्दी लिये बिना भारत में अंग्रेजी–साम्राज्य स्थापित करना असम्भव है।" इस पर ईग्लैंड में सघन–विचार विमर्ष हुआ तथा यह निर्णय लिया कि पंजाब प्रशासन इस क्षेत्र के किसानों की भावना की कदर करते हुये किसान हित में कुछ योजनाएँ तुरंत क्रियान्वित करें एवं फौज में इस समुदाय की संख्या में वृद्धि की जाये।

एच. क्लवर्ट ने अपनी पुस्तक "द वैल्थ एण्ड वैल्फेयर ऑफ पंजाब – 1946" में पृष्ठ 263 पर उल्लेख किया है कि 1870 के दशक में 90 हज़ार एकड़ भूमि प्रतिवर्ष बेची जाती थी जबकि 1890–1894 के बीच प्रतिवर्ष 3.38 लाख एकड़ भूमि किसानों ने आर्थिक संकट के कारण बेचनी पड़ी। इससे कहीं ज्यादा भूमि गिरवी रखी जाती रही थी। ये आंकड़े किसान की आर्थिक दशा को इंगित करते हैं। कुल जिलों के भू–स्थानान्तरण का विवरण निम्न तालिकाओं में दिया जाता है :–

रोहतक – जिला

वर्ष	भू–बिक्री (एकड़ में) किसानों की संख्या	भूमि क्षेत्र	मूल्य (रुपयों में)	किसानों की गिरवी की गई भूमि (एकड़ में) किसानों की संख्या	क्षेत्र	मूल्य (रुपयों में)
1878–79	271	1867	20,669	2019	11,801	1,85,965
1879–80	92	708	14,694	322	3,571	43,337
1880–81	101	1369	23,298	298	3,508	42,418
1881–82	114	999	24,051	262	2,619	84,117
हिसार जिला						
1885–86	250	7703	42,826	245	7,640	42,364
1886–87	403	16,478	1,17,474	901	18,836	1,18,467
1887–88	437	11,105	11,22,453	1,298	16,856	1,02,980
1888–89	1076	22,374	1,07,041	2,037	24,130	1,62,614
1889–90	693	1,55,81	20,442	1,856	18,566	1,65,002
1890–91	464	9,430	1,34,264	1,255	13,467	2,44,886
करनाल जिला						
1887–88		5,971	64,335		7,039	82,182
1888–89		2,447	1,01625		2,742	91,241
1889–90		7,350	93,454		4,533	49,996
अम्बाला जिला						
1886–87		7,630	4,65,683		18,334	9,35,928
1887–88		4,009	1,86,911		5,629	2,42,362
1888–89		8,837	5,14,508		18,222	9,66,268
1889–90		10,397	5,72,344		29,110	12,42,425
1890–91		7,008	1,30,064		2,285	81,165
1891–92		3,514	2,61,957		7,575	4,11,040

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 19वीं सदी के अन्त में कृषक का मुख्य साधन भूमि उनके हाथों से निकलती जा रही थी। उस समय लार्ड कर्जन भारत के वायसराय थे। उन्होंने अपनी राजस्व व कृषि की प्रशासनिक रिपोर्ट में उल्लेख किया कि कृषक के प्रति सरकार का व्यवहार

कुछ उदासीन दीख पड़ता है। इस रिपोर्ट में आगे लिखा कि अंग्रेजों द्वारा अपनाये गये पाश्चात्य कानून एवं कानून प्रक्रिया समुदाय के अहित में रही है। इस रिपोर्ट में एक अति महत्वपूर्ण टिप्पणी की गई थी, "किसानों की कृषि भूमि बड़ी तेजी से साहूकारों, सूदखोरों, शहरियों तथा वकीलों के पास स्थानान्तरित होती जा रही है। कई क्षेत्रों में तो इस प्रक्रिया ने विकराल रुप धारण कर लिया है। इन लोगों के लिए काश्त जमीन एक वाणिज्यिक पूंजी है, जबकि किसानों के लिए खेती भूमि रोजी–रोटी का माध्यम है। इस भयंकर प्रक्रिया ने तो सचमुच इस क्षेत्र में आर्थिक संतुलन बिगाड़ दिया है तथा ग्रामीण समाज में एक सामाजिक आक्रोश उत्पन्न कर दिया है।"

सामाजिक न्याय के परिवेश में ब्रिटिश अधिकारियों को यह अनुभव हो गया था कि जो ब्रिटिश व्यवस्था अपनाई गई है उसमें किसान सूदखोरों से कर्ज़ा लेने के बाद सदैव शोषित रहेगा। एक तो कानून इतने जटिल थे, जिसे भोले किसान को समझना बड़ा कठिन था, दूसरे भूमि गिरवी रखकर कर्ज़ लेने के बाद बनिया, वकील आदि सदैव फायदे की स्थिति में होते थे। इस अवस्था में किसान एक असहाय बनकर रह जाता था।

इतनी तेजी से कृषकों से अकृषकों को कृषि भूमि का स्थानान्तरण होने से सरकार को एक राजनैतिक संकट के संकेत मिलने लग गये थे। ब्रिटिश सरकार इस भयावह स्थिति से निपटने हेतु उपाय ढूंढने में कार्यरत हो चुकी थी। सरकार ने शीघ्र ही भू–हस्तान्तरण–1890 कानून बना दिया जो 8 जून 1901 से प्रभावी हो गया।

इस कानून से भी किसान की पीड़ा व शोषण समाप्त न हो पाया और वह कर्ज़े में दबता चला जा रहा था। अंग्रेजों ने बिना स्थिति का अवलोकन भू–कर और आबियाना में वृद्धि कर दी जिससे किसान की आर्थिक स्थिति दयनीय बनती चलती गई। आर्य समाज के प्रभाव से पंजाब में क्रांतिकारी देशभक्तों का जन्म किसान परिवेश से होने लगा। इससे किसान शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठी। बाके दयाल के गीत – 'पगड़ी संभाल ओ जट्टा ––' या 'देख रोंगटे खड़े हो गये या मेरी छाती धड़कै, गरीब किसान की जिंदगी क्यूकर बीतै मरकै' ने किसानों में आत्मबल व आत्मसम्मान की भावना जागृत कर दी थी। लाखों किसानों ने विद्रोह का

रास्ता चुन लिया। किसानों के शोषण के विषय में कांग्रेस में भी आक्रोश उत्पन्न हो चुका था। बंकिम चन्द्र चटर्जी ने किसानों की दशा को सुधारने के लिए कहा : 'ये वे मनुष्य हैं जो दोपहर की तपती धूप में पसीना–पसीना हो रहे हैं तथा घास–फूस व कांटेदार झाड़ियों के साथ रेत में सने शरीर से एक–दो हाथ हो रहे हैं। इस कठोर वातावरण में वे दो बैलों की जोड़ी व उधार के खुटे हल से दो सेर दानों के लिये सूखे खेत से फसल उगाने में जुटे हुये हैं। क्या उससे वे समृद्ध हो जायेगे? .... मुझे बेझिझक कहना पड़ रहा है – कभी भी नहीं, बिलकुल नामुमकिन। इससे वे कभी भी समृद्धि की अणु भर भी नहीं पहुंचने वाले हैं।[26]

लोकमान्य तिलक ने शोषित कृषक के हित में महाराष्ट्र के कोकंण में वर्ष 1896 के अंकाल के विरूद्ध आवाज उठाई। तिलक द्वारा किसान संघर्ष ने महात्मा गांधी के 1918 के खेढ़ा तथा सरदार पटेल द्वारा 1928 के बदरौली आन्दोलनों को दिशा निर्देश दे गया।[27] तिलक की दूरदर्शिता से कृषक उत्थान की लहर का विकास हुआ जिसकी भविष्यवाणी सन् 1892 में कांग्रेस संस्थापक हयूम ने की थी।

20वीं सदी के आरम्भ में हरियाणा का सामाजिक व राजनैतिक नेतृत्व पूरी तरह आर्य समाजियों पर था। अंग्रेज सरकार आर्यसमाज पर कड़ी नज़र रहने लगी। आर्यसमाज ने अपना कार्यक्रम गुरुकुल खोलकर आगे बढ़ाना शुरु किया तथा ग्रामीण युवकों को अपनी विचारधारा से प्रभावित किया। इससे 1857 की ज्वाला धीरे–धीरे तेज होने लग गई तथा खाप पंचायतें, जो ब्रिटिश हुकूमत ने बिलकुल निष्क्रिय कर दी थी, पुनः अपनी भूमिका निभाने के लिए उठ खड़ी हुई। मटिण्डू (सोनीपत) के चौ. पीरुसिंह ने स्वामी श्रद्धानन्द के परामर्श पर एक खाप पंचायत सम्मेलन बुलाने का कार्यक्रम बनाया। इसमें चौ. मातूराम, चौ. भीमसिंह, चौ. राजकला जैसे आर्यसमाजी भी जुड़ गये। और अन्ततः बरोणा गांव में सर्वखाप पंचायत आयोजित करने का निर्णय लिया गया। रोहतक के डिप्टी कमीश्नर इस सम्मेलन को आयोजित करने के पक्ष में नहीं थे। अन्ततः काफी प्रयासों के बाद उन्होंने इस महापंचायत करने की अनुमति इस शर्त पर दे दी कि यहां कोई राजनैतिक प्रस्ताव पारित नहीं किया जायेगा। इस

पंचायत की तैयारी करने में काफी समय लगा तथा अन्ततः 7 मार्च, 1911 को बरोणा में सर्वखाप पंचायत आयोजित हुई, जिसमें 50 हजार लोगों ने हिस्सा लिया। इस पंचायत की कार्यवाही की निगरानी के लिए जिला पुलिस सुपरइन्टेन्डन्ट, तहसीलदार तथा पुलिस इन्सपेक्टर व सब–इन्सपेक्टर आदि अधिकारी मौजूद थे। इस पंचायत में कुल 28 प्रस्ताव पास किये गये जिनमें प्रथम प्रस्ताव शिक्षा प्रसार का था। इसी प्रस्ताव के परिणामस्वरुप रोहतक में 1912 में जाट स्कूल खोला गया।

रोहतक जिले में नवम्बर, 1917 में जिला कांग्रेस की स्थापना हुई और चौ. छोटूराम इसके अध्यक्ष बने। इससे सक्रिय आर्यसमाजियों ने कांग्रेस के साथ जुड़कर राजनीतिक मंच को सुदृढ़ कर दिया। इस समय कांग्रेस में किसानों की आर्थिक दशा पर काफी रोष था।

गांधी जी ने कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन–1920 के प्रस्ताव के अनुसार असहयोग आन्दोलन की घोषणा कर दी। इस आन्दोलन को सक्रिय करने हेतु गांधी जी 8 अक्तूबर, 1920 को रोहतक पधारे। भू–कर न देने से किसानों को अपनी भूमि से हाथ धोना पड़ सकता था। इस बिंदु पर चौ. छोटूराम ने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया।

वर्ष 1920 में पंजाब काऊंसिल के चुनाव के लिये चौ. छोटूराम ने चुनाव लड़ा तथा वे चुनाव हार गये। 1923 में उन्होंने फिर चुनाव लड़ा तथा वे यह चुनाव जीत गये। इससे पूर्व सर–फजल–ए–हुसैन भी जो कि 1920 में पंजाब कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे असहयोग आन्दोलन के मुद्दे पर त्यागपत्र दे चुके थे। वे दोनों–सर–छोटूराम व फजल–ए–हुसैन 1923 में सम्पर्क में आये तथा समान विचारधारा के कारण यूनियनिस्ट पार्टी का गठन किया।

पंजाब का किसान उस समय कर्ज में जकड़ा हुआ था। वर्ष 1921 में पंजाब के किसानों पर 90 करोड़ रुपये का कर्जा था। वर्ष 1929 में पंजाब बैकिंग इन्क्वायरी रिपोर्ट के अनुसार यह कर्ज़ बढ़कर कोई 135 करोड़ रुपये का हो गया था। इससे कुछ वर्षों के पश्चात् यानी वर्ष 1932 में इस कर्ज का भार 200 करोड़ रुपये का हो गया, जिसपर प्रतिवर्ष ब्याज का भार

36 करोड़ रुपये का था। उस समय पंजाब का भू–कर 4 करोड़ रुपये था अर्थात् अकेला वार्षिक ब्याज भू–कर से 9 गुणा था। पंजाब प्रोविन्सियल बैंकिग इन्कवारी कमेटी 1929–30 भाग–1 के पृष्ठ 10 व 129 पर विवरण है कि – "ब्याज कमाने का व्यवसाय यहां एक विशाल कारखाना है तथा पंजाब में यह उद्योग 60 हजार लोग चला रहे हैं।"

चौ. छोटूराम पहली बार वर्ष 1924 में पंजाब मंत्रीमंडल में शामिल हुये तथा लगभग ढ़ाई साल मंत्री रहे। वे वर्ष 1937 में पुनः मंत्री बने तथा इससे पूर्व उन्होंने निम्नलिखित नौ कानून के बिलों का मसौदा तैयार कर लिया था, जिन्हें कानून के रुप में पारित करवा दिये –

द पंजाब रेगूलेशन ऑफ एकाउंटस एक्ट – 1929
द पंजाब रिलीफ ऑफ इन्डेबिडिटैन्स एक्ट – 1934
द पंजाब रजिस्ट्रेशन ऑफ मनी लैडंरज़ एक्ट – 1936
द पंजाब डेबिटेरज प्रोटक्शन एक्ट – 1936
द पंजाब कन्शोलिडेशन ऑफ लैंड एक्ट – 1936
द पंजाब रेशटीच्यूशन ऑफ मोर्टगेज लैंड एक्ट – 1938
द पंजाब विलेज़ पंचायत एक्ट – 1939
द पंजाब ट्रेडरज़ एम्पलाईज एक्ट – 1940
द पंजाब एग्रीक्लचरल प्रोडूस मार्किट एक्ट – 1939

राजा नरेन्द्रनाथ, जो चौ. छोटूराम के राजनैतिक विरोधी थे, "मार्डन रिव्यू–1939" के अंक में "पंजाब कृषि सुधार कानून तथा उनका आर्थिक व संवैधानिक प्रभाव शीर्षक से पृष्ठ 30 पर प्रकाशित लेख में उल्लेख किया था कि "70 हज़ार एकड़ गिरवी पड़ी भूमि इन सुधारों के अन्तर्गत वापस किसानों को चली जायेगी। कोई 84617 मुसलमान सूदखोर व लगभग दो लाख हिन्दू व सिख साहूकार इस जमीन को लौटायेंगे।" किसानों को उनकी जमीन जो 1901 से छीनी जा चुकी थी, वापस मिलने के बाद उनके नए जीवन का संचार हुआ और नये सूरज का उदय होते देखा।

असहयोग आन्दोलन–1920 से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति – 1947 तक हरियाणा का किसान चौ. छोटूराम की यूनियनिस्ट पार्टी एवं कांग्रेस

पार्टी के जुड़कर अपनी आहूतियॉ स्वतंत्रता के आन्दोलनों में डालता रहा। कांग्रेस पार्टी के सभी आन्दोलनों में हरियाणा का किसान अग्रणी बनकर भाग लेता रहा। न जाने कितनी बार यहां के किसान जेल गये, यातनाओं को सहना पड़ा। परन्तु, स्वतंत्रता आन्दोलन की सक्रियता यहां पूर्णरुप से बनी रही।

महात्मा गांधी ने 8 अगस्त 1942 को बम्बई में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का आहवान किया। उन्होंने अपने भाषण में अंग्रेजों को चेताया – "मैंने अपनी अर्न्तआत्मा की इच्छा का अनुभव करने में काफी समय लगा दिया। मुझे अपने देशवासियों की सेवा करने का गौरव मिला जबकि उन्होंने मुझे नेतृत्व करने को कहा। सेना की भाषा में नेतृत्व को कमांडर कहा जाता है। मैं आपके सामने एक कमांडर नहीं, बल्कि एक नम्र सेवक रुप में खड़ा हूँ – चालीस करोड़ भारतीयों की सम्पूर्ण स्वाधीनता हेतु। और इस की उज्जवला उनके नेत्रों में आनी है – स्वाधीनता कल नहीं परन्तु आज आनी है।" इस संकल्प से हरियाणा में नये उत्साह का ज्वार प्रवाहित हुआ तथा लोगों ने "भारत छोड़ो" का उद्घोष किया। गांधी जी की गिरफ्तारी के पश्चात् 9 अगस्त 1942 से भारत स्वतंत्रता संग्राम 'करो या मरो' के साथ आरम्भ हो गया। सम्पूर्ण रोहतक–सोनीपत क्षेत्र हड़ताल से प्रभावित था तथा स्वतंत्रता सेनानियों के काफिले निकल पड़े। रोहतक के सांघी गांव से चौ. रणबीर सिंह तथा अन्य उनके सहयोगी आन्दोलन में कूद पड़े। भिवानी, हिसार, करनाल, गुड़गांव आदि सभी स्थानों पर लोगों ने गिरफ्तारियां दी।[30] यह आन्दोलन 1944 को समाप्त हो गया तथा इससे स्वतंत्रता की इबारत लिखी गई।

भारत छोड़ो आन्दोलन के साथ–साथ नेता जी सुभाषचन्द्र बोस द्वारा गठित भारतीय राष्ट्रीय सेना (आई.एन.ए.) द्वारा 'दिल्ली चलो' अभियान के अर्न्तगत ब्रिटिश फौज के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। आई.एन.ए. में हरियाणा के 2248 जवान सम्मिलित हुये थे, जिनमें से देश की आजादी के लिए 273 शहीद हुये। यद्यपि आई.एन.ए. का ध्वज लाल किले पर न फहराया जा सका परंतु, आजादी इस युद्ध से समीप जरुर आ गई। स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास की समीक्षा से विदित है कि दिल्ली से सटे हरियाणा के किसानों की भूमिका स्वतंत्रता संघर्ष में अति महत्वपूर्ण बनी।

इस शोधपत्र के आधार पर निम्नलिखित महत्वपूर्ण बिन्दुओ ंपर गहन विचार–विमर्श करना चाहिये –

1. हरियाणा के ऐतिहासिक युद्धों – तरावड़ी की लड़ाईयों–1911 व 1912, पानीपत की लड़ाईयों – 1526, 1556 व 1761 एवं स्वतंत्रता संग्राम – 1857 का युद्ध क्षेत्र रहा है। इनमें हरियाणा की जनता विशेषकर, किसान समुदाय को काफी क्षति उठानी पड़ी। इन पर ऐतिहासिक सामग्री एवं अन्य विवरण भिन्न–भिन्न जिलों के मुख्यालय पर उपलब्ध है जो हरियाणा के किसान इतिहास लिखने में काफी सहायक सिद्ध हो सकती है। डेल्पिरंल की पुस्तक 'द लास्ट मुगल' इस प्रकार के प्रयास के लिये प्रेरणादायक हो सकती है। अभी तक हरियाणा का इतिहास अधूरा है। उसमें लोगों का इतिहास नहीं मिलता। डेल्रिंपल जैसे इतिहासकार हरियाणा के किसान इतिहास के लेखन में कुताही बरतने के लिये यहां के इतिहासकारों को सुस्त इतिहासकार कहकर कोसते हैं।
2. शोधपत्र में सन् 1857 की जनक्रांति के सन्दर्भ में 51 गांवों की निलामी का उल्लेख हुआ है। इनमें से एक गांव रोहनात (हिसार) है। इस गांव पर मैंने एक ऐतिहासिक अध्ययन किया है, जिसका विवरण अनुलग्नक–1 में दिया गया है। निलाम किये गए अन्य गांवों का भी इस प्रकार का अध्ययन किया जाना चाहिए।
3. जिन बाधाओं और संकटों के कारण किसानों ने स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रियता से भाग लिया उनमें भारी भू–कर तथा भू–कर नियम, साहूकारों द्वारा शोषण, बेगारी, रेवन्यू सिस्टम में भारी भ्रष्टाचार तथा भूमि सुरक्षा जैसे मुद्दे थे। भूमि रजिस्ट्रेशन कानून–1882 तथा भूमि अधिग्रहण कानून – 1894 के अतिरिक्त राजस्व अधिकारियों का प्रभाव आज भी किसानों को परेशान कर रहा है। भू–व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है। आज भी देश में 11 लाख एकड़ जमीन का रकबा मुकद्दमों मे ंउलझा पड़ा है। यह अध्ययन पोलिसी रिसर्च केन्द्र कोच्ची द्वारा किया गया है। ट्रांसपेरंसी इन्टरनेशनल के अनुसार भारतीय रेवन्यू प्रशासन हर वर्ष 70 करोड़

डालर की रिश्वत बटोरता है। भारत में लैंड यूज एक्ट–1950 भी किसानों के लिये अभिशाप बना हुआ है। सस्ते दामों की जमीन खरीदकर प्रशासन की मिलीभगत करके सी.एल.यू. बदलकर जमीन का व्यवसायीकरण कर दिया जाता है। वर्ष 1947–2004 तक तकरीबन 6 करोड़ किसानों की जमीन से बेदखल किया जा चुका है, जिनमें से सिर्फ 18 प्रतिशत किसानों का पुर्नवास हो पाया है। किसानों को इन राजस्व कानूनों ने काफी संकट में डाला हुआ है तथा स्थिति दिनोंदिन विस्फोटक होती जा रही है। अन्तिम सैम्पल सर्वे की रिपोर्ट के अनुसार भारत के आधे किसान कर्जे में दबे हुये हैं तथा उनकी आर्थिक स्थिति आजादी से पूर्व की स्थिति जैसी हो गई है। अतएवः गरीब किसानों का इतिहास सिर्फ निर्धन इतिहास नहीं रहना चाहिए। हमें किसान आर्थिक इतिहास लिखना चाहिए।
4. भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास बगैर किसान आन्दोलनों की भूमिकाओं के लिखा गया है। वास्तविक स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास किसानों के संघर्षों को जोड़कर रचित करना होगा।
5. सभी किसान आन्दोलन, हिन्दू–सिख मुसलमानों की एकता के प्रतीक हैं तथा इनमें धर्मनिरपेक्ष स्वरों की शक्ति का परिचय मिलता है। ये सभी आन्दोलन आर्थिक मुद्दों को लेकर चलें। इसलिए वर्ष 1857–1947 के काल का इतिहास राजनैतिक स्वाधीनता एवं आर्थिक स्वाधीनता का संघर्ष था। हरियाणा का इतिहास इसी भावना के अन्तर्गत लिखा जाना चाहिए।
6. हरियाणा भारत के मानचित्र पर सन् 1966 में आया। आजादी से पूर्व भी हरियाणा बन सकता था। परन्तु, चौ. छोटूराम जैसे राष्ट्रीय नायकों ने इस प्रकार के प्रयासों पर विराम लगा दिया था। मुस्लिम लीग पंजाब के अम्बाला डिविजन को निकालकर मुस्लिम बाहुल पंजाब के गठन की प्रबल पक्षधर थी। इसी प्रकार अकाली दल भी आजाद पंजाब की मांग कर रहा था। लाला लाजपतराय ने भी पंजाब को दो भागों में विभाजित करने की मांग की थी। हरियाणा

तथा दिल्ली क्षेत्र के कांग्रेस नेताओं ने भी हरियाणा गठन की मांग महात्मा गांधी के समक्ष रखी थी। परन्तु, इनका विरोध राष्ट्रीय हित में चौ. छोटूराम करते रहे थे। उन्हें आशंका थी कि आजादी के समय इसके काफी भयंकर परिणाम हमारे सामने आते। इस सन्दर्भ में एक दस्तावेज अनुलग्न–11 के रुप में यहा ंउपलब्ध है।

7. भारत का विभाजन हमारे स्वतंत्रता आन्दोलन की सबसे बड़ी त्रासदी है। एक करोड़ लोगों को विभाजन के कारण विस्थापन का संकट झेला। 7 लाख से 20 लाख तक की मानव हत्याएं हुई। इतिहास इस प्रश्न के उत्तर की प्रतिक्षा में है कि पाकिस्तान के गठन के लिए कौन राजनैतिक शक्तियां थी? दीनबन्धु छोटूराम जिन्नाह की विभाजन की मांग को हमेशा विराम लगाते रहे और उन्होंने कभी भी जिन्नाह के धार्मिक उन्माद को पंजाब में पनपने नहीं दिया।

8. सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम में हरियाणा प्रांत की भूमिका अग्रणी थी। कुछ ऐसे ऐतिहासिक तथ्य हमारे सामने हैं कि देसी रियासतें – नाभा, पटियाला, जींद, आदि यदि अंग्रेजों का साथ न देती और हरियाणा किसानों के आन्दोलन को दबाने में सक्रिय न होती, तो भारत को वर्ष 1857 में ही आजादी मिल जाती। सन् 1857 के जनक्राांति के पश्चात् हरियाणा का विभाजन एवं कुछ क्षेत्र इस राज्य के नाभा, पटियाला व जींद रियासतों को अंग्रेजों द्वारा उपहार के रुप में देना हरियाणा की पारंपरिक विरासत को घातक कर गया। नारनौल व कानौड की निजामत पटियाला रियासत को सुर्पद कर दी गई।

9. हमें सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम को कभी भी इतिहास से ओझल नहीं होने देना चाहिए। 10 मई, 1857 तथा 15 अगस्त 1947 दोनों हमारे देश के लिए महत्वपूर्ण दिन हैं। दोनों ही हमारे पर्व दिवस हैं। 15 अगस्त की भांति हमें 10 मई को भी राष्ट्रीय दिवस के रुप में मनाना चाहिए।

10. हरियाणा कृषि आधारित संस्कृति को मानने वाला प्रांत है। इसलिये हरियाणा के विकास इतिहास में किसान की भूमिका एवं किसान जीवन को सामाजिक शास्त्र के अन्तर्गत स्कूलों के पाठ्यक्रम में अध्ययन हेतु सम्मिलित करना चाहिए। स्कूलों में "कृषि एवं किसान" विषय एक अलग से विषय भी होना चाहिए।

References

1. Haryana D.C. Verma, Sukhbir Singh. National Book Trust of India-2001.
2. The Last Mughal - William Dalrymple Penguin Veking
3. Gazetteer of India - Haryana State Gazetteer Vol. I, Suraj Bhan Dahiya.
4. Front Line - Magazine, June 29, 2007.
5. Great Indians. Balraj Krishna Rupa & Co.
6. दहिया स्मृति। सूरजभान दहिया।
7. Karnal District Gazetteer - 1892
8. Hissar District Gazetteer - 1892
9. Ambala District Gazetteer - 1892
10. Rohtak District Gazetteer - 1883-84
11. हरियाणा संवाद – अगस्त–सितम्बर, 2007
12. कल्चर एवं सिवलाईजेशन ऑफ एन्सिएंट इंडिया इन हिस्टोरिकल लाईन – डी.डी. कसुम्भी।
13. एग्रीक्लचरल हिस्ट्र ऑफ इण्डिया – डा. एम.एस. रंणधावा।
14. स्वतंत्रता संग्राम और हरियाणा – देवीशंकर प्रभाकर।
15. 1857 का स्वतंत्रय समर – डा. सतीश मित्तल।
16. 1857 की क्रांति में हरियाणा का योगदान – जगदीश भारती, 7 मई, 1989(III) – दैनिक ट्रिब्यून, चंडीगढ़।
17. पहले स्वतंत्रता को न भूले – 19 जून, 1997 – दैनिक हिन्दूस्तान – उर्मिलेश।
18. (a) Sir Chhotu Ram - Selected Speeches & Writings - Balbir Singh
    (b) Sir Chhotu Ram - In Thought & Deeds - Balbir Singh.
19. Two Nation Theory has bred practice of hatred :- M.J. Akbar - Times of India.

अनुलग्न–1
रोहनाथ (रुहनाथ) – एक शहीदी गाँव

भारत की स्वतंत्रता की कहानी खून और आंसुओं की कहानी है। स्वतंत्रता यज्ञ में भारत के प्रत्येक भाग में जीवन आहूतियां दी गई, लाखों व्यक्तियों ने जेलें काटी, हजारों क्रान्तिकारी फांसी के फंदों पर झूले और सीने में गोलियाँ खाईं। भारी बलिदान के पश्चात् यह यज्ञ पूर्ण हुआ और देश को स्वतन्त्रता मिली।

भारत की स्वतंत्रता के लिए जो प्रथम युद्ध 1857 ई0 में हुआ उसका उदाहरण विश्व के इतिहास में नहीं मिलता। यह वह समय था जब अंग्रेज शासक सारे देश पर अपना अधिकार कर लेना चाहते थे। इस युद्ध में जिस वीरता से महारानी झांसी, कुंवर साहब, तांत्या टोपे, बहादुर शाह जफर और हरियाणा के कई गांव लड़े उनकी मिशाल नहीं मिलती। इस स्वतन्त्रता के प्रथम युद्ध ने अंग्रेजों को सोचने पर विवश कर दिया था कि हिन्दुस्तान सदा के लिए उनका गुलाम नहीं रह सकता। हिन्दुस्तानी स्वतंत्रता का मोल चुकाना जानते हैं।
मैं केवल हरियाणा के उस गाँव की गाथा लिखने जा रहा हूं जिसने स्वतन्त्रता देवी को प्रसन्न करने के लिए अपना सबकुछ न्योछावर कर दिया था। यह गाँव रुहनाथ हांसी नगर से दस मील के फासले पर बसा हुआ है। सन् 1857 ई. में जब 11 मई को दिल्ली में पहले स्वतन्त्रता संग्राम का आरम्भ हुआ, यह गांव किसी प्रकार से भी पीछे नहीं रहा। यहां के क्रान्तिारियों को बहादुरशाह जफर का आदेशा मिल चुका था, जिस पर इस शहीद गांव और दूसरे कई गांवों ने 29 मई सन् 1857 ई. को शुक्रवार के दिन अंग्रेजों पर आक्रमण कर दिया।

सबसे पहले तोशाम पर आक्रमण हुआ। फिर, दोपहर के बाद हांसी और हिसार पर हमला हुआ। क्रांतिकारियों ने सरकारी खजाना लूट लिया, जेलें तोड़ दी और कैदियों को भगा दिया। इस दिन 12 अंग्रेज अफसर हिसार में और 11 हांसी में मारे गए। सबसे अधिक हानि हांसी के देहात

ने पहुंचाई थी। इसलिए, अंग्रेजों ने पलटन नं. 14 हांसी में भेज दी और अंग्रेज सेना ने क्रांतिकारियों से गिनगिन कर बदला लिया। पुट्ठी मंगलखान पर तोप लगाकर रुहनाथ गांव को बुरी तरह से भून दिया गया। सैंकड़ों व्यक्ति मारे गए।

इसके पश्चात् गांव के क्रांतिकारी पकड़ कर हांसी नगर में लाए जाते रहे और उन्हें रोड रुलर अर्थात् सड़क की रोड़ी कूटने वाले इंजन के नीचे देकर पीस दिया जाता। जहां यह अत्याचारी कार्य होता रहा वह सड़क खून से लथपथ हो गई जिस पर इसका नाम लाल सड़क पड़ गया। यह सड़क आज भी हांसी नगर के बीचोंबीच गुजरती है और लाल सड़क के नाम से प्रसिद्ध है। इस सड़क पर शहीद गांव रुहनाथ के एक नौंदा नाम के क्रांतिकारी को भी पीसा गया और बिरड़दास स्वामी को तोप से उड़ाया गया। नामलूम कितने आदमी उस 'रोड रुलर' की खुराक बने। इस सम्बन्ध में हम उनके नाम तक से परिचित नहीं, क्योंकि अंधाधुंध पकड़ हो रही थी।

अत्याचार और आगे बढ़ता है

यह वह समय था जब जिला हिसार के डिप्टी कमिश्नर मिस्टर विलय ख्वाजा थे। वह रुहनाथ गांव की क्रांतिकारी लहर को अच्छी प्रकार से देख रहे थे। उन्होंने तहसीलदार हांसी को 14 सितम्बर सन् 1857 ई. को लिखा कि मुकदमा नं. 5 के अनुसार रुहनाथ गांव बागी हो गया है। इस गांव के पास कुल कितनी धरती है, इसकी पूरी तफसील भेजी जाए ताकि इस गांव को जब्त करने की स्वीकृति ली जाए। जिस पर तहसीलदार ने सारी तफसील तुरन्त भेज दी, जिस पर सैक्रेट्री चीफ कमिश्नर बहादुर पंजाब ने अपने पत्र नं. 781 तिथि 13 नवम्बर सन् 1857 ई. के अनुसार दूसरे कई गांव के साथ रुहनाथ का पूरा गांव नीलाम करने की स्वीकृति दे दी।

इस समय हिसार में इंचार्ज जिलाधीन जनरल बिन थे। इन्होंने तहसीलदार हांसी को चीफ सैक्रेट्री पंजाब के पत्र का हवाला देकर रुहनाथ गांव की नीलामी के लिए एक नक्शा (चित्र) भेजा, जिसमें कुल धरती, कुल वार्षिक आमदनी, कुल नहरी धरती, कुल बारानी धरती, कुल काश्त, कुल सरकारी फीस आदि तफसील पूछी गई थी। यह चित्र 10 दिसम्बर सन्

1857 ई. को भेजा गया था जिसे तहसीलदार ने तुरन्त भर कर भेज दिया। जिस पर जिलाधीश जनरल बिन ने फिलानशल कमिश्नर से नीलामी की तारीख हासिल की।

नीलामी

शहीद गांव रुहनाथ को नीलाम करने के लिए फिनानशल कमिश्नर पंजाब के पत्र नं. 1076 तिथि 12 अप्रैल सन् 1858 के अनुसार ता. 20 जुलाई 1858 निश्चित हुई और निलामी के लिए आवाज लगाई गई। पूरे गांव की धरती में केवल 13 बीघे 10 बिसवें धरती को छोड़ दिया गया, जिस पर एक तालाब था। शेष सारी धरती नीलाम की गई। नीलामी की रिपोर्ट में यह भी लिखा है कि जो वृक्ष अपने आप उगे थे, वह भी नीलामी में शामिल किए गए। इस पूरे गांव की बोली दी तीन गांव के लोगों ने मिलकर आठ हजार एक सौ रु. तक दी। कुल नीलामी का चौथा भाग दो हजार पच्चीस रुपए उसी समय दाखिल खजाना किया गया।

इस गांव को कुल 61 व्यक्तियों ने खरीदा जिनका ब्यौरा इस प्रकार हैः–

नाम गांव	खरीदारों की संख्या
उमरा	29
सुलतानपुर	20
महन्दीपुर	1
भगाना	1
मजाहदपुर	4
कुल	61 खरीदार

शेष रूपए नीलामी 6075 रु. भी बाद में सरकारी खजाना में दाखिल हुए और खरीदारों को कब्जा मिल गया।

अब इस गांव के क्रांतिकारियों पर संकट का पहाड़ टूट पड़ा था जिस पर काफी व्यक्ति यहां से भाग गए। कई व्यक्ति अंग्रेजों ने कतल करा दिए थे और इन्हें 'बागी' कहा जाने लगा। इनकी सन्तान को बागियों की सन्तान कह कर पुकारा जाता। पूरे 90 वर्ष तक इनकी समाज में अच्छा स्थान न मिला। इनके विवाह मरण आदि पर इनको काफी सामाजिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था।

भारी कुरबानी के बाद भारतवर्ष 15 अगस्त 1947 ई. को आजाद हुआ तो इस गांव ने सुख का सांस लिया। इन्हें आशा हुई कि अब इनको धरती वापिस मिल जाएगी और गर्व के साथ कह सकेंगे कि हमने भी स्वतंत्रता के लिए खून दिया है। देश को स्वतंत्र हुए 17 वर्ष हो चुके हैं। परन्तु, यह गांव आज भी परतन्त्र है। क्योंकि, अभी तक इस गांव की धरती वापिस नहीं मिली। यह सभी के सभी किसान हैं और बेकार बैठे हैं। इनकी मांग है कि सरकार इन्हें इनकी धरती वापिस दे। इनके बच्चों को शिक्षा आदि की सुविधायें तथा छात्रवृतियां दे, ताकि अनुभव कर सकें कि हम भी स्वतन्त्र हैं। 1857 ई. के स्वतन्त्रता संग्राम में यह गांव किसी प्रकार से भी पीछे नहीं रहा। भारत सरकार कई बार घोषणा कर चुकी है कि 1857 ई. के क्रांतिकारियों की धरती आदि वापिस की जायेगी। परन्तु, अभी तक इनसे न्याय नहीं हुआ।

यह उन क्रांतिकारियों के नाम जो अपनी धरती बोते थे और इन्हें 'बागी' घोषित करके सबकुछ छीन लिया था। और धरती नीलाम कर दी गई थी। यह लिस्ट मिसल बन्दोबस्त 1840 से ली गई है।

क्रम	नाम	पिता का नाम	जाति
1.	श्री उदमी	श्री बख्शी	जाट
2.	'' आसकरण	'' नीबा	–
3.	'' बदरी	'' बखशी	''

4.	″ बाला	″ उदमीराम	″
5.	″ प्रेम	″ खुशहाल	″
6.	″ प्रेम सुश्व	″ पीहलु	″
7.	″ तुलसा	″ बोदीन	″
8.	″ तीकु	″ दयाराम	″
9.	″ तेलहिया	″ नानु	″
10.	″ जयराम	″ सैलाद	″
11.	″ जकरुर	″ रतिया	″
12.	″ दीना	″ बखशी	″
13.	″ घनशाम	″ सातकराम	″
14.	″ रामबियान	″ मैयाराम	–
15.	″ रामसुख	″ बखशी	″
16.	″ राजरुप	″ रतिया	″
17.	″ सरबु	″ दयाराम	″
18.	″ हरिमुश्त	″ मेहरु	″
19.	″ सदासुख	″ कला	″
20.	″ गजा	″ पतराम	″
21.	″ मियों	″ बखशी	″
22.	″ महकम	″ निरास	″
23.	″ बल्ला	″ नैनसुख	ब्राह्यण
24.	″ सिवा	″ छज्जु	″
25.	″ सोभा	″ नैनसुख	″
26.	″ भोहरी	″ नैनसुख	″
27.	″ हरनन्द	″ मौज	″
28.	″ हरुमल	″ मौला	″
29.	″ जयोना	″ मंजार	रांगड़
30.	″ दिलावर	″ अब्बास	″
31.	″ रसोला	″ ताला	″
32.	″ सकरहिया	″ सिलवा	″
33.	″ प्रेम क्षुख	″ सिलवा	जाट जमीदार
34.	″ बीरु	″ नोवा	रांगड़
35	″ काला बोला दारान	″ प्रसाद	″

नोट : इसके अतिरिक्त ″शामलात देह″ और ″किसान कदीम″ की धरती भी नीलाम की गई थी।

यह हैं मारुसी किसान जिनकी धरती भी नीलाम हुई थी। यह लिस्ट भी मिसल बन्दोबस्त 1840 ई. में ली गई है –

क्रम	नाम	पिता का नाम	जात
1.	″ बहलु	″ टहलु	चमार
2.	″ बीरु	″ बहलु	चमार
3.	″ जसु	″ साधु	चमार
4.	″ जिया	″ माहना	धानक
5.	″ मुनीर	″ दीपा	धानक
6.	″ सुजाल	″ बिहारी	महाजन
7.	″ सदासुख	″ रोशन	″
8.	″ माजा	″ हिमूद	धानक
9.	″ कसला	″ हिमूद	धानक
10.	″ कन्देला	″ मालका	चमार
11.	″ दीना	″ खुशाला	चमार
12.	″ मामचन्द	″ सिंघा	चमार
13.	″ मसानिया	″ हीरा	धानक
14.	″ मला	″ खुशहाल	चमार
15.	″ मसानिया	″ सेओ	चमार
16.	″ समेरु	″ सकरु	तेली
17.	″ शकरु	″ शकरु	तेली

भारत को स्वतंत्र होने के पश्चात् यहां के क्रांतिवीरों की पीढ़ियों ने नीलाम की गई अपनी भूमि को पुनः प्राप्त करने हेतु संघर्ष करना आरम्भ कर दिया। उनके सतत प्रयास सफल होते दीखे जब हिसार जिले के डिप्टी कमीश्नर ने 12–12 एकड़ के 57 प्लाट सितंबर, 1966 में शहीदों के परिवारों को वितरित करने की योजना को अन्तिम रुप दे दिया। तत्कालीन पंजाब

सरकार ने इस योजना को मंजूरी दे दी। परन्तु, नवम्बर 1966 में हरियाणा अस्तित्व में आ गया। उपरोक्त योजना को क्रियान्वयन करने का दायित्व अब हरियाणा सरकार का था। परन्तु, नौकरशाही ने इस योजना को फिर ठंडे बस्ते में डाल दिया।

1970 में चौ. बंसीलाल जब हरियाणा के मुख्यमंत्री थे, तो उन्होंने क्रांतिवीरों के परिवारों के 175 सदस्यों को जमीन का मुआवजा देने का निर्णय लिया। कुल मुआवजे की राशि 64.32 लाख रुपये की अनुमानित की गई। परन्तु, सरकार ने प्रारम्भिक 1.25 लाख रुपये की राशि ही वितरित की।

शहीदी परिवारों के सदस्यों ने पुनः चौ. देवीलाल व श्री भजनलाल जब वे मुख्यमंत्री थे, शेष मुआवजे की राशि देने का अनुरोध किया। 12 जून 1993 को हरियाणा सरकार ने इस केस को अन्तिम रुप से बिना किसी मुआवजे दिए बंद कर दिया। इस प्रकार क्रांतिवीरों के परिवार के सम्मान पर सरकार ने कड़ा आघात पहुंचाया। आज यह इतिहास का काला अध याय बनकर रह गया है।

हरियाणा आजादी से पहले बन जाता तो.......

सूरजभान दहिया कहते हैं, इतिहास को पलटा तो नहीं जा सकता परन्तु, यदि हरियाणा आजादी के पहले बन जाता तो देश को भारी कीमत चुकानी पड़ती।

तत्कालीन पंजाब में 1937 से लेकर 1947 के बीच कई घटनाएं हुई जिनका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रुप से अम्बाला डिवीजन पर भी बहुत प्रभाव पड़ा। यहां के निवासियों में यह बात होती रहती थी कि एक ऐसा प्रदेश बने जिसमें वर्तमान हरियाणा के अतिरिक्त देहली एवं मेरठ डिवीजन का इलाका भी शामिल हो। इस दिशा में स्वर्गीय लाला देशबंधु गुप्त और कई अन्य नेताओं ने कोशिश भी की। 9 दिसंबर 1932 के हिन्दुस्तान टाइम्स में देशबन्धु गुप्त का एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ था, जिसमें अन्य बातों के साथ–साथ उन्होंने यह भी कहा– 'भारत के इतिहास में कभी भी अम्बाला का क्षेत्र पंजाब का हिस्सा नहीं रहा। यह इलाका हर लिहाज से पंजाब से

बिलकुल अलग–थलग है। इसे पंजाब के साथ तो अकारण ही नत्थी कर दिया गया; क्योंकि पंजाब का अपना गठन भी तो अनिश्चित परिस्थितियों का ही परिणाम है। यहां की भाषा, संस्कृति, इतिहास, रहने–सहने का ढंग और रीति–रिवाज पंजाब से बिलकुल भिन्न हैं। अम्बाला डिवीजन पंजाब से कितना अलग था, इसकी पुष्टि एक सरकारी रिपोर्ट से भी होती है जो 1921–22 में 'लैंड ऑफ फाइव रिवर्ज' के शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। रिपोर्ट के अनुसार 'जिस इलाके को अम्बाला डिवीजन कहते हैं, वह भाषा, धर्म और जातिगत गुणों के कारण हिन्दुस्तान के ज्यादा निकट है। यह एक अलग बात है कि इसे राजनीतिक रुप से पंजाब का एक हिस्सा माना जाता है।' पंडित श्रीराम शर्मा ने अपनी पुस्तक 'हरियाणा का इतिहास' में लिखा है कि अगस्त 1931 में गोल मेज़ कॉन्फ्रेंस में शामिल होने के लिए जब गांध ी जी शिमला से एक विशेष रेलगाड़ी में सवार होकर बंबई जा रहे थे तो हरियाणा के नेताओं ने दिल्ली के पास गांधीजी से भेंट की और उनसे अनुरोध किया कि वे अलग हरियाणा प्रांत बनाने की सिफारिश करें। ये नेता थे– पं. नेकीराम, ला. देशबंधु और पं. श्रीराम शर्मा। गांधीजी का उत्तर था कि प्रांतों के पुनर्गठन का मामला स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही उठाया जा सकता है। इससे पहले भी एकबार यह प्रश्न उठा था। साइमन कमीशन आया तो उसके समक्ष पंजाब विधान परिषद् की ओर से एक रिपोर्ट पेश की जानी थी, जिसे तैयार करने के लिए सर सिकंदर हयात खां और चौ. छोटूराम और कुछ अन्य महानुभाव नामांकित किए गए। कमेटी के मुसलमान सदस्य चाहते थे कि चौ. छोटूराम अम्बाला डिवीजन को पंजाब से अलग करने की मांग प्रस्तुत करें। चौधरी साहब समझते थे कि जब तक हरियाणा एक अलग प्रांत नहीं बन जाता, यह इलाका पिछड़ा ही रहेगा। लेकिन, सांप्रदायिक स्थिति को समक्ष रखते हुए उन्हें यह भी अहसास था कि अम्बाला डिवीजन की पंजाब से अलग करने का मतलब होगा पंजाब में रहने वाले अल्पसंख्यक हिंदू समुदाय की स्थिति को मुसलमान बहुसंख्यक समुदाय के मुकाबले में और कमजोर कर देना।

चौधरी छोटूराम के शब्दों में– 'अम्बाला डिवीजन को पंजाब से अलग करने का अर्थ होगा पंजाब को मुस्लिम बहुल प्रांत बना देना, जिसका

भयंकर परिणाम यह होगा कि पंजाब एक मुस्लिम राज्य बन जाएगा और इससे भारत को एक बड़ा धक्का लगेगा। वे हरियाणा के एक अलग प्रांत बनाने के तर्क को तो स्वीकार करते थे लेकिन, अलगाववादी फिरकापरस्तों के हाथों में खेलना उन्हें स्वीकार नहीं था। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि मोहम्मद अली जिन्ना को अगर किसी ने पंजाब से असफल और निराश लौट जाने पर मजबूर किया तो वे थे चौधरी छोटूराम। अगर मिस्टर जिन्ना अपने इरादे में कामयाब हो जाते तो शायद वर्तमान पंजाब का सारा इलाका पाकिस्तान में होता और इसकी राजधानी लाहौर होती। सर सिकंदर हयात खां की मृत्यु के पश्चात् यूनियनिस्ट पार्टी का नेतृत्व मलिक खिजर हयात खां ने संभाला। परंतु, वे राजनीतिक दृष्टि से पूर्णतः चौ. छोटूराम पर निर्भर रहे और जिन्ना के दबाव में नहीं आए। चौधरी छोटूराम ने मुस्लिम लीग के प्रोपेगंडा का मुकाबला करने के लिए यूनियनिस्ट पार्टी और जमींदारा लीग के कई बड़े और सफल जलसे मुसलमान बहुल इलाके पश्चिमी पंजाब और हिंदू बहुल क्षेत्र हरियाणा में कराए और संपूर्ण पंजाब में कहीं भी मुस्लिम लीग के पांव नहीं टिकने दिए। 9 जनवरी 1945 को चौ. छोटूराम चल बसे। जिन्ना भांप गए थे कि अब पंजाब में उनका मुकाबला करने वाला कोई नहीं रहा। मलिक खिजर हयात खां को गद्दी से हटाने और पंजाब पर कब्जा जमाने के लिए पंजाब भर में दंगे–फसाद करवाए गए।'

आजादी के काफी समय बाद तक हरियाणा अलग राज्य नहीं बन पाया। लंबे संघर्ष के पश्चात् 1966 में यह अस्तित्व में आया। परंतु, इसका आकार पूर्व हरियाणा (जो 1857 में था) के मुकाबले एक–तिहाई ही है। उल्लेखनीय है कि सत्ता हस्तांतरित करने हेतु आए कैबिनेट मिशन ने 8 मई 1947 को कांग्रेस और मुस्लिम लीग के समक्ष स्कीम ए और स्कीम बी नामक दो प्रस्ताव रखे थे। स्कीम ए एकीकृत भारत और स्कीम बी देश के विभाजन से संबद्ध थी। चौ. छोटूराम की उपलब्धियों और व्यक्तित्व को देखते हुए कहा जा सकता है कि यदि वे जीवित रहते तो निस्संदेह स्कीम ए ही लागू होती। यही कारण है कि भारतीय एकता और अखंडता की दृष्टि से चौधरी छोटूराम के अकस्मात निधन को आज इतिहासकार एक बड़ी ट्रैजेडी मान रहे हैं। यह भी साफ है कि चौ. छोटूराम हरियाणा का

गठन आजादी से पहले ही करवा लेते। परन्तु, उन्होंने देश व पंजाब के हित में हरियाणा के अस्तित्व में आने से रोके रखा। इतिहास को पलटा तो नहीं जा सकता परंतु, यदि हरियाणा आजादी के पहले ही बन जाता तो देश को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती।

किसी भी प्रदेश या उसके खण्ड का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक लेखा–जोखा प्रस्तुत करने से पूर्व उसको उस समय की सीमा व स्थिति को जानना आवश्यक है। आज का जिला जीन्द स्वतन्त्रता पूर्व रियासत जीन्द की नजामत के नाम पर उसका एक भाग रहा है।

जीन्द के प्राचीन इतिहास का अपना गौरव है। यह रियासत फुलकियां स्टेट (पटियाला, नाभा और जीन्द) में दूसरी श्रेणी में आती है। इसकी राजधानी संगरुर बहुत दूर होने से प्रशासन की दृष्टि से इसको संगरुर, दादरी तथा जीन्द तीन भागों में बांटा गया, जिन्हें नजामत कहते थे और इसका प्रशासक नाजिम होता था।

जीन्द स्टेट का जन्म 18वीं शताब्दी के अन्त में राजा गजपत सिंह द्वारा हुआ। सन् 1763 ई. में गजपत सिंह ने सरहिन्द के हाकिम जीन खान जिसको अहमदशाह अब्दाली लौटते समय दुर्रानी को गर्वनर नियुक्त कर गया था, के विरुद्ध लड़ाई की तथा विजय प्राप्त करने से जीन्द, सफीदों, बाजीदपुर, करनाल व पानीपत का इलाका इन्हें प्राप्त हुआ। परन्तु कुछ समय पश्चात् दिल्ली के बादशाह को खराज न दे सकने के कारण बाजीपुर, करनाल तथा पानीपत इनके हाथ से निकल गया। परन्तु, आगे चलकर कुछ कारणों से नाभा से युद्ध छिड़ने पर संगरुर इनके अधिकार में आ गया, जिससे जीन्द के स्थान पर संगरुर को राजधानी बनाया गया।

जीन्द स्टेट के राजा स्वरुप सिंह ने अफगानों के विरुद्ध अंग्रेजों की सहायता की तथा मित्रवश करनाल के कुछ गांव अंग्रेजों को देकर महलां, मोड़ां तथा घाबदा के कुछ गांव बदले में ले लिये; जो संगरुर राजधानी के निकट पड़ते थे। जीन्द स्टेट की सेनाओं ने सन् 1857 की जनक्रांति (गदर) में पटियाला, नाभा की सेनाओं के साथ मिलकर अंग्रेजों की सहायता की। जीन्द सेना के जनरल काहन सिंह की देख–रेख में कश्मीरी गेट से दिल्ली में सर्वप्रथम प्रवेश किया। इनकी सहायता के कारण ही

अंग्रेजों ने दिल्ली को प्राप्त किया। इसी जीत की खुशी में अंग्रेजों ने दादरी का क्षेत्र जीन्द को, नारनौल व महेन्द्रगढ़, पटियाला को तथा बावल तथा कांटी के गांव नाभा स्टेट को दिये और जीन्द के राजा स्वरुप सिंह को महाराजा की पदवी देकर खराज लेने बन्द कर दिये। इतना ही नहीं बल्कि, उनको 17 तापों की सलामी भी दी गई।

वैसे तो उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हरियाणा प्रदेश के संघर्षों के साथ ही इस स्टेट की कहानी स्पष्ट होने लगती है। अंग्रेजों के षड़यंत्रों के प्रभावों ने यहां के स्वाभिमानी लोगों को चुनौती दी? राजशाही शासन के संकेत पर नाचने के कारण, ग्राम–स्वराज्य को भंग करने की चाल, जनता पर भारी करों के कारणों ने यहां के लोगों को सशस्त्र–क्रांति में कूदने को मजबूर कर दिया। जैसे कि भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के पूर्व कुछ ऐसे कारण बने, जिन्होंने लोगों को विद्रोह करने को विवश कर दिया; जिसे अंग्रेजों की अपार शक्ति से भी दबाया नहीं जा सका। रियासत जीन्द के गांव लजवाना के लोगों को भी राजा के विरुद्ध हथियार उठाने पर विवश होना पड़ा। यह मामला इतना जोर पकड़ गया कि इसको दबाने के लिए राजा जीन्द को पटियाला, नाभा की रियासतों के साथ–साथ अंग्रेजों से भी सहायता लेनी पड़ी।

यह घटना सन् 1854 की है, जब जीन्द के राजा उत्तम सिंह के मुंह लगे तहसीलदार कंवरसैन शामलो कलां गांव के अन्दर अपना दरबार लगाकर गांव वालों से गाली–गलोच से पेश आये। लजवाना गांव के नम्बरदार 'भूरा व निगाईया' को यह सहन नहीं हुआ। उन्होंने अपनी पुरानी दुश्मनी भुलाकर संघर्ष की भावी योजना का रुप दे दिया। अगले दिन तहसीलदार कंवर सैन अपने अमले के साथ जब गांव लजवाना आया तो चौपाल में भूरा व निगाईया नम्बरदार वहां उपस्थित नहीं थे। इस तहसीलदार ने जमीनों के फैसले सुनाने की बजाये, सारे गांव को गालियां देनी शुरु कर दी तथा अन्य कई प्रकार से भी राजसी रोब दिखाया। गांव के नौजवानों ने आक्रोश में आकर तहसीलदार को मार कर काली देवी के मंदिर के प्रांगण में, उसको सरकारी कागजों सहित जला दिया।

इस घटना की सूचना जीन्द के राजा उत्तम सिंह के पास पहुँचने पर आदेश और अवहेलना के खेल ने मोर्चाबंदी का रुप ले लिया। गांव और फौज का छः मास तक युद्ध चलता रहा। अन्ततः नाभा, पटियाला तथा अंग्रेजों की सैन्य सहायता आने पर गांव वालों ने गांव छोड़कर अन्य कहीं चले जाने में ही भलाई समझी। आज भी इस गांव के छः अन्य गांव आबाद हैं। कहते हैं कि इस लड़ाई में गांव की स्त्रीयों ने भी बढ़–चढ़कर भाग लिया तथा एक लड़की भोली ने अद्भुत वीरता दिखाकर एक ही दिन में 18 फौजियों को मौत के घाट उतार कर पानी पिया।

भारत के स्वतंत्रता–संग्राम का इतिहास इस बात का गवाह है कि रियासत जीन्द के लोगों ने भी अपने हिस्से का खून बहाने में संकोच नहीं किया है। सन् 1857 के स्वातंत्र्य–समर के समय पकड़े गये यहां के 45 क्रांतिकारियों को एक ही दिन में वृक्षों पर लटकाकर जीन्द के किले के सामने फांसी दे दी गई।

जीन्द शहर क मौहल्ला कानूनगो के निवासी तथा निकटवर्ती गोहाना में कार्यरत उदयराम तहसीलदार ने मई 1857 में सफीदों क्षेत्र के गांव एंचरा कलां में सक्रिय 45 क्रांतिकारियों को पानीपत के एक अंग्रेजी अधिकारी की सहायता से सफीदों में तैनात पुलिस के माध्यम से पकड़वा दिया था। अंग्रेजों ने उदयराम तहसीलदार को लुधियाना में अतिरिक्त डिप्टी कमीश्नर नियुक्त करके 50 रुपये प्रति क्रांतिकारी के हिसाब से 2250 रुपये के ईनाम की घोषणा भी की थी। आज भी यहां के क्रांतिकारियों की ऐसी घटनाएं हैं, जो उजागर नहीं हुई हैं।

मलेरकोटला के साका (शहीदी घटना) में 17 व 18 जनवरी, 1872 ई. में भी रियासत जीन्द के कई नामधारी सिहों (सिक्खों) ने तोप के सामने छाती तान कर गर्व से अपनी जान निछावर की है। प्राप्त रिकार्ड के अनुसार 92 शहीदों में से 7 लोग जीन्द स्टेट के निवासी थे। केवल नामधारी समुदाय ही नहीं अपितु पूरे राष्ट्र को ही इन शहीदों पर गर्व रहेगा।

रजवाड़ों की संघर्ष–गाथाओं में जीन्द, नाभा व पटियाला बिलकुल अलग पंक्ति में खड़े हैं। परन्तु, जन–आन्दोलन ने जिस तीव्र गति से लक्ष्य प्राप्त किया, वह अपने आपमें विस्मरणीय है। सन् 1857 की जनक्रांति की

विफलता के बाद, वहां के जनमानस ने रजवाड़ाशाही व दोहरी गुलामी को अपने पर कलंक माना। लोहारु का गोली कांड और जीन्द, नारनौल व बावल की संघर्ष गाथा राष्ट्र के गौरव का तिलक है। भारत के बाहर लड़े स्वाधीनता संग्राम में हरियाणावासियों की सुभाष चन्द्र बोस की आजाद हिन्द फौज (आई.एन.ए.) में हरियाणा के 2317 अफसरों व सैनिकों में से 349 सैनिक जीन्द के भी थे। ब्रिटिश सेना में भर्ती जवानों को जापानियों द्वारा कैद कर लिये जाने पर सुभाष चन्द्र बोस व जापानी शासकों की सन्धि हो जाने पर वे सभी अंग्रेजों के विरुद्ध समरांगण में आ डटे। इन 53 अफसरों व 296 सेनिकों ने जीन्द स्टेट के नाम का गौरव बढ़ाया है। इस युद्ध में काम आये 55 सैनिक व अफसरों में से इन्द्राज लैफ्टिनैंट गांव निमरायती, कन्हीराम सिपाही गांव किला जफरगढ़, गंगा सहाय मिदारीवाला गुरिल्ला सिपाही, चन्दगी राम, गोपी राम हवलदार, जीत सिंह सिपाही गांव अलेवा, दयानन्द लांसनायक गांव ढांसा सभी वीरगति को प्राप्त (के नाम) विशेष स्मरणीय हैं।

स्वतंत्रता आन्दोलन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अद्वितीय कार्य किया। परन्तु, उसका कार्यक्षेत्र अंग्रेज अधिकृत भारत ही रहा। इसका सीधा सा अर्थ है कि देश का 35 प्रतिशत तथा जनसंख्या का 20 प्रतिशत भाग ही सीधा उसके सम्पर्क में आता था और समस्त भारत की जनता कांग्रेस द्वारा किये गये कार्यों से प्रभावित थी। देशी रियासतों के लोग कांग्रेस जैसी किसी संस्था की कमी अनुभव कर रहे थे। सो, यहां के लोग उत्तरदायी सरकार व अन्य सुधारों की मांग के लिये संगठित होने लगे। वह अपने संगठन को 'प्रजामण्डल' या 'प्रजापरिषद' का नाम देकर, सन् 1927 में बम्बई में प्रथम अधिवेशन आयोजित करने में सफल हुए।

जैसे कि पहले बताया गया है कि दोहरी गुलामी देशी रियासतों के लिये अभिशाप तो था ही, इसके अतिरिक्त वहां प्रगति, विकास, लोक–कल्याण आदि का नामो–निशान तक नहीं था। अंग्रेजों की दया पर बैठे राजा अंग्रेज भक्ति के अतिरिक्त दूसरा राग नहीं जानते थे। वह प्रजा को मानव–अधिकारों जैसी सुविधाओं से वंचित करने में अपना गौरव तथा अंग्रेजों से सुरक्षा समझते थे। वह प्रजा द्वारा की गई करबद्ध प्रार्थना को भी

विद्रोह की संज्ञा दे देते थे। इनके पास सैन्य शक्ति कम तथा प्रशासनिक क्षमता नगण्य होने पर भी कठोरता अधिक थी। अंग्रेज संरक्षण होने के कारण इन शासकों के पास सेना तथा पुलिस कम ही थी, बल्कि सुरक्षा राशि सेना व पुलिस सेवा की बजाय व्यक्तिगत खर्चों में अधिक की जाती थी।

उस समय के देशी शासक वह चांद नहीं थे, जो सूर्य से प्रकाश लेकर जनता का मार्ग दर्शन कर शीतलता प्रदान करें। वे तो केवल वह आकाश–उल्काएं थी, जो केवल उत्पात ही पैदा कर सकती थी। एकत्रित होने पर इन्हें विद्रोही करार देकर कैद कर लिया जाता था, इनके परिवारों को भी सताया जाता था। राजा का नाम ही दहशत था। जीन्द राज्य में तो निरपराध लोगों को जेल में डालकर छः–छः महीने तक तो पूछा भी नही जाता था कि तुम्हारा अपराध क्या है? सजा कितनी लंबी होगी, इसका कानून नहीं, उनका असंतुलित विवेक ही होता था।

उपरोक्त विषयों को लेकर बम्बई अधिवेशन में गहनता से विचार किया गया। अन्ततः योजनाएं बनाकर देशी रियासतों में 'प्रजामण्डलों' की स्थापना की गई। जीन्द राज्य में प्रजामण्डल की स्थापना सन् 1938 में हंसराज रहबर द्वारा संगरुर में की गई। जब अखिल भारतीय प्रजापरिषद् के सहयोग से आयोजित लुधियाना प्रजामण्डल सम्मेलन में पं. जवाहर लाल नेहरु पधारे तो जलसे में उनके भाषणों से प्रभावित होकर ही यह पग उठाया गया था। शीघ्र ही उसकी शाखाएं राज्य की अन्य निजामतें जीन्द व दादरी में भी स्थापित हो गई। सन् 1857 के बाद यहां के स्वतंत्रता प्रेमियों ने 50 वर्षों से भी कम समय में जनता को जागृत कर दिया। स्वामी रामकृष्ण परमहंस, आर्य समाजी सुधारक स्वामी दयानन्द तथा महात्मा गांधी ने प्रकाश–पुन्ज का कार्य किया; इनके विचारों से लोग शिक्षित होकर जागृत हुए।

प्रजामण्डल का जनक्रांति का अपना गौरवमयी इतिहास है। आरम्भिक काल में इनकी बैठकें अपने राज्य से बाहर ही होती थीं। धीरे–धीरे आत्मसम्मान जागृत होने लगा, भय कम हुआ तो प्रजामण्डल के जलसे–जलूस आदि उनके अपने राज्य में होने लगे। जीन्द में इसके

आरम्भिक जलसे या आयोजन का हाल सुनने के संदर्भ में प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि जलसे के लिये कुछ बांस–बल्लियों की आवश्यकता थी। प्रबंधक बांस विक्रेता के पास गये, तो उन्होंने बांस देने से इन्कार कर दिया, परन्तु कहा कि हम बांस रात्रि को मैदान में फैंक देंगे; सो आप उठा लेना। यह स्पष्ट है कि उन लोगों की सहानुभूति आयोजकों के साथ तो थी, परन्तु वे राजा और पुलिस से भयभीत थे। उपरोक्त यह सब बातें वहां खड़ा थानेदार चांद सिंह सुन रहा था, उसको राजा व अंग्रेजों से घृणा हुई तथा वह गुप्त रुप से प्रजामण्डल का समर्थक व सहायक बन गया।

उपरोक्त घटना के प्रत्यक्षदर्शी थानेदार दुर्गा प्रसाद, सी.आई.डी. सिपाही कुन्दन लाल (पूर्व विधायक) व पं. केशो राम सिपाही सी.आई.डी. (पूर्व मैनेजर, भारत सिनेमा जीन्द) रहे हैं। इन लोगों से मिलने पर पता चला कि इस घटना के प्रभाव से तथा देशप्रेम की भावना से जीन्द स्टेट के मुख्यमंत्री गंगा राम कोला, जंगलात विभागाध्यक्ष हीरासिंह चिनारिया तथा हीराचन्द गौड़ (लजवाना निवासी) जज आदि भी प्रजामण्डल से पूर्ण सहानुभूति रखते थे। निहाल सिंह तक्षक तथा बनारसी दास गुप्ता प्रजामण्डल के प्रमुख संस्थापक रहे।

राष्ट्रीय स्तर पर इस आंदोलन की जान–प्राण पट्टाभिसीतारमैया थे, जो महात्मा गांधी के दायां हाथ कहलाते थे तथा इनकी हार गांधी जी की हार मानी जाती थी। स्वतंत्रता प्राप्ति पर इन्हीं की देखरेख में प्रजामण्डल का विलय कांग्रेस पार्टी में हुआ। पट्टाभिसीतारमैया स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रथम कांग्रेस अध्यक्ष भी रहे।

दादरी निजामत रियासत जीन्द के स्वाधीनता की प्रमुख केन्द्र रही तथा वहां से प्रतिष्ठित लोगों ने भी स्वतंत्रता सेनानियों को काफी सहयोग दिया। रघुनन्दन मिश्र, पं. मसद्दी लाल, ला. फकीरचन्द, मुन्शीराम, ईश्वरचन्द जैन, रिछपाल सिंह छिलेरिया, नन्द किशोर, राम भगत गुप्ता, स्वामी गिरधानन्द तथा रामजीलाल बागला का प्रजामण्डल से गहरा संबंध रहा।

जहां तक देशी राजाओं का संबंध है, जीन्द नरेश रणबीर सिंह ने अन्य राज्यों की अपेक्षा नर्मी से काम लिया। वहां बहुत पहले ही कानून साज़ असैम्बली की मांग स्वतः पूरी कर दी गई थी व अन्य कई सुधारों पर

पूरा ध्यान रखा गया। परन्तु, इनके साधन बहुत सीमित थे। इसके साथ–साथ कर्मचारी के अयोग्य व भ्रष्ट होने से प्रभाव बहुत बुरा रहा, जो कुछ भी हुआ अपर्याप्त था। विशेषकर रीजैंसीकाल में इसका प्रभाव अच्छा नहीं रहा और प्रजामण्डल को संघर्ष करना पड़ा। प्रजामण्डल ने संवैधानिक अधिकारों व अन्य सुधारों के साथ–साथ हिन्दू–मुस्लिम एकता, मेलजोल तथा सामाजिक जागृति के अतिरिक्त कांग्रेस द्वारा चलाये गये सभी आन्दोलनों में भाग लिया और अनेकों बार इनके कार्यकर्त्ताओं ने जेल काटी। श्री जगदीशराय पत्थरवाला को 1932 में जेल भेज दिया गया। जहां से वे रुग्ण अवस्था में मृत प्राय बाहर आये। निहाल सिंह तक्षक को भी राज्य छोड़ने का आदेश हुआ। इस संगठन ने अपने को अखिल भारतीय स्तर पर ले जाने का प्रयास किया तथा राष्ट्रीय स्तर के नेताओं को जीन्द बुलाये जाने की योजना बनाई। अन्य राज्यों के नेताओं का जीन्द आना जाना तो रहता ही था। इसी सन्दर्भ में एकबार ज्ञानी जैल सिंह (पूर्व राष्ट्रपति) को बुलाया गया। इनका जलसा टाऊन हाल के सामने रखा गया (जिसमें पहले से कहीं बांस वाली घटना घटी थी)। इसका सफल आयोजन कांशीराम काला तत्कालीन सचिव ने किया। उनकी सादगी, लग्न व कर्मठता की तस्वीर देखते ही बनती थी। यह केवल लालटेन की रोशनी में ही इधर–उधर जा रहे थे।

इस संगठन ने वर्ष 1944–45 के अकाल में बड़ा ही सराहनीय कार्य किया। जिसके फलस्वरुप यह संगठन लोकप्रिय हो गया। जीन्द प्रशासन ने प्रजामण्डल से निपटने के लिए दफा–46 नाम के कानून का इतना प्रयोग किया कि इस दफा से बच्चा–बच्चा परिचित हो गया। रियासतों के लोग साधन सम्पन्न नहीं थे। अपने कार्यों के लिए वे जलसे–जलूसों के लिए चादर बिछाकर दान लेते थे। इनका सदस्यता शुल्क चार आना प्रतिवर्ष तथा अन्य अवसरों पर दो आने, चार आने के सहयोग के अतिरिक्त आटा, दाल तथा घी आदि मांग लेते थे। यह भी स्मरण है कि उपरोक्त चार आने में एक आना प्रांतीय स्तर पर तथा एक आना केन्द्रीय मुख्यालय को जाता था। परंतु, लोगों को पैसे मांगने की स्थिति विकट रहती थी। दफा–46 का लोगों को आतंक था तथा इसीलिए

लोग भी डर के मारे नहीं देते थे। अकाल के दिनों में लोग जेल जाना उचित समझते थे। क्योंकि, वहां भूखे मरने से दाल–रोटी तो मिल जाती थी। परंतु, समय बदल गया। राजा की दफा–46 का भूत भी लोगों के दिलोदिमाग से उतरने लगा और कुछ दानी देशभक्तों द्वारा इस संस्था को कभी गुप्त तो कभी खुले रुप से वित्तीय सहायता दी जाने लगी। यानी लोगों में बहन सत्यावती, बृजकृष्ण चान्दीवाले व कृष्णा नैयर (मद्रास) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। यह लोग जीन्द में प्रजामण्डल के लिए दिल्ली से पैसे देते थे। फिर, रोझला निवासी धनाराम पांचाल जैसे लोग संस्था के लिए भिखारी बनने के लिए तैयार थे। अभी तक यह पता लगा है कि धनराम पांचाल के घर प्रजामण्डल की रसीदें, उनके परिवारवालों ने नासमझी के कारण, कुछ समय पूर्व ही नष्ट कर दी हैं।

सन् 1946 में जींद सरकार ने विधानसभा की स्थापना और आम निर्वाचन की घोषणा की। परंतु, मतदान के अधिकार सीमित ही रखे गए। प्रजामण्डल ने मतदान का बहिष्कार किया और राज्य पर जोर डाला कि वह हर व्यस्क को मत देने का अधिकार दे। जनआंदोलन का संचालन प्रभाव पूर्ण ढ़ंग से करने के लिए चौधरी हीरा सिंह चिनारिया को प्रधान चुना गया। चुनाव जब बिलकुल सिर पर आ गये तो स्टेट पीपल्ज कांग्रेस ने भी अनुरोध करके चुनाव में भाग लेने का निर्णय किया गया। चुनाव हुआ और दादरी से हीरासिंह चिनारिया तथा बनारसीदास गुप्ता विधान सभा के लिए निर्विरोध चुने गए। उन्हीं दिनों श्री रामकृष्ण गुप्ता लाहौर में स्टुडैटंस कांग्रेस के कार्यकर्त्ता थे।

पहले के लोग बाणिया मण्डल के नाम से भी इसे पुकारते थे। एक पार्टी के अग्रणी मेजर अमीर सिंह तथा दूसरे चौ. दलसिंह रामराय रहे हैं। आगे चलकर इन दोनों का विलय उस समय हुआ जब इस नारे ने जोर पकड़ा ”रियासत जीन्द को तोड़ेंगे शेष को भारत से जोड़ेंगे” व जागो भारतवासियो, तुम शेरों की संतान हो। इन नारों को बुलन्द करने में देवी दयालशर्मा, रामस्वरुप और कई लोगों का विशेष योगदान रहा। कुछ समय बाद वैद्य देवीदयाल शर्मा कांग्रेस सेवार्थ पुनः दिल्ली चले गए।

प्रजामण्डल की दूसरी भारी मीटिंग संगरुर में हुई, जिसमें प्रस्ताव पारित किया गया कि मंत्री मण्डलीय सरकार में जनप्रतिनिधि भी हों। इसके पक्ष में एक और मीटिंग दादरी में रखी गई जिसमें आशा से अधिक लोग शामिल हुए। इस बड़ी घटना से घबराकर राजा ने वजीरजादा अजायब सिंह को दादरी भेजा। परंतु, प्रजामण्डल ने उससे मिलने के लिए इन्कार कर दिया। पुनः राजा ने विनती रुप में बुलाया तो श्री बनारसीदास गुप्ता, लालाराम व चौ. दलसिंह राजा से मिलने जीन्द गये। इस बीच में जींद स्टेट को स्प्ष्ट बताया गया कि स्टेट का तो विलय ही होगा। आप इसे माने तो ठीक, नहीं माने तो जनआन्दोलन होगा। इस विषय पर किसी गुप्त स्थान पर बैठक हुई और आंदोलन की तिथि भी निश्चित की गई।

एकबार स्टेट के प्रधानमंत्री ने पं. नेहरु से पूछा – ”क्या रियासत जीन्द में समानान्तर सरकार हैं” तो उन्होंने उत्तर दिया – हाँ, मुझे पता चला है कि वहां ऐसी सरकार हैं।” समानान्तर सरकार का राजा महताब सिंह को बनाया गया है जिनके सहयोगी श्योकरण माण्डली तथा महाशय मनसा राम दादरी बने हैं।

जब इस आंदोलन ने पूर्ण जोर पकड़ा तो चौ. भले सिंह, पं. विश्वनाथ, बा. कालूराम को अचानक रात को पकड़ लिया गया और संगरुर जेल भेज दिया गया। श्री बनारसी दास गुप्त, चौ. दल सिंह व वैद्य देवीदयाल शर्मा ने तीन मास तक गांव–गांव घूमकर जनआंदोलन को तेज किया। जिसके प्रभाव से केन्द्र के निर्देश पर सभी रिहा कर दिये गये।

10 नवम्बर, 1946 को श्री हीरा सिंह चिनारिया के सभापतित्व में प्रजामण्डल का एक भारी वार्षिक अधिवेशन दादरी में हुआ। शहर में दफा 144 लागू होने पर भी लगभग 30 हजार लोगों ने इस अधिवेशन में भाग लिया। महाराज से यह प्रस्ताव किया कि राजसत्ता अनुत्तरदायी मंत्रियों के हाथ से लेकर जनता को सौंपी जाये। 16 सदस्यों की एक 'कौंसिल ऑफ एक्सन' बनाई गई, जिसके निर्वाचित डिकटेटर हुये श्री हीरा सिंह चिनारिया। 28 सितम्बर, 1946 को पूरी रियासत में 'डायरेक्टर एक्सन दिवस' मनाया गया। जगह–जगह तिरंगे झंडे लहराये गये और लोगों को असहयोग और नागरिक अवज्ञा करने के लिये प्रेरित किया गया।

26 नवम्बर, 1946 को संगरुर में कौंसिल ऑफ एक्सन की ओर से रियासत को राज्य सरकार ने चौ. लहरी सिंह को मजिस्ट्रेट के अधिकार देकर कौंसिल के सदस्यों को गिरफ्तार करने के लिये भेजा। परन्तु चौ. लहरी सिंह स्वाधीनता सेनानियों को गिरफ्तार न करके, स्वयं भी प्रदर्शन में शामिल हो गये और तिरंगा झंडा अपने हाथ में सम्भाल लिया। राज्य सरकार के दो और प्रतिनिधि श्री शिव कुमार और श्री सागरदत्त शर्मा भी देशभक्तों में आ मिले। राज्य सरकार जनशक्ति का ऐसा विराट रुप देखकर घबरा गई।

17 दिसम्बर, 1946 को स्थिति की गंभीरता को समझते हुये महाराजा ने एक फरमान के द्वारा तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री गंगाराम कोला को रियासत से तुरन्त चले जाने की आज्ञा दी और राज्य का स्थाई विधान बनने तक श्री मोहम्मद सादिक को रियासत का दिवान नियुक्त करके श्री हीरा सिंह चिनारिया तथा श्री निहाल सिंह तक्षक को अपने मंत्रिमण्डल में ले लिया।

अप्रैल, 1947 में ग्वालियर में 'अखिल भारतीय स्टेट्स पीपल्स कांफ्रेस' का अधिवेशन हुआ, जिसमें श्री हीरा सिंह चिनारिया, निहाल सिंह तक्षक, बनारसीदास गुप्त तथा श्री महताब सिंह सम्मिलित हुये। सन् 1947 के मध्य में जीन्द राज्य ने भारत की 'संविधान सभा' में शामिल होने की घोषणा कर दी, जिसका राज्य प्रजामण्डल ने स्वागत किया और यह आशा व्यक्त की कि शीघ्र ही जीन्द राज्य में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की जायेगी। 15 अगस्त, 1947 को राष्ट्र स्वाधीन हुआ और बड़े रजवावड़ों में उत्तरदायी सरकार स्थापित होने की घोषणा हुई; परन्तु रियासत जीन्द में तब तक ऐसे पग नहीं उठाये गये।

10 फरवरी, 1948 में जीन्द प्रजामण्डल की ओर से घोषणा की गई कि अब महाराजा का 'वैज्ञानिक शासक' स्वीकार नहीं किया जायेगा। भारत सरकार से प्रस्ताव किया गया कि रियासत को तोड़कर हिसार जिले में सम्मिलित किया जाये। इस अवसर पर हजारों लोगों ने एकत्रित होकर महाराजा के विरुद्ध नारे लगाये –"रियासत को तोड़ेंगे, हिसार में जोड़ेंगे।"

21 फरवरी, 1948 को श्री निहाल सिंह तक्षक और 24 फरवरी को मेज़र अमीर सिंह तथा लहरी सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। इससे

स्थिति और विस्फोटक हो गई। दादरी के ऐतिहासिक दुर्ग को 26 हजार लोगों ने घेर लिया।

25 फरवरी, 1948 का दिन जीन्द राज्य के पतन का ऐतिहासिक महत्व रखता है, जब विराट समुदाय ने श्री महताब सिंह को अपना राजा और रामकृष्ण गुप्त को दादरी का नाजिम (डिप्टी कमीशन) नियुक्त कर समानान्तर सरकार की घोषणा कर दी और गुलामी का जुआ फैंक डाला। आजाद हिन्द फौज के मेजर राजा राम को दादरी का कोतवाल बनाकर, सभी सरकारी भवनों पर कब्जा कर लिया गया। उधर, बाढड़ा थाने को वहां के लोगों ने घेर लिया। थानेदार ने हथियार डाल दिये और इस तरह इस समीपवर्ती क्षेत्र में रजवाड़ाशाही के चिन्ह मिट गये।

यह ऐतिहासिक अहिंसात्मक आन्दोलन 15 दिन चला गया तथा रियासत के नाजिम को अपनी गिरफ्तारी का भय हो गया और उसने रियासत से सुरक्षा मांगी। ऐसी विस्फोटक स्थिति में राज्य का शासक वर्ग घबरा गया और रियासत के मुख्यमंत्री, सरदार बल्लभभाई पटेल से जाकर मिले। सरदार बल्लभभाई पटेल के विलय के प्रस्ताव को महाराजा जीन्द और स्टेट के मुख्यमंत्री ने तुरन्त मान लिया। यह सब होने पर डॉक्टर पट्टाभिसीतारमैया और चौ. रणबीर सिंह संवैधानिक सभा के सदस्य मुख्यमंत्री को साथ लेकर दादरी आये और विराट जनसमुदाय के सामने जीन्द राज्य के विलय की घोषणा की।

25 मई, 1948 को रियासत जीन्द का पैप्सू में विलय कर दिये जाने के समझौते पर हस्ताक्षर हुये। इस तरह यहां के स्वाधीनता सेनानियों और स्वाभिमानी जनता के संगठित प्रयासों से पराधीनता सदा के लिये एक बीते युग की गाथा बन गई।

सहायक पुस्तकों की सूची –

– स्वाधीनता संग्राम और हरियाणा, देवीशंकर प्रभाकर, उमेश प्रकाशन, दिल्ली।

– देसी–रियासतों में स्वाधीनता संग्राम का इतिहास, राजेन्द्र लाल हांडा, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज (प्रा.लि.) दिल्ली।

- गजेटियर ऑफ इण्डया हरियाणा, जीन्द, जीतराम रंगा (सम्पादक), हरियाणा गजेटियरस ऑरगेनाईजेशन, चण्डीगढ़।
- फ्रीडम मूवमेंट इन हरियाणा एण्ड कांग्रेस, प्रद्युमन सिंह – एस.पी. शुक्ला, हरियाणा प्रदेश कांग्रेस कमेटी, चण्डीगढ़।
- मेरे सात जन्म भाग 2–3, हंसराज रहबर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- हरियाणा का इतिहास, डॉ. कृपाल चन्द्र यादव, एस.प्रमोद एण्ड कम्पनी, जालन्धर।
- हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति भाग 1–2 के.सी. यादव, मनोहर पब्लिशर्जस एंड डिस्ट्री, नई दिल्ली।
- हरियाणा के स्वातंत्रता सेनानी,श्रीराम शर्मा,हरियाणा स्वतंत्रता सेनानी समिति, रोहतक।
- स्वतंत्रता संग्राम में जिला रोहतक का योगदान, राम सिंह जाखड़, जिला स्वतंत्रता संग्राम सैनिक समिति, रोहतक।
- सतिगुरु बिलास, भाग पहला (पंजाबी) सम्पादक जसविन्द्र सिंह, नामधारी दरबार, श्री भैणी साहिब, लुधियाना।

हरियाणा में 1857

–डॉ0 महेन्द्र सिंह,

इतिहास विभाग, दयानन्द पी0जी0 कॉलेज, हिसार

भारतीय इतिहास में 1857 महज एक घटना नहीं है बल्कि भारतीय सांस्कृति विरासत, जीवन मूल्यों तथा ब्रिटश औपनिवेशिक व्यवस्था के तंत्र को समझने का एक महत्वपूर्ण आधार भी है। 1857 ई. के जन विद्रोह के विभिन्न पक्षों एवं आयामों को समझने के लिए भारत में तथा बाहर बड़े स्तर पर लेखन कार्य हुआ है। इसके बाद भी अभी बहुत से विषय, क्षेत्र व आयाम ऐसे हैं जहां पर्याप्त शोध नहीं हुआ है। वर्तमान हरियाणा के बारे में भी यही कहा जा सकता है। 1857 ई. में दिल्ली इस क्षेत्र का हिस्सा एवं जिला थी। यह अंग्रेजों के लिए बेहद महत्वपूर्ण भी थी। अतः दिल्ली नियन्त्रण करने के लिए अंग्रेजों का सर्वाधिक संघर्ष वर्तमान हरियाणा के क्षेत्र में हुआ। इस शोध पत्र में इस जन विद्रोह के विभिन्न पक्षों को हरियाणा के संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया है।

1857 ई. की इस घटना में हरियाणा क्षेत्र की भूमिका काफी अधिक है। हरियाणा का क्षेत्र अंग्रेजी साम्राज्य का हिस्सा मराठा नेता दोलत राव सिन्धिया की पराजय के बाद 30 दिसम्बर 1803 ई. को सर्जी अर्जन गांव की सन्धि के तहत बना।[1] 1803 ई. से 1857 ई. तक हरियाणा क्षेत्र की रियासते रानिया (सन् 1818), अम्बाला (सन् 1824), बबैल (सन् 1838), कैथल (सन् 1843), चल्लौदी (सन् 1844), लाडवा (सन् 1845) व हल्लार (सन् 1850) अंग्रेजो द्वारा पूर्णरूप से अंग्रेजी साम्राज्य में मिला दी। जबकि रिवाड़ी, फरूखनगर व बल्लभगढ़ (सन् 1805) व छछरोली (सन् 1818) रियासत के अधिकतर हिस्से को अंग्रेजों ने हड़प लिया। 1857 ई0 में जन–विद्रोह के प्रारम्भ होने के इस समय यह क्षेत्र अम्बाला, थानेश्वर, पानीपत, हिसार, दिल्ली, रोहतक व गुड़गांव के नाम से 7 जिलों में विभाजित था।[2] इनमें से अम्बाला व थानेश्वर जिले पंजाब प्रान्त का हिस्सा थे जबकि अन्य पांच जिले आगरा प्रान्त में दिल्ली डिवीजन के हिस्सा थे। इस समय यहां बहादुरगढ़, बल्लभगढ़, दूजाना, फरूखनगर, झज्जर,

लौहारू, पटोदी, बुड़िया, छछरोली, जीन्द, करनाल, फिरोजपुर झिरका व कुन्जपुरा प्रमुख रियासते थी।[3] ये रियासते कहने को स्वतन्त्र थी परन्तु वास्तव में ये अंग्रेजी व्यवस्था के प्रभाव में थी।

1803 ई0 में यह क्षेत्र बंगाल प्रान्त मे जोड़ा गया, तत्पश्चात 1833 ई0 के चार्टर द्वारा आगरा प्रान्त के बनने के उपरान्त यह क्षेत्र इस नए प्रान्त का हिस्सा बन गया।[4] अंग्रेजी शासन को प्रारम्भ से ही लोग घृणा की नजर से देखते थे। इसलिए अंग्रेजों के विरूद्ध यहां आन्दोलन हुए जिसमें बेरी (झज्जर) के किसानों का विद्रोह (सन् 1823) व मेवो का विद्रोह (सन् 1835) मुख्य थे।[5] मेवो ने तो अपने नेता शम्सुद्दीन के नेतृत्व में, करीम खां मेव के सहयोग से दिल्ली के प्रशासक विलियम फ्रेजर की हत्या कर दी। इसके लिए इन दोनों मेवों को 1835 ई0 में फांसी की सजा दी गई। अंग्रेजों के विरूद्ध असन्तोष का यहां मुख्य कारण उनकी राजनैतिक कार्यप्रणाली, सामाजिक–आर्थिक जीवन में हस्ताक्षेप तथा कर एकत्रित करने के लिए अपनाई गई पद्धति 'महालवाड़ी' थी। जैसे ही भारत के अन्य हिस्सो विशेषकर बंगाल आर्मी में चर्बी वाले कारतूसों के कारण बैरकपुर, मेरठ व दिल्ली में घटनाए घटी, वैसे ही यह क्षेत्र भी अंग्रेजों के विरूद्ध भड़क उठा। इस क्षेत्र के नवाबों, जमीदारों, कृषको, मजदूरों, महिलाओं व बच्चों ने खुल कर इसमें हिस्सा लिया। धर्म, जाति, संप्रदाय, क्षेत्र, धनी–निर्धन किसी भी तरह का भेदभाव आपस में किए बिना वे लड़े तथा अपनी कुर्बानियां दीं। अंग्रेजों व स्थानीय लोगों के बीच यह संघर्ष लगभग 6 महीने तक चला। अंग्रेजों ने इसे बड़ी बर्बरता के साथ कुचल दिया, जिसके घाव आज भी विभिन्न क्षेत्रों में लोगों की जुबान से सुने जा सकते हैं एवं उपलब्ध रिकार्ड में ढूंढे जा सकते हैं।

1. उत्तरी हरियाणा

1857 ई. की घटना के पहले शहीद मंगल पांडेय को 8 अप्रैल 1857 ई. को फांसी दिए जाने के बाद यह समाचार भारत की लगभग सभी छावनियों में पहुंच गया था कि भारतीय सेना में प्रयोग लाई गई बन्दूको में जिन कारतूसों का प्रयोग होता है उनमे गाय व सूअर की चर्बी प्रयोग

होती है तथा अंग्रेज इन कारतूसो का प्रयोग हर कीमत पर चाहते हैं। इससे सैनिकों मे असन्तोष की भावना लगातार बढ़ने लगी, जिसका व्यापक प्रभाव अम्बाला में घटित मार्च व अप्रैल 1857 की घटनाओं में देखा जा सकता है। इन घटनाओं में अधिकतर घटनाएँ आगजनी की थी।[6] यह ध्यान रहे कि अम्बाला छावनी इस क्षेत्र में सबसे बड़ा बन्दूक परीक्षण केन्द्र भी था। यहां सैनिक अंग्रेज विरोधी बात–चीत व कार्यवाही पर लगातार बात करते रहते थे। 5वीं पैदल सेना के सिपाही शाम सिंह ने सिपाहियों की गति–विधियों की जानकारी अम्बाला के डिप्टी कमिश्नर फोरसिथ को दी। इसी तरह की बात मेजर मुर्रे ने बाजार मे सैनिको को आपस में बात करते हुए सुना कि जल्दी ही अंग्रेजो को निशाना बनाया जायेगा व बड़े स्तर का कत्ले आम होगा। अंग्रेजों ने ऊपरी तौर पर यह दिखाने का प्रयास किया कि उन्हे कोई भय नही है लेकिन इस बात की सच्चाई जानने के लिए पुलिस जांच को जरूरी कहा गया। जनरल एच0 बर्नाड ने पुलिस जांच के आदेश देते हुए स्पष्ट किया कि जनता को इस बारे बताया न जाए, परन्तु ज्वालानाथ कोतवाल फोरसिथ को जानकारी देने वाले शाम सिंह को हिरासत में लेकर हर तरह की सूचना को एकत्र करे। ज्वाला नाथ ने 8 मई 1857 को जनरल एच0 वनार्ड को इस बारे में रिर्पोट दी कि षडयन्त्र गहरा है।[7] ज्वाला नाथ की रिपोर्ट को कमाण्डर – इन – चीफ को भेज दिया गया। परन्तु उसने इसे महत्व नही दिया। दूसरी ओर यहां स्थानीय अंग्रेज अधिकारी सचेत अवश्य हो गये थे। उन्होने छावनी से गुजरने वाले यात्रियों, फकीरों तथा सैनिको की गतिविधियों पर लगातार नजर रखी।

10 मई को प्रातः जब अंग्रेज चर्च में गए हुए थे उस 60 वी रेजीमेंट के सैनिक बैरको को खाली करके एकत्रित हुए तथा उन्होने गोला बारूद पर नियन्त्रण में लेकर यूरोपीय अधिकारियों को बन्दी बना लिया। कुछ देर बाद 5वीं पैदल सेना भी उनके समर्थन में आ गई। अंग्रेजी घुड़सवारों ने उन्हे घेर लिया। इस तरह दोनों ओर से स्थिति काफी विस्फोटक थी। अंग्रेजो ने 5 वीं व 60वी रेजिमेन्ट के सेनिकों को शस्त्रहीन कर दिया।[8] इस बीच कुछ सैनिक वहां से निकलने में सफल हो गए। उन्होने कसौली का

खजाना लूटा, जिसमें उन्हे 12063 रू0 मिले। अंग्रेजों ने आगामी कुछ समय सुरक्षा में गुजरा। जिले के दीवानी अदालत सहित सभी कार्यालय बन्द कर दिए गए तथा वफादारों की लगातार सभाएँ आयोजित की, उन्हे विभिन्न तरह के प्रलोभन दिए गए। अम्बाला में नियमित गतिविधियां 19 मई से प्रारम्भ हो पायी।[9]

1857 ई. के जन–विद्रोह का राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्र दिल्ली था। 11 मई 1857 ई. से लेकर 15 सितम्बर 1857 ई. तक इस पर क्रान्तिकारियों का अधिकार रहा। इस दौरान दिल्ली में सेना के कमांडर इन चीफ बख्त खां के सहयोगी मीर मंशी रजब अली द्वारा बादशाह को सहयोग देने वाले क्षेत्रों व नेताओं की सूची बनाई गई। इससे स्पष्ट किया गया कि दिल्ली से 38वीं, 54वीं व 7वी इन्फेन्ट्री के 300 जवान व 6 तोपे, मथूरा की चौथी कैवलरी के 200 जवान, 44 वीं व 67 वीं नेटिव इन्फेन्ट्री के 100 जवान दिल्ली पहुंचे। इसी सूची के अनुसार हरियाणा क्षेत्र की हांसी से हरियाणा चौथी कैवेलरी के 400, झज्जर से 300, दादरी से 200 तथा बल्लभगढ़ से 100 घुड़सवारों ने दिल्ली की सुरक्षा व विजय प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[10] दिल्ली की सत्ता क्रान्तिकारियों के हाथों में रहने की जानकारी देने वाले विभिन्न दस्तावेज इस बात को स्पष्ट करते हैं कि दिल्ली को सुरक्षित रखने पीछे हरियाणा की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इस विषय पर अंग्रेजी प्रशासन भी इस बात पर जोर देता है कि दिल्ली पर नियन्त्रण करने से पहले इसके तीन मुख्य प्रवेश मार्गो (सोनीपत, पानीपत व करनाल मार्ग, सिरसा, हिसार व रोहतक मार्ग, रिवाड़ी व गुड़गांव मार्ग) पर नियन्त्रण करना जरूरी है। मई, जून व जुलाई 1857 ई. के दिनों में लगातार बरसात होने के कारण यमुना नदी में बाढ़ आई हुई थी जिसके कारण दिल्ली यमुनापार पूर्वी क्षेत्र से कटा हुआ था। इस तरह कूटनीतिक दृष्टि से हरियाणा क्षेत्र को काबु में रखना अंग्रेजो की मजबुरी हो गयी थी, जबकि प्रारम्भ में उन्होने यह क्षेत्र शरण स्थली के रूप में प्रयोग में लिया।

अम्बाला व दिल्ली की घटनाओं के चलते हुए, इनके बीच के क्षेत्र की गतिविधियां बहुत महत्वपूर्ण थी। इस क्षेत्र में थानेश्वर, कैथल, पानीपत

व सोनीपत के खण्ड प्रमुख मुख्य रूप से अति सक्रिय थे।[11] इन क्षेत्रों की घटनांए आपस में भी जुड़ी हुई भी हैं तथा अलग–अलग भी है। जिस समय दिल्ली में क्रान्तिकारियों ने सत्ता स्थापित की तो उस कत्ले आम में पानीपत का न्यायाधीश मैकव्हिरटर भी मारा गया। रिचर्डसन उस समय वहां उप क्लैक्टर था। उसने मोर्चा संभाला व क्षेत्र को शान्त करने की दिशा में कार्य किया। पानीपत में क्रान्तिकारियों की गतिविधियों का केन्द्र बुअली शाह कलन्दर की दरगाह थी। इस भाग में समालखा व नोलथा क्षेत्र के किसानों ने विद्रोह करके सरकार को कर देने से मना कर दिया। यहां बला, असन्ध, जलमाना, उरलाना खुर्द, डाचर, सालवन इत्यादि गावों ने अंग्रेजो के विरूद्ध हथियार उठा लिये।[12] करनाल कुन्जपुरा व जीन्द के शासकों ने खुलकर अंग्रेजो का साथ दिया।[13] अंग्रेज इन शासकों की संयुक्त सेना के साथ भी आसानी से इन क्षेत्रों को नियन्त्रित नही कर पाए। अंग्रेजों ने दमन की नीति अपनाते हुए असन्ध व बला गावं को आग लगा दी तथा अन्य गांवों के लोगों को भयभीत करने के लिए तोपों से गोले बरसाए गए। इस तरह से कलन्दर शाह की पैन्शन 1950 रूपये से घटाकर 1000 रूपये कर दी गई व घरौंडा के तहसीलदार को पानीपत में क्रान्तिकारियों का साथ देने के कारण हटा दिया गया।[14]

थानेश्वर क्षेत्र के क्रान्तिकारियों ने भी अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध खुला विद्रोह किया। अम्बाला के बाद शाहबाद में भी अंग्रेजी शासन को समाप्त कर दिया। थानेश्वर के सहायक आयुक्त लेवियन ने यहां विद्रोहियों के विरूद्ध कार्यवाही की, इसके बाद पीपली, लाडवा व थानेश्वर के नम्बरदार व चौधरी सरकार के विरोधी हो गए। जब पटियाला के शासक के द्वारा इस क्षेत्र पर कार्यवाही की गई तो कैथल व सीवन के कृषकों के साथ मिलकर क्रांतिकारियों ने पटियाला पर आक्रमण कर दिया। इससे पटियाला की सेना को पीछे हटना पड़ा। इसके पश्चात, पूण्डरी, कौल, हाबड़ी, सीवन, पाई के क्षेत्रो ने एकत्रित होकर कैथल पर कब्जा कर लिया।[15] कैथल का मैजिस्ट्रेट शहर छोड़कर चुन्दड़ी के विश्राम गृह में छुप गया। यहां पर फतेहपुर के गिरधर अहलुवालिया के नेव्रृत्व में उसका कत्ल कर दिया गया। थानेश्वर क्षेत्र में 135 लोगों को फांसी

दी गई तथा बाद में 62 को सरकार ने लूटेरा घोषित कर मरवा दिया। कैथल क्षेत्र में दमन चक्र लैफटिनैंट पैरसन ने चलाया। यह क्षेत्र जुलाई 1857 ई. से लेकर अक्तूबर 1857 ई. तक अंग्रेजो के लिए निरन्तर खतरा बना रहा। शान्ति स्थापित होने के बाद इस क्षेत्र से मिले लगभग 7000 हथियारों को सरकार द्वारा अपने कब्जे में लिया गया।

दिल्ली से अम्बाला मार्ग की ओर दिल्ली जिले के अलीपुर, लिबासपुर, कुंडली, मुरथल, खानपुर, हमीद पुर सराय, बहालगढ़, गामड़ी व गोहाना गांव की जनता ने भी अंग्रजों के विरूद्ध बगावत की, दिल्ली पर आक्रमण करने वाली सेना तथा अंग्रेजो को ये निशाना बनाते थे। मेजर हड़सन जिसने दिल्ली पर अधिकार किया लिखता है कि हर तरह की सुरक्षा के चलते हुए भी इन क्षेत्रों से गुजरना खतरे से खाली नही था। लिबासपुर के उदमी राम ने लगभग 25 साथियों की एक टोली बनाई थी,[16] जिसने इस क्षेत्र से गुजरने वाले अंग्रेजों को मारा जबकि उनकी पत्नी व बच्चों को सरंक्षण दिया। राठधाना के रामलाल इत्यादि के धोखे से इनका अभियान कमजोर हुआ। इसमे शामिल होने वालो को अंग्रेजो ने सार्वजनिक रूप से पेड़ो पर फांसी दी एवं रोलर के नीचे कुचल दिया जबकि उदमी राम को पेड़ से बांधकर शरीर में कीले ठोककर तड़पा कर मारा। उदमी राम की प्रशंसा में आज भी इस क्षेत्र में लोक गीत सुने जा सकते है। इसी क्षेत्र की एक अन्य महिला का वर्णन भी हड़सन के 29 जुलाई 1857 ई. के पत्र में होता है, जिसमें उसकी दिल्ली विजय के समय बादली मोर्चे पर वीरता का वर्णन मिलता है। हड़सन ने पत्र में स्पष्ट किया है कि अम्बाला का उपायुक्त फोरसिथ उसकी फांसी की सजा माफ न करे।[17] दिल्ली से अम्बाला तक जी0 टी0 रोड़ व उसके समीपवर्ती क्षेत्रों की गतिविधियों को देखकर यह स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र की जनता अंग्रेजी व्यवस्था से त्रस्त होकर हर तरह से उसे मिटाने के लिए कार्य कर रही थी।

2. दक्षिणी हरियाणा

दक्षिण हरियाणा में उस समय मुख्य रूप से गुड़गांव जिला व कुछ अन्य स्वतन्त्र रियासते थी। दिल्ली की घटनाओं के साथ ही इस क्षेत्र

में विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी। 13 मई 1857 ई. को इस क्षेत्र में दिल्ली से कुछ विद्रोही सैनिक आए तथा उनके साथ स्थानीय जनता शामिल हो गई एवं गुड़गांव पर अधिकार कर लिया। गुड़गांव के जिला मजिस्ट्रेट डब्बलु फोर्ड ने इन्हे बिजवासन गांव के पास रोकने के प्रयास किया परन्तु उसे हार के बाद जान बचाकर भागना पड़ा। क्रान्तिकारियों ने यहां सभी कैदियों को रिहा करवाया तथा खजाने से 7,84,000 रूपए लूट लिए।[18] इसके बाद क्रान्तिकारियों की शक्ति व संख्या में लगातार वृद्धि होती गई। पिनगुआ के सदरूद्दीन के नेतृत्व में मेवों ने अपने को संगठित किया तथा नूंह में अंग्रेज समर्थको को अपना निशाना बना लिया इसमे होडल के रावत जाट, हथिन के राजपूत व सिओली में पठान भी सदरूद्दीन का निशाना बने। धीरे–धीरे पिनगुआ, ताबडू, फिरोजपुर झिरका, सोहना व नूंह के सभी थानों, तहसीलों व राजस्व विभाग के कार्यालयों पर क्रान्तिकारियों ने कब्जा कर लिया।[19]

अंग्रेजो ने इस क्षेत्र की विस्फोटक स्थिति को देखते हुए जयपुर रेजिडेन्सी के मेजर एडन को 7,000 सैनिको व 7 तोपों को देकर भेजा गया। उसने मई 1857 ई. से लेकर 20 सितम्बर 1857 ई. तक लगातार इस क्षेत्र पर कई बार आक्रमण किए परन्तु सफल नही हो सका। उसकी सेना में लगातार लूटमार होती गई। इस सेना के कुछ राजपुत सैनिकों ने ठाकुर शिवनाथ सिंह के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना को निशाना बना लिया। एडन को वापिस जयपुर जाना पड़ा। ऐडन ने अलवर के शासक तथा फिराजपुर झिरका नूंह व दोहा के स्थानीय अंग्रेज प्रस्तों के सहयोग से आक्रमण किया लेकिन वह मेवो को पराजित नही कर सका। इस क्षेत्र मे पठान, जाट, मेव, गुजर व रांघड़ लगातार अपनी तैयारी करते रहे। 20 सितम्बर 1857 ई0 में दिल्ली पर अंग्रेजो के अधिकार के बाद स्थिति में बदलाव आया। अंग्रेज सुरक्षित हो गए जिसके कारण उन्होने आस–पास के क्षेत्र में दमन की नीति अपनाई। 2 अक्तूबर 1857 ई. को जनरल शावर्ज ने 1500 सैनिको, 18 तोपो, 2 बड़ी तोपो सहित आक्रमण किया।[20] यह सेना बल्लभगढ़, फरूख नगर, दादरी व झज्जर पर अधिकार करने में सफल रही लेकिन मेवात अब भी सुलगता रहा। नवम्बर 1857 ई. में लेफिनेंट

रांगटन ने मेवात को निशाना बनाया। उसे बटोरा, रेवासन व कसेड़ा गांव में मुकाबला करना पड़ा। रेवासन में मुकाबला अधिक भयंकर हुआ। यहां लगभग 600 मेव युद्ध भूमि में काम आए। 19 नवम्बर 1857 ई. को कैप्टन डयुमंड ने फिर मेवात पर आक्रमण किया। उसकी सेना में हड़सन हार्स 50, टोहाना हार्स 50 घुड़सवार सेना के तथा कुमायूँ बटालियन के जवान थे। इस सेना ने रूपरका पैचका, मालपुरी, चीली, उतावर कोट, मलुका व झांडसा गांवों को तबाह कर दिया। यहां अति महत्वपूर्ण संघर्ष घासेड़ा व रूपड़का नामक गांव में हुआ। यहां पर 400 मेवाती मारे गए। दूसरी और रायसीना व मुहमदपुर के मेवो ने असिस्टैंट कमिश्नर किलफोर्ड पर आक्रमण किया जहां उसकी बहन मारी गई। बाद में किलफोर्ड ने इन गांवों पर आक्रमण किया, परन्तु वह भी मारा गया। 27 नवम्बर 1857 ई. को मेवो ने सदरूद्दीन के नेतृत्व में पिनगुआ पर आक्रमण किया। उसका मुकाबला कैप्टन रामसे से हुआ। अंग्रेज अधिकारी मैलकम कैप्टन आरचर्ड व रामसे को इस आक्रमण में पीछे हटना पड़ा। परन्तु यह उनकी चाल थी क्योंकि वे मेवो को बाहर निकालना चाहते थे, उसमें उन्हे सफलता मिली तथा यहां सदरूद्दीन का बेटा सहित लगभग 100 मेव मारे गए। इस लड़ाई के बाद मेवों की स्थिति कुछ कमजोर हुई परन्तु अंग्रजो का दमन चक्र तेजी से चला।[21] उन्होने शाहपुर, बल्ली खेड़ा, खेरला चीतौड़ा, भरतपुर, नहीरका, झाड़सा, रवेरी, जलालपुर, देवला, कानूसपुर भौना व बिनौला गांव को लूटमार के बाद आग लगा दी। यहां 235 मेवो को पेड़ो पर लटकाकर फांसी दी गई।

दक्षिण हरियाणा के क्षेत्र में रिवाड़ी की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही। यहां पर क्रान्ति का नेतृत्व राव तुला राम, राव किशन व राव गोपाल देव ने किया। राव तुलाराम इस क्षेत्र का मुखिया था एवं उसका क्षेत्र 1803 ई. में 87 गांवो का था। 1857 ई. तक यह केवल 4 गांवो तक सीमित रह गई। राव तुला राम ने रिवाड़ी, भौरा व शाहजहांपुर के परगनों पर अधिकार कर लिया। उसने रिवाड़ी तहसील के खजाने से 8364 रू0 भी लूटे। इसके बाद उसने रिवाड़ी के पास रामपुरा नामक गांव में एक कच्चे किले का निर्माण करवाया एवं इसमें 18 तोपे तथा अन्य युद्ध सामग्री को रखा। इस किले की सुरक्षा

करने की जिम्मेवारी तुलसी राम को दी। रावतुला राम ने अपने क्षेत्र से कर एकत्रित करके 40,000 रू0 बहादुर शाह जफर के पास भेजे।[22] बहादुरशाह जफर ने उसे रिवाड़ी की जागीर को उपहार के रूप में दे दी।

जितने समय तक दिल्ली पर क्रान्तिकारियों का शासन रहा उतने समय तक अंग्रेजों द्वारा इस क्षेत्र पर कार्यवाही का उद्देश्य दिल्ली पहुंचना था। परन्तु 20 सितम्बर के बाद अंग्रेजो का व्यवहार व दृष्टिकोण दमन व अत्याचार पूर्ण हो गया। 2 अक्तूबर 1857 ई. को ब्रिगेडियर शावर्ज 1500 सैनिक, 18 छोटी तोप व 2 बड़ी तोपो को लेकर दिल्ली से चला। राव तुला राम इस बारे मे जानकारी लेने के उपरान्त आमने–सामने के युद्ध से बचना चाहता था। उसे इस बात का ज्ञान था कि रामपुर के छोटे व कच्चे किले से शावर्ज का मुकाबला नही हो सकता था।[23] उसने इस किले की सुरक्षा का भार तुलसीराम को दिया एवं कुछ सैनिक उसके पास छोड़ दिए। 6 अक्तूबर को शावर्ज ने रामपुरा के किले को कब्जे में लिया। उसे तुलसी व उसके चार साथियों सहित गोला–बारूद, तोप व बन्दूके मिली तो वह चकित रह गया। इसके बाद शावर्ज ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। शावर्ज ने राव तुला राम को संदेश पहुंचाया कि वह विद्रोह का रास्ता छोड़कर, अपनी युद्ध सामग्री सहित समर्पण कर दे तो उसके साथ न्याय संगत व्यवहार किया जाएगा। राव तुला राम ने शावर्ज के इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। शावर्ज ने रिवाड़ी व आस–पास के क्षेत्रों पर लूटमार की तथा एक सप्ताह रूकने के पश्चात, झज्जर व कान्नौड़ के मार्ग से दिल्ली आ गया। राव तुला राम शावर्ज के लोटते ही जोधपुर व जाटुसाना के रांघड़ो से मिलकर रामपुर पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया।

रामपुर व रिवाड़ी पर राव तुलाराम के अधिकार के पश्चात, अंग्रेजो ने लैफ्टिनेंट कर्नल गेरार्ड को इस क्षेत्र पर अधिकार करने के लिए भेजा। वह 10 नवम्बर को दिल्ली से चला व 13 नवम्बर को रिवाड़ी पहुंचा। राव तुलाराम रिवाड़ी छोड़कर कानौड़ होते हुए नारनौल क्षेत्र आ गया। नारनौल में झज्जर का सेनापति समद खान हिसार का मोहम्मद आजम व जौधपुर के कुछ बागी सैनिक उसे मिले। राव मिशन गोपाल भी अपने सहयोगियों

सहित उससे आकर मिल गया। गेरार्ड भी रिवाड़ी से चलकर नारनौल की और बढ़ा। 16 नवम्बर 1857 ई. को नारनौल के पास नसीब पुर नामक स्थान एक महत्वपूर्ण एवं निर्णायक युद्ध हुआ।[24] इस युद्ध में 100 क्रान्तिकारी मारे गए एवं 500 से अधिक घायल हुए जबकि अंग्रेजी फौज के 70 सैनिक मारे गए तथा लैफ्टिनैंट गरेजी, कनेडी, पीयर्स व हैमफ्रैज घायल हुए। राव तुला राम, राम गोपाल देव, अब्बदुस समद खां मोहम्मद आजम यहां से निकलने में सफल रहे जबकि राव किशन गोपाल, राम लाल व समद खान का पुत्र यहां मारे गए। राव किशन गोपाल की शहादत के चर्चे लोक गीतों में बहुत मिलते हैं।

इस क्षेत्र में विद्रोहियों का साथ देने के लिए गुड़गांव के उपायुक्त नसरूल्ला खां को अपदस्थ कर दिया गया, जबकि अंग्रेजो को सहयोग देने वाले मोजा मोहना के खुशहाल, हरदेव तुलसी, नंगला गांव में शालिन व रूपा को सरकार ने इनाम व जागीरे दी। विद्रोह के दौरान क्रान्तिकारियों ने राजस्व विभाग के कलैक्टर कार्यालय को आग लगा दी इसका जुर्माना भरतपुर की रियासत से लिया गया क्योकि उसे इसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी दी गई थी। इस रियासत ने इसके लिए 3000 रूपये कोष में जमा करवाये।

3. मध्य हरियाणा

मध्य हरियाणा के सन्दर्भ में रोहतक व इसके आस–पास के क्षेत्र की गतिविधियों को लिया गया है। यह क्षेत्र दिल्ली के बहुत करीब था एवं मुलतान, फिरोजपुर, हिसार, हांसी क्षेत्र को मार्ग द्वारा दिल्ली को जोड़ता था। इस क्षेत्र में विद्रोह मई 1857 ई. में दिल्ली की घटनाओं के तत्काल बाद प्रारम्भ हो गया था। रोहतक के उपायुक्त लोच ने स्थिति को भांपते हुए अपने जिले के छुट्टी पर आए सभी सैनिको को आदेश दिया कि वे अपनी–अपनी छावनी या कार्यस्थल पर तत्काल रिर्पोट करे, उसने झज्जर के नवाब से सेना की मांग भी की। नवाब ने पहली मांग को महत्व नही दिया लेकिन दूसरी मांग पर 18 मई को कुछ सैनिक व दो तोपे भेज दी। 23 मई 1857 ई. को तफज्जल हुसैन एक सैनिक दस्ते के साथ आया एवं

उसने स्थानीय लोगो को बताया कि बहादुर शाह जफर ने उसे इस क्षेत्र पर शासन करने की जिम्मेदारी दी है। 24 मई को स्थानीय जनता ने तफज्जल हुसैन के नेतृत्व में रोहतक जिला कार्यालय व अन्य सरकारी भवनों पर आक्रमण किया।[25] स्वंय लोच ने उसका मुकाबला किया एवं हार गया। इसके परिणामस्वरूप उपायुक्त रोहतक लोच, तहसीलदार बख्तावर सिंह व थानेदार भूरे खान के नेतृत्व में अधिकतर अग्रेंज रोहतक छोड़कर भाग गए। उन्होने गोहाना में जाकर शरण ली। क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजों के आवास, कचहरी, राजस्व विभाग के कार्यालय को आग लगा दी एवं जेल पर आक्रमण कर कैदियों को रिहा करवा दियाा। रोहतक की गतिविधियों का असर सांपला, महम, मदीना, मान्डोढ़ी व लाखन माजरा में हुआ। इन स्थानों पर रांघड़ो, जाटो, राजपूतो, दस्तकारों, बुनकरो व अन्य किसानों ने अपने–अपने स्थानों से अंग्रेजी शासन को नष्ट कर दिया।[26] हरियाणा लाईट इन्फैन्ट्री तथा चौथे रिसाले के पैदल सैनिक भी क्रान्तिकारियों के साथ मिलकर अपनी भूमिका निभा रहे थे।

28 मई 1857 ई. को उपायुक्त लोच, सेनापति थामस सीटन 60वीं नेटिव पैदल टुकड़ी के साथ रोहतक आया एवं रोहतक पर अधिकार करने में सफल रहा। कचहरी क्षेत्र को अस्थायी छावनी में बदल दिया गया। 31 मई को रोहतक में फिर विद्रोह हो गया। कचहरी को भीड़ ने आग लगा दी व खजाने को लूट लिया गया। लोच एक बार फिर स्थिति को संभालने में असफल रहा, लेकिन स्वंय को अवश्य सुरक्षित रख पाया। 10 जून को 60 वी नेटिव पैदल सैन्य टुकड़ी ने ही विद्रोह कर दिया इसके बाद लोच व अन्य अधिकारियों को एक बार फिर रोहतक छोड़ना पड़ा एवं बहादुरगढ़ में जाकर शरण ली।

8 अगस्त 1857 ई. को बिग्रेडियर जनरल निकल्सन ने रोहतक पर आक्रमण किया एवं क्रान्तिकारियों के रखे हुए बारूद में आग लगी। इसमे 500 से अधिक क्रान्तिकारी मारे गए। अंग्रेजो की रोहतक पर अधिकार करने के नीति यहां शान्ति स्थापित करने तक नही थी बल्कि दिल्ली पर अधिकार करने के लिए फिरोजपुर की सेना व रसद में सुरक्षित रास्ता भी देना था। इसलिए कैप्टन हड़सन को 6 बड़े सैन्य अधिकारियों व 103

सहायकों सहित यहां भेजा। उसके 233 घुड़सवार थे व जीन्द के राजा द्वारा भेजे गए 23 घुड़वार थे। क्रान्तिकारियों ने हडसन का मुकाबला पहले बाबर खान के नेतृत्व में तथा बाद में विरासत अली के नेतृत्व में किया। विरासत अली स्वंय अपने 25 सैनिकों सहित इस संघर्ष में 15 अगस्त 1857 ई. को मारा गया। 17 अगस्त को हड़सन रोहतक पहुचने में सफल रहा।[27] रात को रांघड़ो ने उस पर आक्रमण कर दिया जिसके कारण हड़सन ने अस्थल बोहर को अपना केन्द्र बनाया। क्रान्तिकारियों ने बाबर खान के नेतृत्व अस्थल बोहर पर भी आक्रमण किया तथा छापामार पद्धति अपना कर उसे लगातार दुखी किया। हड़सन ने एक चाल चल कर सेना को पीछे हटने का आदेश दिया जैसे ही यह सेना पीछे हटी क्रान्तिकारी सामने आ गए। हड़सन अपनी योजना में सफल रहा एवं आमने सामने की लड़ाई में सफलता हासिल की। उसने खरखोदा, सांपला, महम व गोहाना का क्षेत्र जीन्द के राजा का दे दिया एवं स्वंय दिल्ली लौट गया। हड़सन के दिल्ली की ओर मुड़ते ही क्रान्तिकारी फिर संगठित हो गये। यहां की स्थानीय खाप पंचायतो ने अपने सैनिक दस्ते बना लिए एवं इस क्षेत्र में अपनी शासन व्यवस्था स्थापित कर ली। सितम्बर में दिल्ली पर अधिकार होने के बाद अंग्रेजो ने इस क्षेत्र को नियन्त्रित करने की जिम्मेवारी फिरोजपुर के उपायुक्त जनरल वान कोर्टलैण्ड को दी।

जनरल वान कोर्टलैण्ड, इस जन–विद्रोह के समय हिसार के किले मे ठहरा हुआ था। उसे हड़सन व निकलसन से रोहतक के बारे में रिपोर्ट मांगी। उसने सांपला, महम, मदीना व खरखौंदा में क्रान्तिकारियों से युद्ध किया।[28] इसके पश्चात रोहतक की कचहरी में रूका तथा उन गांवो व लोगो की सूची बनवाई जो इसमे शामिल थे। कचहरी के पास टीले पर सार्वजनिक रूप से फांसी के फंदे लटकाए गए। वहां पर इस विद्रोह में शामिल लोगो को लाया जाता एवं फांसी दी जाती। इस क्षेत्र के लोगो को इन दृश्यों को देखने के लिए भी मजबूर किया जाता था। विद्रोही गांव के ऊपर जुमार्ने लगाए गए तथा उनसे 63,000 रूपये वसूल किए गए। इसी तरह कई गांवो की जमीनें भी जब्त कर ली गई। दूसरी और जो लोग अंग्रेज समर्थक थे, उन्हे इनाम, जागीर व पुरस्कार दिए। बादली गांव के उदय राम 500 रू0 नकद तथा धूमन गांव का आधा राजस्व आजीवन दिया गया।

इस तरह यह स्पष्ट है कि हरियाणा का यह क्षेत्र भी इस जन विद्रोह में सक्रिय था तथा इस कारण यहां के लोग भी अंग्रेजो की यातना का शिकार बने।

4. पश्चिमी हरियाणा

पश्चिमी हरियाणा में हरियाणा के वर्तमान हिसार, सिरसा, फतेहाबाद व भिवानी के जिले कहे जा सकते हैं। 1857 ई. में यह क्षेत्र मुख्य रूप से हिसार जिले में आता था। इसके अतिरिक्त लोहारू की रियासत इस क्षेत्र में थी। उत्तरी भारत में 1857 ई. की क्रान्ति के विस्फोट के बाद इस क्षेत्र में भी विद्रोह हो गया। शुरूआत में अंग्रेज इसे नियन्त्रित करने मे सफल रहे [29] लेकिन 27 मई 1857 ई. को मुहम्मद आजम के हिसार आने के बाद स्थिति बदली। वह भट्टु का जागीरदार था एवं वह बहादुर शाह जफर का परिचित एवं रिश्तेदार भी था।इस क्षेत्र के लोगो ने उसे अपना नेता स्वीकार कर लिया। उसे हिसार के डिप्टी डिप्टी कैलेक्टर शाहबाज बेग का पूर्ण समर्थन मिला। इस क्षेत्र की प्रत्येक कार्यवाही में उसे रूकुनूदीन मौलवी ने भी हर प्रकार का सहयोग दिया।

29 मई 1857 ई. को प्रातः 11 बजे हांसी की चोदहवी इररेगुलर घुड़सवार सेना ने विद्रोह कर 14 अंग्रेजो को निशाना बनाया।[30] सभी आफिसर स्टेफोर्ड, स्कीनर सहित व अन्य अंग्रेज बीकानेर रियासत के राजगढ़ नाम स्थान पर भाग गए। इसी दिन एक बजे क्रान्तिकारियों ने हिसार पर आक्रमण किया। यहां का जिला कलैक्टर बैडरबर्न, उसकी पत्नी, बच्चा, हैड क्लर्क, तहसीलदार थामसन इत्यादि 15 अंग्रेज यहां मारे गए। क्रान्तिकारियों ने यहां 1,70,000 रू0 लूटे तथा जेल तोड़कर कैदियों को छुड़वाया।[31] हांसी व हिसार की तरह का विस्फोट सिरसा में भी हुआ। यहां से अधिकतर अंग्रेज पटियाला रियासत व फिरोजपुर भाग गए। यहां विद्रोह का नेतृत्व मीर समद खां व उसके चाचा अली गोहर ने किया, क्रान्तिकारियों को यहां 8000 रूपये खजाने से लूट के रूप में मिले।[32] इसके बाद ये क्रान्तिकारी अपने क्षेत्र में अन्य सहयोगियों को साथ लेकर रोहतक होते हुए दिल्ली पहुंचे। इस तरह जून के प्रथम सप्ताह तक ही

इस क्षेत्र में अंग्रेजी शासन समाप्त हो गया था इसे शाहबाज बेग ने अपने हाथ में ले लिया। उसने आस–पास के गांव के लोगों के सहयोग से शासन चलाया।

जनरल वान कोर्टलैण्ड इस क्षेत्र पर अधिकार करने के उद्‌देश्य से 550 सैनिक व 2 तोप लेकर फिरोजपुर से चला [33] उसे मार्ग में 120 कश्मीर के राजा द्वारा भेजे गये सैनिक मिले। दूसरी और सिरसा क्षेत्र के क्रान्तिकारी रानिया के अपदस्य नवाब नूर मुहम्मद खां के नेतृत्व के इकट्ठे हो गए एवं उन्होने कोर्टलैण्ड को सिरसा से बाहर रोकने की योजना बनाई। 17 जून 1857 ई. को ओढ़ा में नवाब नूर मुहम्मद खां के नेतृत्व में युद्ध हुआ,[34] जिसमे 600 क्रान्तिकारी मारे गए। रानिया का नवाब यहां से निकलने में सफल रहा उसे लुधियाना के पास पकड़ा गया एव बाद में फिरोजपुर में फांसी दी गई।[35] ओढ़ा के बाद कोर्टलैण्ड को खैरका, छतरिया व खैरा गांव में युद्ध लड़ने पड़े। इन युद्धो में अंग्रेज अधिकारी हिलार्ड व उसका एक सम्बन्धी भी मारा गया। कोर्ट लैण्ड ने यहां गांव मे लूटमार के बाद आग लगा दी व कत्लेआम करवाया। कुछ को उसने सार्वजनिक फांसी भी दी। 20 जून को कोर्टलैण्ड सिरसा पहुंचा वहां उसे बीकानेर के 800 सैनिक व 2 तोप और मिल गई।[36] कोर्टलैण्ड स्वंय सिरसा में रूका तथा पियर्स को हिसार भेजा। वह स्वंय 17 जुलाई को हिसार पहुंचा। मार्ग में उसे भट्टु, खारा बरवाला, बीघड़, भोड़िया, जांडली, गोरखपुर व अग्रोहा के लोगो से संघर्ष करना पड़ा। उसने हिसार पहुंच कर मुहम्मद आजम की बेगम को बन्दी बना लिया व उसके मकान को आग लगवा दी। वह 2 अगस्त तक यहां अधिकार कर पाया। इसके बाद उसने हांसी पर आक्रमण किया। यहां उसे खरड़ अलीपुर, भाटोल, रोहनात, हाजिमपुर, जमालपुर, पुट्ठी मंगला खां व सुलखनी के लोगो से लड़ना पड़ा।[37]

मोहम्मद आजम को कोर्टलैण्ड की कार्यवाही का पता चला तो वह 1500 घुड़सवार, 500 पैदल व 2 तोपो को लेकर दिल्ली से आया। उसने हिसार पर कब्जा कर लिया। कोर्टलैण्ड ने हिसार में स्थिति को गंभीर देखते हुए और अधिक सेना की मांग की। इसलिए उसे मिल्डवे, लैफ्टीनेंट

हट, बुलैन व हब की सेना सहयोग के लिए दी गई। टोहाना से 50 विशेष घुड़सवार सेना व पंजाब की कुतरमुखी 45 नम्बर रेजिमेन्ट भी उसकी सहायता के लिए आयी।[38]

19 अगस्त 1857 ई. को हरियाणा लाईट इन्फेन्ट्री के सैनिक इरेगुलर कैवलरी के क्रमश 2000 व 400 सिपाहियो ने किले मुख्य दरवाजे पर आक्रमण किया। नागोरी गेट हिसार पर हुए युद्ध मे क्रान्तिकारी हारे लेकिन डोगरा मौहल्ला से फिर एक आक्रमण किया गया। दोपहर बाद एक आक्रमण भादरा गेट (वर्तमान तलाकी गेट) पर हुआ। 19 अगस्त को 300 क्रान्तिकारी किले के गेट पर तथा 180 क्रान्तिकारी नगर में विभिन्न क्षेत्रो मे मारे गए।[39] क्रान्तिकारियों का साथ मिल्डवे की सेना के 28 सैनिको ने भी दिया। हार के पश्चात 133 क्रान्तिकारी पकड़े गए उन्हे भादरा गेट के सामने फांसी दी गई, जबकि कुछ को रोड़ रोलर के नीचे कुचला गया। 25 अगस्त को क्रान्तिकारियों ने तोशाम के तहसील कार्यालय पर आक्रमण कर तहसीलदार नन्दपाल, थानेदार प्यारे लाल, कानूनगो खजान सिंह सहित 80 लोगो को मारा व खजाना लूटा। इसमे नलवा, रतेरा, कालवास व तलवंडी इत्यादि गांवो की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इसके बाद क्रान्तिकारियों मे आमने सामने का युद्ध हुआ जिसमे कोर्टलैण्ड जीता एवं फिर वही रहा। 30 सितम्बर को हांसी के पास जमालपुर में युद्ध हुआ जिसमे कोर्टलैण्ड सफल रहा।[40] उसने इसके बाद दमन चक्र चलाया। हांसी के आस–पास के गांवो के क्रान्तिकारियों को हांसी मे जाकर रोड़ रोलर के नीचे कुचला। पुट्ठी व रोहनात गांव को आग लगवा दी। रोहनात में क्रान्तिकारियों को तोप से बांध कर मरवा दिया। इसमे स्वामी भिरड़ी दास व रूपा खाती मुख्य थे। रोहनात मे 25 महिलाए अपने बच्चो सहित गांवो के बाहर कुए में कूद गई ताकि अंग्रेजो की यातनाओ का शिकार न बनना पड़े। मौहम्मद आजम यहां से निकलकर राव तुलाराम से जा मिला व उसने 16 नवम्बर को नसीबपुर की लड़ाई मे हिस्सा लिया।[41] इसी तरह शाह बाज भी भूमिगत हो गया। बाद में उसे बंदी बना लिया तथा 24 सितम्बर को उसे फांसी दे दी गई।

कोर्ट लैण्ड का दमन चक्र इस क्षेत्र मे इसके बाद कई महिनों तक चलता गया। इस क्षेत्र के बहादुर खान को मृत्यु दण्ड दिया गया जबकि हांसी मे हुक्म चन्द जैन, उसके भतीजे फकीर चन्द, मुर्तजा बेग व मुनीर बेग पर क्रान्तिकारियों का नेतृत्व करने, बहादुर शाह को सहयोग देने व पत्र लिखने के आरोप मे बन्दी बनाया। हुक्म चंद व मुनीर बेग को उनके घर के सामने फांसी दी गई जबकि फकीर चन्द को हिसार में फांसी दी। इन सभी की सम्पत्ति भी अंग्रेजो द्वारा जब्त कर ली। इसी तरह पुट्टी मंगल खां के अधिकतर व रोहनात गांव की सारी जमीन की अंग्रेजो द्वारा नीलाम कर दी गई।

अंग्रेजो द्वारा जीन्द, पटियाला व बीकानेर के राजाओं को सम्मानित किया गया। उन्हे विभिन्न क्षेत्र दिए गए। विभिन्न गांवो के चौकिदार व जागीरदार भी सम्मानित किए गए। भट्टू के एक फकीर को भी विशेष इनाम सरकार द्वारा दिया गया।

5. रियासतो की भूमिका

1857 ई. के जन–विद्रोह मे हरियाणा के विभिन्न क्षेत्रों ने अपनी सक्रियता दिलाई तथा अंग्रेजी शक्ति से लोहा लिया। वही इस क्षेत्र की कुछ रियासतो की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही।

बल्लभगढ़ दिल्ली के अति नजदीक रियासत थी यह इस क्षेत्र की सबसे बड़ी रियासतो मे से थी। क्रान्ति के समय यहां राजा नाहर सिह का शासन था। अंग्रेजो ने दिल्ली की घटना के पश्चात ही नाहर सिंह पर सहयोग के लिए दबाव डाला। नाहर सिंह प्रारम्भ में बचना चाहता था, लेकिन बाद मे उसे सहयोग देना पड़ा। दिल्ली पर बहादुर शाह के सत्ता मे आते ही नाहर सिंह ने उसे सैनिक व धन से हर प्रकार का सहयोग दिया। बहादुर शाह उसके सहयोग से प्रभावित हुआ। दिल्ली पतन के पश्चात शावर्ज ने बल्लभगढ़ पर आक्रमण कर 23 सितम्बर को गिरफ्तार कर लिया। उसे 6 दिसम्बर को लाल किले बंदी बना दिया। उसके बाद मुकद्दमे की औपचारिकता पूर्ण कार्यवाही हुई। 2 जनवरी 1858 को उसे दोषी ठहराकर फांसी की सजा सुना दी गई। 9 जनवरी 1858 दिल्ली के

चांदनी चौक मे उसे फांसी दे दी गई एवं उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई।[42]

बल्लभगढ़ की तरह झज्जर भी दिल्ली की समीपवर्ती रियासत थी। यहां पर नवाब रहमान खान का शासन था। इस नवाब ने बहादुर शाह जफर को 5 लाख रूपये, घुड़सवार व कुछ तोपे दी थी। अंग्रेजो ने उसे बहादुरशाह से दूर रहने के लिए कहा, परन्तु इसे मानने से मना कर दिया। 18 अक्तूबर को कर्नल लारेंस ने कुछ दिनो के लिए वहां डेरा डालकर नवाब पर समर्पण करने के लिए दबाव डाला। अंग्रेजो ने झज्जर नगर, किला व नवाब के निवास पर लूटमार की। 8 दिसम्बर 1857 ई. को दिल्ली के लाल किले मे मुकद्दमे की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। उसे खतरनाक, बागी, देशद्रोही घोषित करते हुए उसे लाल किले के सामने 23 दिसम्बर 1857 ई. को फांसी दे दी।[43] उसकी रियासत के आधे हिस्से पर अंग्रेजो ने कब्जा किया, जबकि आधी पटियाला के राजा को दे दी।

दिल्ली के दक्षिण पश्चिम मे छोटी सी रियासत फरूखनगर भी अंग्रेजो का निशाना थी। यहां के नवाब अहमद अली गुलाम खां पर बहादुर शाह को सहयोग करने जनता को अंग्रेजो के विरूद्ध भड़काने, अंग्रेजो की हत्या करने के आरोप लगाए। 3 नवम्बर 1857 ई. को उसे गिरफ्तार कर लिया गया। शावर्ज की कोर्ट मे उस पर मुकद्दमा चला। उसे 23 जनवरी 1858 ई. को चांदनी चौक की कोतवाली मे फांसी दी गई[44] तथा उसका शव परिजनों को न देकर गढ़े में फेंक दिया गया। उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई।

बहादुरगढ़ रियासत के नवाब बहादुर जंग पर भी 1857 ई. में अंग्रेज विरोधी गतिविधियों के लिए मुकद्दमा चलाया गया। उसकी रियासत का मुख्यालय दादरी था। उस पर आरोप प्रमाणित नही हो सके। फिर भी सरकार ने उसकी रियासत जब्त कर लाहौर भेज दिया गया उसे एक हजार रूपया वार्षिक पैन्शन दी गई।[45]

इन रियासतो के अतिरिक्त नवाब नूर मुहम्मद खां रानिया, राव गोपाल देव, मोहन सिंह, बहादुरखान जैसे क्रान्तिकारियों पर भी सरकार द्वारा मुकद्दमे दर्ज किए गए तथा उनको दोषी ठहराकर यातनाए देकर

मृत्यु दण्ड दिया गया। इन सभी की समपत्ति को भी सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया।

हरियाणा की जनता, जागीरदारो, चौकीदारो, नवाबो, मजदूरो, दस्तकारो ने 1857 ई. की क्रान्ति मे बढ़ चढ़ कर भाग लिया। उन्हे सफलता नही मिल पाई, परन्तु दमन चक्र का शिकार अवश्य होना पड़ा। इस क्षेत्र की क्रान्ति के दमन मे यहां की स्थानीय व पड़ौसी राज्यों की कुछ रियासतो की (जो अंग्रेजो की सहयोगी थी) भूमिका स्वाधीनता विरोधी थी। उत्तरी हरियाणा की क्रान्ति के दमन में पटियाला, नाभा, जीन्द की रियासतों की भूमिकाएं अधिक थीं, जिसके कारण उन्हे सम्मान, उपाधि व क्षेत्र प्राप्त हुये। दक्षिण हरियाणा के दमन मे जयपुर, भरतपुर पटोदी, दुजाना व लोहारू की भूमिका भी अंग्रेज समर्थक व क्रान्ति विरोधी थी।[46] पश्चिमी हरियाणा की क्रान्ति में दमन के बीकानेर व पटियाला, कश्मीर के शासको ने अंग्रेजो का न केवल समर्थन किया बल्कि स्थानीय लोगो पर अत्याचारो मे भी भूमिका निभाई। इनके अतिरिक्त प्रत्येक स्थान पर स्थानीय जागीरदार, चौकीदार, राजस्व विभाग से सम्बन्धित व्यक्तियों ने भी अंग्रेजो को सहयोग दिया। क्रान्ति सम्बन्धित विभिन्न सूचनाएँ अंग्रेजो तक स्थानीय लोगो से ही पहुंचती थी। उन पर नियन्त्रण करने के लिए रास्ते भी यही बताते थे। अंग्रेज समान्यत किसी क्षेत्र से निकलने के बाद तभी आते थे जब स्थानीय स्तर पर शान्ति स्थापित हो जाती थी। क्रान्तिकारियों की सूची बनवाने, पकड़वाने व दण्डित करवाने में भी इसी वर्ग की भूमिका होती थी।

हरियाणा में 1857 ई. की क्रान्ति की विभिन्न घटनाओ के अध्ययन के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि यह क्षेत्र इस सन्दर्भ मे बहुत अधि ाक सक्रिय था। इस क्षेत्र के लोग चाहे वे किसी भी वर्ग, जाति, धर्म व क्षेत्र के हो, उन्होने अंग्रेजी व्यवस्था को उखाड़ फेकने के लिए कार्यवाही की। अंग्रेजो ने इस क्षेत्र में सत्ता स्थापित करने के बाद जिस तरह के कार्य किए तथा व्यवस्था चलाई, वह सभी के लिए हानिकारक थी। हरियाणा का अधि ाकतर क्षेत्र कुछ रियासतों के हिस्से को छोड़कर जब विद्रोह की ज्वाला

में शामिल हो गया तो अंग्रेजो ने इस उद्देश्य से दमन की कठोर नीति का सहारा लिया। पहला क्षेत्र मे शान्ति व्यवस्था को स्थापित करने के लिए तथा दूसरा दिल्ली पर अधिकार करने की नीति के रूप में। यह बात तथ्यों तथा कार्यवाही की नीति से स्पष्ट हो जाती है कि अंग्रेज ने 20 सितम्बर 1857 ई. से पहले रक्षात्मक नीति अपनाई जबकि इसके बाद वे आक्रामक हो गये।

उत्तरी हरियाणा मे अम्बाला इसका शुरूआती केन्द्र अवश्य रहा लेकिन अंग्रेजो की पकड़ मजबूत होने के कारण यहां परिणाम अंग्रेजो के पक्ष मे रहा। परन्तु थानेश्वर, करनाल, पानीपत, कैथल व सोनीपत की घटनाएं लोगो की जागरूकता का उदाहरण है। इसी तरह दक्षिण हरियाणा मे मेवात, गुड़गांव, रिवाड़ी व नारनौल का क्षेत्र भी अंग्रेजो के लिए चुनोति बनकर उभरा। जब–जब भी अंग्रेजो ने इस क्षेत्र को सामान्य ढ़ंग से नियन्त्रित करने का प्रयास किया तो उन्हे बार–बार मुंह की खानी पड़ी। मध्य हरियाणाा व पश्चिमी हरियाणा अंग्रेजो को मुलतान व पंजाब के फिरोजपुर क्षेत्र को जोड़ने वाला था। यहां पर भी लगभग 6 महीने बगावत होती रही है। कभी गांवों लड़ाई का केन्द्र बने तो कभी नगर का क्षेत्र।

अंग्रेजो के लिए यह विद्रोह बेहद चुनौती पूर्ण था। उन्होने परिस्थितियों को अपने वश मे करने के लिए उचित व अनुचित सभी नीतियों का सहारा लिया। इस क्षेत्र की कुछ रियासतों व स्थानीय जनता के सहयोग से क्रान्तिकारियों को नियन्त्रित कर पाये। यह जनक्रांति असफल हो गयी, परन्तु इसकी असफलता भी सफलता का सूचक है क्योकि पहली बार इतने बड़े स्तर का विद्रोह उनके साम्राज्य के अस्तित्व के लिए खतरा बन गया। सम्पूर्ण भारत मे इस जन विद्रोह के दौरान लगभग 1.50 लाख लोग मारे गए, जिसमे से 24000 से कुछ अधिक संख्या इस क्षेत्र की रही। अंग्रेजो द्वारा इस इस क्षेत्र को कमजोर करने के लिए निर्णायक फैसला लेकर इसे आगरा प्रान्त से तोड़कर पंजाब प्रान्त का हिस्सा बना दिया। पंजाब प्रान्त का हिस्सा बनने के बाद भी यहां दमन चक्र चलता गया तथा लोग गलत जानकारी के आधार पर शिकार बनते गये।

सन्दर्भ टिप्पणियां

1. गजेटियर जिला हिसार, लाहौर, 1892, पृष्ठ 40
2. फाईनल रिपोर्ट ऑफ सैंट्रल मैन्ट ऑफ रैवन्यु डिपार्टमैन्ट दिल्ली रेजिडैन्सी रिकार्ड 1882, प्रकाशित 1911, पृष्ठ 152–183
3. उपरोक्त, पृष्ठ 197
4. एडमिनिस्ट्रेटिव रिकार्ड ऑफ दिल्ली रेजीडैन्सी, हिसार डिविजन रिकार्ड खण्ड नं. 1, फाईल नं. 37, दस्तावेज नं. 107
5. सिद्धीक अहमद मेव, 'मेवात एक खोज' श्रृंखला–3, संग्राम 1857, मेवातियों का योगदान, मेवात साहित्य अकादमी, 2006, पृष्ठ 9
6. म्यूटिनी रिकार्ड, खण्ड : 7, भाग–1, लाहौर 1911, पृष्ठ 3–14
7. उपरोक्त, पृष्ठ 13–14
8. उपरोक्त, पृष्ठ 16
9. मोईनुद्दीन हसन ''खदंगे गदर'' अनुवाद अब्दुल हक ''गदर 1857'' आँखों देखा विवरण, दिल्ली 2006, पृष्ठ 88
10. दिल्ली रेजिडैन्सी रिकार्ड, डाकुमैन्टस रैड फोर्ट, खण्ड 7, पृष्ठ 429–32
11. मोईनुद्दीन हसन, पुर्वोवत, पृष्ठ 37
12. म्युटिनी रिकार्ड, खण्ड 7, पृष्ठ 59, 309, 412
13. उपरोक्त, पृष्ठ 52
14. उपरोक्त, पृष्ठ 39–40
15. उपरोक्त, पृष्ठ 47–78
16. मोइनुद्दीन हसन, पृष्ठ 48–49
17. म्यूटिनी रिकार्ड कोर्सपोन्डस, विशेषपत्र 29 जुलाई 1857, राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली नं. 899
18. म्यूटिनी रिकार्ड, खण्ड 7, भाग–2, पृष्ठ 442–52
19. सिद्धीक अहमद मेव, वही, पृष्ठ 36–54
20. उपरोक्त, पृष्ठ 62–76
21. उपरोक्त, पृष्ठ 76–80
22. म्यूटीनी रिकार्ड, वही, पृष्ठ 219–232
23. उपरोक्त, पृष्ठ 239–242
24. उपरोक्त, पृष्ठ 226
25. मोइनुद्दीन हसन, पूर्वोक्त, पृष्ठ 36
26. उपरोक्त, पृष्ठ 36–37
27. म्यूटिनी रिकार्ड, वही, पृष्ठ 78–79
28. उपरोक्त, पृष्ठ 141–146
29. उपरोक्त, पृष्ठ 79
30. उपरोक्त, पृष्ठ 80
31. गजेटियर जिला हिसार, वही, पृष्ठ 41
32. उपरोक्त, पृष्ठ 42
33. चीफ कमिश्नर कार्यालय लाहौर, विशेषपत्र, अगस्त 1, 1857, राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली
34. म्युटिनी रिकार्ड, वही, पृष्ठ 44
35. द ट्रायल ऑफ नूर मुहम्मद खान, राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली नं. 59
36. गजेटियर, जिला हिसार, वही, पृष्ठ 44
37. म्युटिनी रिकार्ड, वही, पृष्ठ 126
38. उपरोक्त, पृष्ठ 435
39. उपरोक्त, पृष्ठ 438
40. गजेटियर जिला हिसार, वही, पृष्ठ 45
41. म्युटिनी रिकार्ड, वही, पृष्ठ 226
42. मोइनुद्दीन हसन, वही, पृष्ठ 20
    म्युटिनी रिकार्ड, वही, पृष्ठ 20
43. म्यूटिनी रिकार्ड, वही, पृष्ठ 370
44. उपरोक्त, पृष्ठ 376
45. उपरोक्त, पृष्ठ 377
46. उपरोक्त, पृष्ठ 378

The Role of Women in the Freedom Movement in India : A Case Study of Haryana

-Dr. Nirmala Kumari
Assistant Professor
Deptt. of History
Govt. College, Dubaldhan (Jhajjar)

The account of Indian history has been enriched by the contribution that many women of eminence have made in various fields of human activity from time to time. Their courageous deeds and notable accomplishments have been well recognised. In the modern period, particularly since the beginning of the struggle for freedom a considerable number of them made remarkable contributions in the prolonged and the unique fight for India's freedom. These women left an indelible mark through their achievements.

The aim of this paper is to assess the role of women in Haryana region during the freedom movement of India from 1919 to 1947. Though the social set-up in the country was dominated by backwardness, orthodoxy, conservatism and traditionalism, at that time, many women came forward and advanced the cause of India's freedom.

Education was the preserve of the chosen and privileged section of the society in the days of the British rule. In the case of women many, social evils like the custom of purdah and early marriage decisively limited their number in the schools. As a result the girls were denied the opportunity of acquiring any worthwhile knowledge of the letters. As a matter of fact, the women education was, during those days, regarded as unnecessary, unorthodox and dangerous[1]

Twentieth century ushered in a new era of political consciousness in this region. The Arya Samaj made a significant impact on its social set-up. It stood for progress and was engaged in building up a strategy to spread knowledge and dispel ignorance.[2]

The first branch of Arya Samaj was set up at Rewari in 1880 and later on at Rohtak, Hissar, Ambala, Karnal and Gurgaon, etc. Further, these were opened in many villages and towns of the region as well.[3] With the object of remodeeing and transforming the society, it paid ample attention to female education. It opened numerous schools for girls, where education was to be imparted in their mother tongue.[4]

The Arya Samaj also created political awakening in the women. Some of the women of Arya Samajist families started participating in the politico-religious meetings of the Samaj.[5] The prominent anong them were Sarla Devi Chaudharani, the wife of Ram Raj Datt, Har Devi, the wife of Lala Roshan Lal of Lahore, Bhag Devi, wife of Lala Duni Chand of Ambala, Chand Bai of Lala Shyam Lal of Hissar and Smt. Purani Devi of Hissar, Luxmi Arya, Chitra Devi, Kasturi Bai of Rohtak etc.[6] Smt. Purani Devi of Hissar toured various districts for advocating Swadeshi.[7]

What is significant to note is that owing to various factors this social awakening movement could not permeate into the common masses. It, remained limited to the educated families wherein the sisters, wives or mothers of activist Arya samajists could get an opportunity to join the national movement as women leaders. And when Gandhian movement came into force the participation of women was further accelerated by its constructive programme which enabled them to organize simultaneously social reform activities at local level. This work was also acceptable in the conservative section of the society as a commendable form of activity.[8] These women, therefore, could play supportive as well as leadership role in the constructive programme without any fear of stepping outside the limits of conventional behaviour. Their involvement in Khadi work and prohibition would not expose them to criticism from their family or their communities. [9]

These aspects of the constructive programme which decisively brought the women into national movement were used as tools in

Haryana as well. One may notice that soon after the Khadi resolution was adopted by All India Congress Session in 1921, its propagation started in Haryana as well. Smt. Mula Devi took a lead role in it with her impressive speeches in Bhiwani area.[10] Similarly Lajwanti did an excellent work in the same context at Hissar. She used to address gatherings of men and women. Her lecturers created a wholesome effect throughout the district of Hissar.[11]

In Ambala, Smt. Bhag Devi wife of Lala Duni Chand who was deeply influenced by Gandhi's speeches started wearing khaddar and changed into a true follower of Gandhi. She also attended the annual session of the Indian National Congress at Ahmedabad in 1921.[12] After the arrest of Lala Duni Chand and Abdul Rashid Khan in 1922, Mrs. Duni Chand and Bibi Amtu Salam (sister of Abdul Rashid Khan) jumped into the fray and devoted their lives for to ongoing struggle.[13]

In January, 1922, the Non-Cooperation Movement commenced at Bhiwani. Smt. Parmeshwari Devi, wife of Chaudhary Ake Singh actively participated in it. Beside highlighting the need and importance of Swadeshi before the women of Bhiwani in a public meetings, she organized a procession.[14]

At Hissar, a large number of women gathered to make the bonfire of foreign clothes a success. Several hundred foreign clothes were consigned to fire by them. Similarly women took a keen interest in bonfire of foreign clothes at Bhiwani and Rohtak.[15] It is significant to note that, Muslim women also participated in the boycott movement at Rohtak.[16] Door to door campaign was launched to make the movement successful. Chand Bai, (a purdah nashin lady) as well as the wife of Lala Shyam Lal Vakil and Mrs. Ram Krishan Bakshi of Hissar, organized spinning classes and spinning competitions. Mrs. Chand Bai, who was an expert in spinning, guided other women.[17] In 1923, she also attended the annual session of the Indian National Congress held at Concanada.[18]

The Swadeshi propaganda was carried out at Bhiwani by organizing processions of volunteers daily alongwith singing national songs while passing through the main bazaars. All this was done with the efforts of Kamla Devi wife of Lala Mela Ram, who was a prominent man of the city. She went around with the women-folk to propagate the Congress activities.[19]

So far as the commitment of women to the Congress movement was concerned, their meetings, processions and propagation of Khaddar continued even after the suspension of the movement. They continued the non-violent programme to stop the sale of foreign cloth by dealers and the use of liquor. These tasks had been specially assigned to them by Mahatma Gandhi, as he felt that women have greater power of persuasion and patience than men.[20] And many a times, it also proved fruitful as has been testified in statement of Mrs. Bhag Devi of Ambala. She recalls that no buyer dared to come near the shops where women picketers were seen. It may further be added that even the shopkeepers used to behave well with folded hands before the women picketers. When faced with a delicate situation, they generally compromised with the situation. Sometimes after shutting the doors of the shops, they placed the keys at the feet of the women picketers.[21] Inspite of all the above discussed cases, the participation of women did not take place at a mass scale. It was mainly confined to those of them whose husbands, brother's and sons had already joined the struggle and were in jail.

As the news of Gandhi's historic march to Dandi on 12th March 1930 for breaking salt law reached Haryana,[22] the Congress women in different towns and villages immediately came forvard to make it success. The salt was manufactured by a group of them at Ambala city under the leadership of Kumari Vidhyawati, daughter of Lala Dunichand, Advocate.[23]

Kasturi Bai, a twelve year old girl, purchased the so-called contraband salt at Rewari for Rs.60 which she had collected through her paltry savings at the rate of two paise a day.[24] The picketing

programme was also carried out side by side. The Congress women also picketed the temples at Ambala Cantt.. They allowed the entry only to those who came wearing khaddar. It proved a successful experiment. Again on the occasion of Janam Ashtami, ladies picketed the temples to prevent the entry of those who were wearing foreign clothes.[25] Women volunteers also picketed the local schools as a protest against the arrest of the Congress leaders at Bombay. They did not allow even the teachers to enter the school compound.[26]

Under the auspices of the Congress, thewomen organized picketing of foreign cloth shops and liquor shops at various places as well. They organized meetings and took out processions and exhorted people to boycott foreign cloth. Kasturi Bai and Durga Devi of Rohtak delivered impressive speeches on 3rd May 1931 in a Conference held at village Nahri (Rohtak) asking people to follow the Congress programme.[27]

At Mokhra (village of Rohtak) a Rural Conference was held on 20th April 1931, where Chitra Devi unfurled the National Flag.[28] In July 1931, she was arrested from Rohtak for making speeches under sections 108 (Criminal Procedure Code) and 53 (Indian Penal Code). She was the first woman of Haryana to be arrested for her political activities.[29] Women picketeers were also active at Bhiwani, Hissar, Ambala and Rohtak. Their participation was higher at Rohtak where 55 womens were registered. Theyhad done a vigorous picketing during the months of January and February 1932.[30] Among the women Satyagrahis of Rohtak district who were imprisonmed in 1930 included Smt. Manni Devi (Deeghal Village), Smt. Dhapo Devi (Rohtak), Smt. Darka Devi (Kanhi village) and Smt. Kasturi Bai (Rohtak).[31]

On the direction of Gandhi, the then Punjab Provincial Congress Committee was transformed into a Supreme Satyagraha Committee on April 5, 1940. It directed all the district Congress committees to follow suit and to enroll satyagrahis.

During the individual Satyagarh, Smt. Kasturi Bai cournted arrest on 18th February 1941 after offering Satyagrah at a public meeting, she was sentenced to 9 months rigorous imprisonment under rule 38 D.I.R. She, had been earlier convicted twice during the Civil Disobedieince Movement (1930-34).[31]

In 1941, women like Smt. Chand Bai, Mrs. Jugal Kishore and Mrs. Madan Gopal sold khadi worth rupees several thousand on the eve of the Khadi National Week.[32] It was also celebrated at Bhiwani, Hissar with great enthusiasm. Everywhere, women took a keen interest in spinning and its disposal as door to door sale in form of khadi.[33] At Hissar, ladies Charkkha competition was organized at a grand scale in which over 200 women took part and prizes were given to the best ten spinners.[34]

The women of Haryana did not lag behind in the Quit India Movement in 1942. At Rohtak, Smt. Kasturi Bai took a leading part in it. She was arrested and sentenced to one years imprisonment but was released before the expiry of her sentence due to her husband's death.[35] Luxmi Arya of Rohtak went underground during the movement. She went from door-to-door to keep the movement alive among the masses.[36] At Bhiwani, Mohini Devi led the movement among women, though she was not arrested. Smt. Chitra Devi who belonged a village of district Hissar was arrested in 1943 for organizing Satyagraha movement at Hissar. Smt. Lilawati Singhal from Sonepat also courted arrest and Smt. Kamla organised meetings and processions at Gurgaon.[37]

Smt. Bhag Devi took a leading part in organizing the movement in the rural areas of district Ambala.[38] The movement, however, slowed down after the celebration of Independence Day on 26 January 1943 and the activities and it was withdrawn in 1944 and Congress women volunteers were then..... to concentrate on maintaining communal harmony.[39]

The above discussin leads to the conclusion that despite the serve economic and political backwared may of Haryana region

during the colonal Period, the women of the region were inspired by Arya Samaj to participate in the freedom struggle. Some of them played inportant roles in various movement that had been launched from time to time.

References and Footnotes

1. Census of India, vol. I, part-I, 1921, p.180.
2. Lala Lajpat Rai, The Arya Samaj (Bombay, 1915), p.179.
3. Yadav K.C., Haryana Ka Itihas, Vol. II, pp.162-64.
4. Home Political File B, Govt. of India Proceedings, February 1908, No.108.
5. Verma Manju, Role of Women in Freedom Movement in Punjab (1919-47), p.3.
6. Home Political File B, Govt. of India Proceedings, February 1908, No.108.
7. Home Department Political Secret No. 48, March 1908.
8. Agnew Vijay; Elite women in Indian Politics, p.36.
9. Ibid.
10. The Tribune, January 18, 1921.
11. Ibid. September 20, 1921.
12. Report of the 36th session of the Indian National Congress held at Ahmadabad in 1921, p.98.
13. Verma Manju; op.cit., p.48.
14. The Tribune, January 7, 1922.
15. Verma Manju; op.cit., p.52.
16. The Tribune, October 2, 4, 6, 7, 15, 18, 1921.
17. Verma Manju; op.cit., p.57.
18. Report of the Indian National Congress held at Concanada, 1923, p.25.
19. The Tribune, January 20, 25, 1922.
20. Verma Manju; op.cit., p.58-59.
21. Ibid.

22. Young India, March 12, 1930, p.190.
23. Home Department Political File, 1941, No. 3/3/41.
24. The Bombay Chronicle, January 8, 1941.
25. Verma Manju; op.cit., p.84.
26. The Tribune, August 7, 1930.
27. Ibid., May 9, 1931.
28. Ibid., April 24, 1931.
29. Ibid., July 25, 1931.
30. Jakhad Ram Singh; Ap Biti Aur Anubhav, p.37.
31. The Tribune, February 20, 1941.
32. The Tribune, April 12, 15 and 16, 1941.
33. Ibid., April 10, 11, 12, 15 and 16, 1941.
34. The Tribune, April 15, 1941.
35. Verma Manju; op.cit., p.139.
36. Ibid., p.140.
37. Ibid., p.141.
38. Home Department (Political) No. 18/1/43 and 18/2/43
39. Verma Manju; op.cit., p.141.

CONTRIBUTION OF HARYANA IN NATIONAL MOVEMENT

-Rakesh Vats
M.A. History, M.Ed., MBA (HR) (PGT History)
D.A.V. Public School, Bahadurgarh

National movement is a glorified aspect of Indian History. Contribution of Haryana in the National movement can not be ignored.Haryana has been considered a place of heaven on the earth. Since Vedic age the people of this region played a vital role in every field. The brave people of Haryana contributed in national movement since 1857 A.D. revolt.

No doubt Haryana was exploited economically,socially and politically by the Britishers. **Haryana people played a prominent role in 1857A.D**. revolt.Major incidents of rebellion in Haryana are——

- The revolt was started from Ambala by 60TH Infantary at 9:00 a.m. on 10TH May 1857 A.D. before Meerut.
- On 13 May , 300 soldiers of Delhi attacked at Gurgaon and 784000₹. looted.
- The battle of Narnaul on 16TH Nov.1857A.D. is remarkable in the History of Haryana. Rao Tularam of Ahirwal fought this battle bravely against the Britisher.
- Brave Ranghara,Jat,Rajput gave leadership to revolt at Rohtak.
- Haryana Light Infantary soldiers gave leadership at Hansi,Hissar and Sirsa.
- Jats of Asandh ,Kaithal,Jalman opposed the Britishers.
- Patiala ,Nabha,Kunjpura,Karnal helped the Britishers during the revolt.

Yet 1857 A.D. revolt prepared the platform for freedom from the British Raj.

After revolution in Feb 1858 A.D. the British govt. removed Haryana from North-West Province and merged it with Punjab.This region was punished due to take part in revolt, no development took place in this region.

Indian National Congress was founded in 1885A.D. by A.O.Hume at Bombay. Lala Murlidhar from Ambala represented Haryana in first session of Congress in total 72 representatives. Since **1885 to 1905** A.D. Congress was headed by moderate and since 1905 to 1919 A.D Congress was headed by extremists. Same scenario was existed in the agitation in Haryana.

Major facts of national movement since 1885 A.D. to 1919A.D. are——

- Lala Murlidhar pointed the issue of foreign goods at Nagpur Congress session 1891 A.D.
- Swadesi and boycott movment ran successfully at Rohtak and Hissar.
- Lala Lajpat Roy motivated people of Hissar against the Britisher .He gave more stress on indigenous goods .He was exiled on 9TH may 1907 to Mayanmar.
- Pt .Deend Dayal Sharma launched news paper named “Harijan” and “Rafia-a-aam from Jhajjar.
- 20000 youth were recruited from Rohtak district by the British Army due to Mahatma Gandhi motivation.
- Home rule movement was started by Anne Besent and B.G.Tilak.In 1917 Pt.Neki Ram Sharma from Bhiwani

was appointed the president of Home rule movement of North India.He was also known as Haryana Kesari.

- Tilak accepted that Pt.Neki Ram Sharma taught him HINDI.
- In 1917 the Deputy Commissioner of Rohtak offered 25 Murraba land to Sh.Neki Ram.He said "I want the whole land of India."
- Neki Ram Sharma Started a weekly magazine "Swadesh" from Bhiwani.
- Strong agitation was seen at Rohtak and Hissar.Jats Strongly opposed this act at Rohtak under the leadership of Ch.Piru singh and Ch.Chhotu Ram.
- Rowllet Act was also opposed in Haryana by Arya Samajist Swami Sardanand .
- On 30th 1919 A.D. day was decided for nation wide strike against this act. Later on date of strike was changed and new date was 6th April.But this message did not reach to Haryana.
- On 11TH Feb. 1919 A.D.under the presidentship of Sardar Jhanda Singh opposed the act in Ambala.
- On 9th April 1919 A.D. Mahatma Gandhi was arrested first time at Palwal railway station in Haryana.
- On 13th April 1919 A.D .Jaliawala bagh massacre was occurred.
- On 14th April 1919 A.D.labourer and workers attacked on railway station against Jaliawala bagh massacre at Bahadurgarh.

- On 20th April in front of Jat high school students cut the wire of telephone at Rohtak .
- Rohtak congress leader Sh. Tek Ram was arrested on 28th April 1919 A.D.

Non-co-operation Movements was started by Mahatma Gandhi in 1920.

- On 4th Sep. 1920 A.D. Non-co-operation movement resolution passed in Calcutta Congress session..
- Sh.Ram Sharma was the president of Rohtak congress committee.
- Ganpat rai,Gokul Chand Nain Sukh of Bhiwani returned the title "Kursi-Nasini-Medal" to the govt.
- Akhe Ram from Hissar returned his badge to the govt.
- The student Union President of Law college Lahore Pt.Molli Chand left the college with many students .He was the native of Jhajjar.
- The students of the Gaur High School and Jat High School left school and took part in ant-British activities.
- On 8th Oct 1920 , a great procession was organized by Mahatma Gandhi with Ali brothers at Rohtak Ram leela ground .
- Under the presidentship of Murlidhar from Ambala a rally was organized at Bhiwani with Mahatma Gandhi.

- Pt. Shri Ram Sharma started a newspaper named "Haryana Tilak" on 18TH March 1923 from Rohtak.
- At Bahadurgarh the movement was headed by a school student Ramchander
- On 8th Nov. under the presedentship Rambaz dutt Lahore congress leader with Lala Lajpat roy put the programme of the movement.Kissan leader Ch.Chhotu Ram opposed the movement , conflict arose and Sh.Neki Ram was hurt at Rohtak .
- Mahtma Gandhi laid the foundation stone of National vaish high school at Bhiwani on 17TH Feb 1921 A.D.
- 7000 muslim opposed foreign clothes at Hansi for the sake of Mahatma Gandhi.
- Gandhiji addressed 30,000 people at Bhiwani on 15th Feb 1921.
- On 16th Feb 1921 Gandhi ji addressed 25000 farmers at Rothak with the help of Sh Neki Ram,Sh Ram sharma,Master Baldev singh.

Civil Disobedience Movement was started by Mahatma Gandhi by Dandi yatra (12th March to 6th April) 1930 AD.

- On 30th March 1930 , SC/ST of the village Pudimangla distt Hissar decided not to work for those who would be against Congress.
- On 10th April 1930 salt was made from a well water in the temple of mohalla Kallanla at Rohtak.

- On 15TH April 1930 the people of Jahidpur village Jhajjar opposed the govt. to make salt from a well..
- On 20th April a 12 years girl named Kasturibai bought a packet of salt with 60 in the auction of salt at Rewari .
- Shahbad D.A.V.students agitated during this movement.
- On 21th April Neki Ram made salt at Hissar.
- Dunichand and his daughter Vidhawati and khan Abdul made salt at Ambala.
- Sh.Ram Sharma, Ch.Chandgi Ram organized the people at Rohtak.

Due to Gandhi –Irwin pact all the struggler freed and Gandhi ji was persuaded by the Britisher to take part in 2nd round table conference in London. On 17TH Octo.1940 Gandhiji started individual Satyagrah and Sh.Vinobha Bhave was chosen first Satyagrahi.

- Sh.Gopichand, Sh. Neki Ram , Sh.Devilal, Sh.Sahib Ram actively participated in individual Satyagraha.
- Sh.Shri ram and Sh.Mangali Ram sent jail during this time.

Quit India Movement resolution was passed in July 1942 A.D. at Wardha after the failureness of the Cripps Mission.. The resolution was implemented on 8th Aug next day 9th Aug. all the leadrers of congress along with Gandhi ji were arrested. Major incidents of Haryana during that period are—

- On 14th Aug Pt.Neki Ram was sent to Hissar Jail.
- On 23th Aug.Sh Ram Sharma ,MangeRam Vats ,Bharat Singh,khair mohammad,Munni bai,Luxmi devi were sent to Rohtak jail.
- Ch.Devilal ,Sahib Ram,Jati Puranchand sent to Hissar Jail.
- People of Haryana were full of motivation to achieve complete swaraj.

This was the last and final mass movement of Gandhiji.

Indian National Army was founded by Rasbihari Bose in 1941 AD.Sh.Subhash chander Bose gave a organized shape it in 1943 A.D. Major facts of INA with reference of Haryana which are—

- There were 2715 soldiers and officers in INA from Haryana.
- 22 Officers and 324 soldiers were killed from Haryana.
- Conel Ram Swaroop of village kosli was the incharge of Intelligence department.
- Mundsa village native Dilsukh man was the quarter master general in INA.
- Ran singh of village Dandlan was the chief of the second battalion of INA.
- Subhash Chander Bose gave the title "Sher-a-Hind" to captain Kanwal Singh of Mandauthi and captain Preet Singh Dakla of Sonipat.
- In 1943 AD Captain Kanwal Singh came from Germany to Singapur along with S.C.Bose.

- Sh.Mehar Singh of village Sisana was the driver of S.C.Bose in Japan and Burma.

Prazamandal Movement was such a movement to integrate the movement in Riysats.All India State People Conference was organized in 1927, but it worked rapidly during second world war. Major facts of movement of Riyasats of Haryana are:—

- **Pataudi**-In 1940 Iftkar Ali khan was the Nawab of this Riyasat.
- He was an Internatiional Cricketer.
- People of Riysat were facing very critical problems due to high land tax, no facilities were provided by Nawab.
- The Prazamandal movement was organized by Molana-Nur-Uddin in June 1939 AD.
- Babudayal sharma was first person who raised voice against Nawab.
- **Dujana-** In 1945 Rao Devkaran started the movement against Nawab Iktdar Ali Khar. There were same problem like Dujana.
- Pt. Hariram and Tarachand prepared mass movement there.
- **Loharu-** Mirza Ajijuddin Ahmad Khan was the Nawab of the Riysat.
- There was main issue of freedom to religion.
- Nawab wanted to convert all the follower of different religion into Muslims.

- Neki Ram, Nathu Ram,The Baghwant Singh,Ganga sahay played an important role to agitate against the Nawab.
- **Jind/Patiala/Nabha**-These Riyasat had been in favour of the Britisher since 1857 reolt but common people raised their voice time to time not only against Nawab but also against the Britisher.
- Ranbir was the king of Jind, Yadvendra of Patiala and Pratap Singh was the kind of Nabha Riyasat.
- Banarasi Dass gupta & Nihal Singh gave shape to the movement at Jind.
- Sh.Ramkisan & Sh Matadin raised the voice against Nawab of Patiala.
- Sh.Madho singh & Mathura Prasad motivated the people towards the movement.

Role of Arya Samaj to increase national feeling in Haryana.

To create a healthy and free from orthodox society Swami Dayanand Sarswati founded Arya Samaj on 10th April 1875 in Bombay. Major facts of Arya Samaj special reference to Haryana are—

- Swami Dayanad visited Rewari and established a branch of Arya Samaj in 1880 AD.
- Lala Lajpat Roy was major Arya samaji activists of Haryana.
- He started DAV School in 1886AD with Sh.Hansraj

- Major personalities of Haryana who contributed in Arya Samaj—Swami Shardanand, Ch.Piru Mal, Ch.Matu Ram of Rohtak,Pt.Basti Ram of Sultangarhi Jhajjar,Rav Yudhister of Rewari.

- To spread Arya Samaj in rural area of Hissar and Rohtak credit goes to Dr. Ramji lal Jat from village Sanghi
- There were suitable condition for Arya samaj in Haryana like-

1. To be pure vegetarian of native of Haryana.
2. Composition of Vedas was occurred at the land of Haryana.
3. They have been giving a secred position to "cow"
4. Gita updesh was delivered by Lord Krishna in Haryana.
5. Different cast, religion but there was a single occupation cultivation.
6. Favourable teaching of Arya Samaj

Arya samaj was considered a political party by the Britisher ,so the British govt.took many steps against Arya Samaj. The commissioner of Rohtak stopped the "Nagar Kirtan" procession of Arya Samaj to see the out comes of this procession.

Contribution of Sh.Matu Ram in National movement

Sh.Matu Ram was a great freedom fighter of Haryana from village Sanghi district Rohtak.The major facts about Sh.Matu Ram are—

- He was a great Arya Samaji activist , he worked with Lala Lajpat Rai,Ch.Piru Singh at Rohtak for Arya Samaj.
- Sh. Matu Ram played a role to promote Swadeshi movement and gave more emphasis on indigenous goods at Rohtak.
- He and Master Baldev Singh of Jat school were famous leader of congress after leaving congress by Ch.Chhotu Ram in 1920AD.
- He had been a social worker .He lodged an election plea against Sh.Lal chand due to malpractices in election, as a result Lalchand had to leave the post.

Contribution of Sh.Ranbir Singh in National movement

Ch. Ranbir Singh was born on 26th Nov.1914 AD in the house of Sh.Matu Ram at Sanghi Village of Rohtak.He got his initially education at his village school and later at the Gurukul Bhainswal Kalan near Gohana ran by Sh.Bhagat Phool Singh Arya Samaji.He Graduated from Delhi' Ramjas college in 1937 AD. Some land mark facts about Sh.Ranbir Hooda are—

- He was a great Arya Samaji activist.
- He played a major role in development of Bhakhara Nangal Power Project as then irrigation minister of joint Punjab.
- He closely associated with Gandhiji ,he organized rally at Rohtak.He joined Gandhian in 1930 AD.
- Indian National Congress sent him to Constitution Assembly in July 1947AD and he worked actively in the framing of Indian Constitution.

- He was a member of Provisional Parliament (1950-1952 AD)
- He was elected for first Loksabha (1952-57 AD) and for Punjab Assembly(1962-66AD)
- He was elected for Haryana Assembly (1966-72 AD) and also elected to Rajya Sabha in 1972 AD.
- Sh.Ranbir Singh founded primary school at village Munger and Polangi .
- He started a weekly named "Hindi Haryana"
- He was arrested 8 times, first time he was arrested in 1941 AD for one year.He spent total three and half year in jail and under house arrest for two years.He went to different jail at Rohtak,Hissar,Ambala,Lahore and Sialkot.
- He was the founder secretary of "Bharat Krishak Samaj"
- He had been the president of "Freedom Fighter Association Of India" at last phase of his life.

Kurukshetra University conferred the title D'Lit to Sh.Ranbir Singh Hooda on 26th Nov.2007 AD. He died on 1 Feb 2009 AD.
Thus we can say that the people of Haryana played and will be playing a very crucial role in making a strong nation.

बल्लभगढ़ के राजा नाहर सिंह का

स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदन

सुरेश देशवाल

सन् 1857 का स्वतंत्रता संग्राम वास्तव में ग्रामीण पृष्ठभूमि से उठी जनक्रान्ति था। तत्कालीन हरियाणा में इसकी बागडोर बल्लभगढ़ नरेश नाहर सिंह के हाथों में थी। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में प्रभुत्व जमाकर अत्याचारी व निर्दयी नीति से कृषि क्षेत्र पर भारी टैक्स लादकर स्थिति बड़ी विस्फोटक बना दी थी। 19वीं सदी के शुरू में इस कम्पनी ने जब उत्तरी भारत में अपना प्रभुत्व बढ़ाया तो यहां के मेहनती किसान से राजस्व कर की मांग बढ़ा दी तथा इसे वसूलने का ढ़ंग ज्यादा आक्रमक कर दिया। इस प्रकार की कंपनी की गतिविधियों की खबर किसान नरेश को देते रहते थे। कुछ मेव चौधरियों को जो नगीना के पास रहने वाले थे, पकड़कर ले गए। मेवों की पंचायत ने राज नाहर सिंह का ध्यान इस ओर दिलाया। दूसरी तरफ तेवतिया पाल के चौधरी भी नरेश से आकर मिले और अंग्रेजों के प्रति अपना असंतोष व्यक्त किया। सन् 1856 में गंगा–घग्गर के बीच के पूरे क्षेत्र की एक प्रतिनिधि सभा सर्वखाप पंचायत की बैठक दिल्ली के अलीपुर गांव में हुई, जिसमें राजा नाहर सिंह के अतिरिक्त अनेक प्रमुख व्यक्ति उपस्थित हुए। इस प्रचायत में भी इस पूरे क्षेत्र में अंग्रेजों की नीतियों के प्रति भारी रोष व्यक्त किया गया।[1]

सर्वखाप पंचायत और विशेषकर राजा नाहर सिंह द्वारा किये गये अपमान का बदला लेने के लिए कंपनी ने सन् 1857 में बल्लभगढ़ के दीवान बांकेलाल को राजकोष से भारी धनराशि का गबन करने का प्रलोभन दिया और ऐसा करने पर उसे दिल्ली में ब्रिटिश रैजीडेन्ट द्वारा आश्रय प्रदान किया।[2] राजा नाहर सिंह को इस षड़यंत्र का पता लगने से पूर्व ही दीवान को रैजीडेन्ट ने बादशाह से पनाह दिलवा दी। इससे राजा का आक्रोश बढ़ गया और उन्होंने बादशाह के खिलाफ बगावत का झण्डा बुलन्द करने का निश्चय कर लिया। राजपुरूषों ने राजा को इस कदम को तुरंत न उठाने की सलाह दी।[3] उन्होंने कम्पनी की शक्तिशाली सेनाओं

और बादशाह से नाराजगी लेने से पूर्व राजा को अपनी सेना का पुर्नगठन करने को कहा। राजा की सेना को सुदृढ़ करने हेतु गाँवों के हजारों लोग उसके सैनिक बन गये। क्षेत्र में अंग्रेजों के विरूद्ध ज्वाला पहले ही प्रज्जवलित हो चुकी थी।

मेरठ से क्रांति के शुरू होने की सूचना जब बल्लभगढ़ नरेश को मिली तो वे तुरंत क्रांति के प्रमुख संचालक बन गए। उन्होंने हिन्डन के युद्ध में अपनी सेनाएं भेजीं। दिल्ली पर चारों ओर से अंग्रेजी सेना का दबाव बढ़ने लगा तो बादशाह ने राजा नाहर सिंह को दिल्ली की सेना की कमाण्ड संभालने हेतु बुलावा भेजना पड़ा।[4]

राजा नाहर सिंह का आगरा और पूर्व के दूसरे स्थानों से हो रहे यातायात व संचार प्रणाली पर पूर्ण नियन्त्रण था। बहादुरशाह जफर से विचार–विमर्श करने के प्रश्चात् राजा नाहर सिंह ने पाली, पलवल व फतेहपुर कस्बों में तहसील व थाने खोल दिए, ताकि दिल्ली पर अंग्रेजी सेना की घूसपैठ न बढ़े। ये थाने राजमार्ग की मथुरा तग लगातार निगरानी करने लगे।[5]

इस समय राजा नाहर सिंह बल्लभगढ़ में रहकर दक्षिण से अंग्रजों की आने वाली सैनिक कुमुक को मटियामेट करते रहे। बल्लभगढ़ के पास ही एक युद्ध में बहुत से अंग्रेज मारे गये थे और उनके रक्त से राम सरोवर का पानी लाल हो गया था। इसी समय बादशाह की बड़ी जरूरत बल्लभगढ़ नरेश थे और उन्हें दिल्ली में आना पड़ा। पीछे से बल्लभगढ़ की कमान सेनापति गुलाब सिंह के हाथ में रही। कर्नल लांरेस ने खुद स्वीकार किया था कि जब तक राजा नाहर सिंह के हाथ में कमान है, तब तक विजय असम्भव है।[6] अंग्रेजों ने राजा नाहर सिंह का ध्यान हटाने के लिए बल्लभगढ़ पर आक्रमण कर दिया। परंतु सेनापित गुलाब सिंह ने अंग्रेजों का डटकर मुकाबला किया।[7]

पलवल और फतेहपुर सन् 1857 में ब्रिटिश क्षेत्र था। वहां पर क्रांति के पश्चात् अराजकता का माहौल बन गया था। 25 मई, सन् 1857 को राजा नाहर सिंह ने इन कस्बों पर अपना अधिकार कर लिया तथा वहां की जिला ट्रेजरी को अपने अधिकार में ले लिया। राजा ने उन क्षेत्रों को

भी अपने कब्जों में कर लिया, जिनको अंग्रेजों ने उनके पूर्वजों से छीन लिया था।

राजा नाहर सिंह क्रांति के दौरान दिल्ली के एक प्रकार से भाग्य विधाता बन गए थे। उन्होंने अंग्रेजी आधिपत्य से मुक्त राजधानी दिल्ली की पूर्वी सेना पर अपनी सेना तैनात कर दी। अंग्रेजों से स्वतंत्र दिल्ली के 134 दिनों में राजा ने राज्य सुव्यवस्था एवं मजबूत मोर्चाबन्दी के लिए कठोर परिश्रम किया।[8] उनका प्रयास था कि जिस लालकिले को देशभक्तों ने अनेक कुर्बानियां देकर आजाद कराया है, उसपर दोबारा विदेशी झण्डा न फहरा सके।[9]

लार्ड कैनिंग जो उस समय भारत के गर्वनर जनरल थे, को लारेंस ने एक पत्र लिखा था– ''यहां पूर्व और दक्षिण की ओर बल्लभगढ़ नरेश की मजबूत मोर्चाबंदी है और उस सैनिक दीवार को तोड़ना असम्भव ही दीख पड़ता है। जब तक कि चीन अथवा इंग्लैण्ड से हमारी कुमुक नहीं आ जाती।''[10] यही हुआ भी। 13 सितम्बर, को जब अंग्रेजी पलटनों ने दिल्ली पर आक्रमण किया तब वह कश्मीरी गेट की तरफ से ही किया गया। एक बार जब अंग्रेज शहर में घूस आये तब अधिकांश भारतीय सैनिक तितर–बितर होने लगे। बादशाह को भी किला छोड़कर हुमायुं के मकबरे में शरण लेनी पड़ी। इन बिगड़ी स्थिति में राजा ने बादशाह को बल्लभगढ़ चलने का आग्रह किया। परन्तु, इलाही बख्श नामक एक अंग्रेज ऐजेंट के बहकाने से बादशाह ने यहां से जाना अस्वीकार कर दिया।[11]

राजा नाहर सिंह की बात न मानने का प्रतिफल यह हुआ कि 21 सितम्बर को कप्तान हड़सन ने चुपचाप बहादुरशाह को गिरफ्तार कर लिया। परन्तु, राजा नाहर सिंह ने बहादुरी दिखाकर अपने सैनिकों को राष्ट्रभक्ति से प्रेरित करके अंग्रेजों को घेर लिया। खतरे की पहचान कर कप्तान हड़सन ने शहजादों को गोली मार दी और बादशाह को भी मारने की धमकी दी। अतः राजा ने बादशाह के प्राणों की रक्षा की दृष्टि से अपनी घेराबन्दी उठा ली। दिल्ली के तख्त का यह अंतिम अध्याय था।[12]

दिल्ली में अपनी पकड़ मजबूत करने के बाद अंग्रेजों ने युद्ध न लड़कर राजा नाहर सिंह के समक्ष सन्धिसूचक सफेद झण्डा दिखा दिया

और चार घुड़सवार अफसर दिल्ली से बल्लभगढ़ पहुंचे। उन्होंने राजा से निवेदन किया कि बादशाह से सन्धि होने वाली है। उसमें आपकी उपस्थिति जरूरी है।[13] निर्णायक समय में बादशाह ने आपकी उपस्थिति की इच्छा की है।[14] इस सूचना को पाकर राजा अपने कुशल 500 सिपाहियों के साथ दिल्ली की ओर चल दिए। जब वे ओखला व निजामुद्दीन के बीच बदरपुर से कुछ आगे बढ़े तो तुरन्त जंगलों में छिपे अंग्रेज सैनिकों ने उन पर जोरदार हमला बोल दिया। अपने थोड़े से सैनिकों के साथ वे बहादुरी से लड़े। लेकिन, उनके सैनिक वीरगति को प्राप्त हो गए और राजा नाहर सिंह को बंदी बना लिया गया।

नरेश की लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ी, इसका कारण यही था कि राजा नाहर सिंह ने अपनी रियासत बल्लभगढ़ में दुकानदारों को यह आदेश दे रखा था कि जो भी अंग्रेज विरोधी सेना बल्लभगढ़ पधारे, उन्हें दुकानों से जो भी वे खाना–पीना चाहें, राजा के खाते से प्रदान किया जाए। राजा नाहर सिंह ने बादशाह के तहसीलदार मीर इनायत अली को पत्र लिखा कि वह नीचम से आने वाली विद्रोही सेनाओं का स्वागत करे और उनके लिए रसद एकत्रित करे तथा फरीदाबाद में उनके ठहरने का उचित प्रबन्ध करे। मीर इनायत अली राजा द्वारा पलवल आदि कस्बों पर कब्जा करने के बाद तहसीलदार नियुक्त किया गया था। राजा नाहर सिंह ने खुद भी नीमच से आने वाली सेनाओं में अपने कर्मचारियों द्वारा मिठाईयां आदि बंटवाई।

राजा नाहर सिंह को कैद करने के पश्चात उनपर मुकद्मा चला। मुकदमे से पूर्व उन्हें हड़सन ने कहा–''तुम माफी मांग लो। मैं तुम्हें फांसी से बचा सकता हूँ।'' राजा ने हडसन की ओर पीठ करते हुए उत्तर दिया, ''कह दिया फिर सुन लो। गोरे मेरे शत्रु हैं, मेरे देश के शत्रु हैं। उनसे क्षमा मैं कदापि नहीं मांग सकता।....लाख नाहर सिंह कल पैदा हो जाएंगे।'' उन पर मुकदमा चला एवं 2 जनवरी, सन् 1858 को फौजी अदालत ने फैसला दिया – ''राजा ने विद्रोहियों को रसद, सैनिक सहायता, आर्थिक मदद और पलवल आदि कस्बों पर अनाधिकृत कब्जा करके अंग्रेजों से सीधी टक्कर ली। अतः इस तरह की कार्यवाही भारत की विधान परिषद

1857 के एक्ठ–16 की धाराओं के अन्तर्गत एक जघन्य अपराध है। गवाहों द्वारा दिए गए सबूतों से भी राजा पर लगाये गए आरोप सिद्ध होते हैं। अदालत राजा नाहर सिंह को फांसी की सजा देती है। उसकी सभी प्रकार की सम्पति जब्त कर ली जाए।''

9 जनवरी, सन् 1858 को इस महान क्रांतिकारी नायक को चांदनी चौंक दिल्ली में फांसी दी गई। फांसी का फन्दा चूमते हुए राजा नाहर सिंह ने यही कहा – ''दीपक बुझ न जाए।''

राजा नाहर सिंह की सैन्य प्रतिभा, स्वाधीनता प्राप्ति की लगन, चरित्र की दृढ़ता, पक्का निश्चय, देशभक्ति, अपनी जनता के हित के लिए जीवनभर किये कार्य तथा धर्मनिरपेक्षता उनके चरित्र की अलौकिक विशेषताएं थीं। उनके प्रशासनिक संगठन, सैन्य प्रबंध, अदम्य साहस और दिव्य प्रतिभा देखकर ही मैटकॉफ ने 'टू नैरेटिवज ऑफ म्यूटिनी इन देहली' पुस्तक में पृष्ठ 73 पर कहा है कि, ''दिल्ली पर अंग्रेजों के घेरे के दौरान नाहर सिंह ही दिल्ली का शासक था।'' अमृतसर के तत्कालीन उपायुक्त फ्रैडरिक कूपर द्वारा लिखित पुस्तक, 'क्राइसिस इन पंजाब' में उनके अदम्य साहस का वर्णन मिलता है। 36 वर्ष की अल्पायु में ही राज नाहर सिंह की मृत्यु से जनता में शोक की लहर दौड़ गई थी, जिससे उसकी रियासत पूरी तरह हिल गई थी। यदि उन्हें जीवन के और दो दशक मिल जाते, तो वे अपने राज्य को कहीं अधिक खुशहाल और मजबूत छोड़कर जाते।

उपर्युक्त विवरण के पश्चात अब मैं सन् 1857 की जनक्रांति में राजा नाहर सिंह की सही भूमिका का विश्लेषण कर रहा हूँ।

राजा नाहर सिंह की रियासत दिल्ली के बहुत करीब होने के कारण बहुत ज्यादा महत्व रखती थी। चाहे वह अंग्रेज हो या मुगल बादशाह। दूसरा यह जाट बाहुल इलाका था और जाट बल्लभगढ़ नरेश के प्रति अगाधा प्रेम एवं समर्पणता रखते थे। इसलिए बादशाह ने राजा नाहर सिंह को इस क्रांति की बागडोर थमा दी थी और दिल्ली व उसके आसपास के सम्पूर्ण क्षेत्र की प्रशासन व्यवस्था व प्रबंध का सम्पूर्ण दायित्व उन्हें दे दिया था। मुगल बादशाह खुद बहुंत बुजुर्ग और कमजोर थे।

इसलिए उनके लिये इस क्रांति का संचालन करना मुश्किल और असम्भव था। उन्हें नौजवान, देशभक्त एवं सक्षम नेतृत्व की अति आवश्यकता थी, जो उन्हें बल्लभगढ़ नरेश से मिला। बल्लभगढ़ नरेश को भी एक अवसर की प्रतिक्षा थी कि वे अपने पूर्वजों की गरिमा को पुनः जीवित करे, जिसपर अंग्रेजों ने उनके जागीर तथा पूर्वजों की प्रतिष्ठा को सुशोभित करना चाहते थे। इसलिए स्वतंत्रता क्रांति शुरू होते ही उन्होंने बहादुरशाह जफर से मुलाकात करके क्रांति की बागडोर अपने हाथों में ले ली थी।

इतिहास साक्षी है कि दिल्ली के आसपास बसा जाट समुदाय स्वतंत्रता प्रेमी रहा है तथा उसकी अपनी गुलामी के विरूद्ध विद्रोही प्रवृति रही है। राजा नाहर सिंह ही एकमात्र जाट नेता थे, बाकी हरियाणा के सभी रियासतों के प्रमुख मुसलमान थे। एक मात्र हिन्दू राजा बल्लभगढ़ के नाहर सिंह ही थे, जिन्होंने अपने अधीन प्रजा की भावनाओं के अनुरूप नेतृत्व प्रदान किया और विद्रोही सेनाओं का साथ दिया। इस प्रकार की प्रवृति का आभास सहज ही खाप पंचायतों के रिकार्ड़ से भी हो जाता है। सन् 1856 के अन्त तक आने वाले विद्रोह को भांपते हुए नाहर सिंह ने अपनी शक्ति को संगठित कर लिया था।

11 मई, सन् 1857 को जब दिल्ली क्रांति की ज्वाला से प्रभावित हुई तो उस समय राजा नाहर सिंह, पहले ही बहादुरशाह जफर से भावी नीति निर्धारित करने हेतु विचार–विमर्श कर रहे थे। इस आपातकाल स्थिति में राजा नाहर सिंह की सुपुत्री का विवाह पहले ही 17 मई, सन् 1857 को फरीदकोट के राजकुमार विक्रम सिंह से निर्धारित था, जो अब असम्भव सा हो गया था। दोनों पक्षों के बीच समझौते के अनुसार नाहर सिंह की पुत्री के फेरों की रस्म राजकुमारी को सोने की तरलवार के साथ पूरी की गई। इस प्रकार अपने इस घरेलू दायित्व को निभाकर राजा नाहर सिंह क्रांति समर के नेतृत्व के लिए समर्पित हो गए।

शिव मन्दिर बल्लभगढ़ में राजा नाहर सिंह ने फिरंगियों को अपनी मातृभूमि से बाहर भगाने की शपथ ली और स्वतंत्रता सेनानियों को नेतृत्व के साथ–साथ धन और रसद सामग्री की अत्यधिक सहायता प्रदान की। उन्होंने अपने दफेदार कलन्दर बख्श के नेतृत्व में घुड़सवारों का एक दस्ता

दिल्ली भेजा, जो बाद में बादशाह कोर्ट में राजा की फौज का प्रभारी नियुक्त किया गया। अमीर और उमरा के कड़े विरोध के बावजूद नाहर सिंह आंतरिक प्रशासन का प्रभारी बना रहा तथा उन्होंने अपनी प्रशासकीय एवं सैन्य मामलों को बड़ी कुशलता से निभाया। प्रशासकीय प्रमुख होने के कारण उन्होंने सभी जगहों पर ''जनता सरकारें'' गठित करके लोकतंत्र व्यवस्था को लागू किया तथा जनता का विश्वास अर्जित किया।

बादली की सराय की लड़ाई 8 जून, सन् 1857 में राजा नाहर सिंह ने स्थानीय लोगों की सहायता से ही अंग्रेजों के आक्रमणों को सख्ती से नाकाम कर दिया था।

इतिहासकार अब इस बात को स्वीकार करते हैं कि उत्तरी भारत में तो स्वतंत्रता राजा नाहर सिंह ने सन् 1857 में ही ला दी थी। उन्होंने गणतंत्र राज्य के रूप में जनता सरकारें गठित करके गणतंत्र का इतिहास पहले ही रच दिया था। अनेक इतिहासकार इसीलिए राजा नाहर सिंह को गणतंत्र भारत का प्रथम प्रधानमंत्री तथा बहादुरशाह जफर को भारत का प्रथम राष्ट्रपति नाम देते हैं। राजा नाहर सिंह एक सच्चे नायक, कुशल राजनीतिज्ञ एवं महान देशभक्त थे। वे अपने नाम के अनुरूप (नाहर का अर्थ–शेर) की भांति बड़ी बहादुरी और दिलेरी से गणतंत्र भारत स्थापित करने हेतु लड़े तथा अपना सर्वस्व इस प्रयोजन हेतु न्यौछावर कर दिया।

9 जनवरी, सन् 1858 को इस महान नायक की अंतिम झलक पाने के लिए भारी भीड़ एकत्रित हुई। दिल्ली और उसके आसपास की बिलखती जनता को नियंत्रित करने के लिए भारी संख्या में अंग्रेज सैनिकों ने चांदनी चौक जाने वाली प्रत्येक सड़क या गली को रोक दिया था। यह भलीभांति जानते हुए कि राजा नाहर सिंह काफी लंबे समय तक लोगों के चहेते युवा नायक रहे हैं, अंग्रेजों ने जनता को दबाने के लिये आतंक की नीति अपनाई।

चांदनी चौंक दिल्ली की कोतवाली में नाहर सिंह ने फांसी के फन्दे को स्वीकार किया, चूमा और उन्होंने वहां खड़े ब्रिटिश अधिकारियों के सामने शेर की तरह दहाड़ते हुए कहा, ''नाहर फिर पैदा होगा।''

सन्दर्भ

1. प्रभाकर देवीशंकर : स्वाधीनता संग्राम और हरियाणा, 1997, पृष्ठ 88।
2. दलाल, सुखबीर सिंह, जाटवीर, 1997, पृष्ठ 111।
3. प्रभाकर देवी शंकर (पूर्वोद्धृत) पृष्ठ 88।
4. प्रभाकर देवी शंकर (पूर्वोद्धृत) पृष्ठ 88।
5. बहादुरशाह ट्रायल पेपरस नं. 75, 25 मई, 1857, एन.ए.आई.ए दिल्ली।
6. स्मारिका राजा नाहर सिंह, 1990।
7. प्रभाकर देवी शंकर (पूर्वोद्धृत) पृष्ठ 89।
8. सरस्वती ओमानंद : देशभक्तों के बलिदान, 1986, पृष्ठ 134।
9. प्रभाकर देवी शंकर (पूर्वोद्धृत) 1976।
10. सरस्वती ओमानंद (पूर्वोद्धृत) पृष्ठ 134।
11. सरस्वती ओमानंद (पूर्वोद्धृत) पृष्ठ 134।
12. सरस्वती ओमानंद (पूर्वोद्धृत) पृष्ठ 135।
13. सरस्वती ओमानंद (पूर्वोद्धृत) पृष्ठ 135।
14. दलाल, सुखबीर सिंह (पूर्वोद्धृत) पृष्ठ 115।

खण्ड–6

स्वतंत्रता आन्दोलन के परिपेक्ष्य में

चौधरी मातू राम एवं

चौधरी रणबीर सिंह

Legacy of the Freedom Movement in Haryana:

Chaudhry Ranbir Singh speaks in Constituent Assembly

-Dr. Balbir Kaur,
Pro-VC, BPSWU, Khanpur Kalan (Sonepat)

I will confine myself in this paper for the seminar devoted to the contribution of Chaudhry Ranbir Singh in the freedom struggle and his brilliant espousal for rural India in the Constituent Assembly. I admit it was difficult to choose from the interesting sub-themes of this seminar. But the subject lastly selected has interested me more for its unique character. I was surprised to find in Chaudhry Ranbir Singh such a devout champion of rural cause in the first National Assembly of its sorts at a transient period in its history. In passing reference, I may say that Haryana's contribution to the freedom movement has been less appreciated till now for want of perhaps devoted souls on its behalf in the academic fraternity going for a laborious research on the topic. British historians view, however, still dominate who were reluctant to appraise Haryana in this context; they were not much happy with this zone for its strong association with the uprising in 1857 and rated it off as a zone of conservative and self-conceited farmers. I wish something more tangible research could be done to appreciate the indomitable spirit of this region. It will serve the state of Haryana substantially.

Now I come to my subject. A stalwart of freedom struggle, the late Chaudhry Ranbir Singh (1914-2009) represents truly a generation that lived by values and principles of personal integrity and devotion to social cause led by a galaxy of leaders of his times.

The legacy this generation leaves behind is a different trajectory to what the present young squad dreams by. Personal career did matter to the then young volunteers also, but of a different category altogether. Nation and its cause was much dear to them and to be a free nation from a dehumanizing slavery was a charming goal to achieve. Chaudhry Ranbir Singh was a brilliant example of this category from rural Haryana of his time. Personal career was left behind by him to join the ranks of freedom struggle at the prime of his youth with a saga of untold sufferings. He breathed his last (on 1st. February, 2009) with the same zeal for his ethical convictions.

A rare voice of rural India at a critical juncture in its history

The late Chaudhry was a great patriot, a veteran freedom fighter, an eminent social reformer and a notable parliamentarian from Haryana. The striking feature of his stint in the Constituent Assembly makes him a rare voice for rural India with passionate urge to stand by it when the country was taking shape as a free nation. Born in a modest peasant family of repute, at village Sanghi in Rohtak district, Ranbir Singh inherited an inspiring legacy of social-cultural and political awakening. His father and mother were pioneers of social reform and community service, duly inspired by the message of Arya Samaj led by Swami Dayanand Saraswati. A renowned name for homely hospitality and simplicity of a dedicated peasant, the house of Hooda's at Sanghi in fact had become the hub of inspired zeal in social service, religiosity and political awakening. With tender blessings from his ailing father, he participated in the Individual Satyagraha (1940) and the Quit India Movement (1942) with remarkable zeal and Gandhian sense of

discipline that led the country to its cherished goal of freedom from slavery.

Even a cursory glance over the political history of his life will reveal that the freedom movement shaped his personality and left a deep imprint on his life values. The heat from the struggle tempered him, like many other great personalities of this era, to sparkle like a star and attain dizzy heights of social recognition in short time. He was an embodiment of virtue and human values with a clear heart of a saint. You can find him sharing moments of grief and joy with all; tales are plenty when he was with his known political adversaries in moments of grief. None was an enemy with him. His story tells it so eloquently. A rare human being, he was.

When, recently, I happened to have a glance over his speeches in the Constituent Assembly, it left me speechless a while for his forthrightness and boldness in espousing the cause of rural India at that high forum of deliberation. He was hardly 34 years of age when he arose to deliver his maiden speech on 06-11-1948 in the Constituent Assembly and stood their as a staunch believer in the destiny of rural masses. Later, till the term of this Central Assembly ended in the beginning of 1952, he was on his feet on every issue that concerned rural people in general and his area of operation in particular, to literally fight on their behalf for issues at debate. The discrimination towards rural folks in treatment on any account, in matters of policy or practice was not tolerable to him. One cannot but has a deep sense of appreciation for his grit and staunch advocacy; sometimes with the pain of a mother like fondness for the sons of the soil. Agriculture was his subject of major interest in the debates. He was for according priority to agriculture as a source of development in the country.

Chaudhry Ranbir Singh was elected to seven different houses in his span of political career. Apart from being a member of Constituent Assembly and the Provisional Central Legislative Assembly from 1950 to early 1952, he was a member of 1st and 2nd. Lok Sabha. Thereafter, he was elected to Punjab Legislative Assembly and Haryana Legislative Assembly. Again, in 1972 he was elected to Rajya Sabha for a term till 1978. When this term ended, he told about his mind not to aspire for any elected post further. Thereafter, he devoted to organizational affairs of Pradesh Congress and looked after social formations like Harijan Sewak Sangh and to the welfare tasks of Freedom fighters.

This peasant family in village Sanghi was known in the area as a hub of social and political activities for long. The grandfather of Chaudhry Ranbir Singh was a prominent figure in the area. For his social activities, Chaudhry Bakhtawar Singh was appointed Numbardar, then as first grade Numbardar in the village and later as a Zaildar. His father Chaudhry Matu Ram was a pioneer of Arya Samaj movement in the area. He was also made Zaildar, though for participation in freedom struggle as a collaborator with Sardar Ajit Singh in the peasant movement he was stripped off this Zaildari in 1907. He moved with more vigour thereafter to his activities despite the displeasure shown by the establishment and continued with zeal his activities in Congress and Arya Samaj. Later, this legacy was inherited by Chaudhry Ranbir Singh to carry it forward.

Chaudhry Matu Ram was one of the early leaders of the Congress Party who kept the flame of freedom movement burning in rural areas at a time when peasantry was virtually won over by

the Unionist Party, which was in power and collaborating with the British administration with a claim of defending the interests of peasantry. Chaudhry Chotu Ram, also from Rohtak district, was a powerful minister in the cabinet and enjoyed mass support from peasantry. He had parted company with the Congress Party and became a leading figure of the ruling Unionist Party in Punjab and championed the cause of debt-ridden peasantry. The relief from heavy debts proved a boon to the farming community.

Peasantry in this zone was hard pressed. It was in trouble for wrong colonial pursuits followed by government administration to make it unviable, as a measure to punish Haryana for its leading role against the British in 1857 mass uprising. The area was visited by repeated famines and it was converted into a recruiting ground for British military forces in quest of expeditions abroad and police establishment inside. The area was in virtual ruin with agricultural land mortgaged against unpaid loans on usury interest.

At a very difficult juncture in the life of peasantry, Chaudhry Matu Ram along with his many other friends of Arya Samaj worked hard to advance the cause of freedom struggle and awaken the farming community too to the movement ahead. The courage and relentless efforts were not in vain. This area thereafter never proved wanting in various struggles launched by the Congress party to further the cause of freedom.

Despite the transitory role of Unionist party during this phase, the zeal for freedom from British subjugation, did not die in the region and rural areas too reverberated with songs of liberation, thanks to stalwarts like Chaudhry Matu Ram and later his son, the dynamic Chaudhry Ranbir Singh. I quote only a small piece about what he said in the Constituent Assembly on 21.11.1950 "*I have*

no hesitation in saying so because those who have power in this country have no direct concern with the cultivators." It was only Chaudhry Ranbir Singh who could be so forthright at such an exalted place of power in expression at his age! And in pleading for the cultivators!

I may refer here a bit of history: when the Constituent Assembly met to deliberate on the shape Independent India would take, a resolution of faith was adopted on 23.01.1947 after a month long debate in the beginning to tell the world at large what principles are to guide it in its task. On November 4, 1948 the Law Minister presented the draft Constitution to the house for detailed discussion and adoption. This draft divided the whole Assembly with two distinct viewpoints; one was for a modern industrial world to follow, while the other view stood firm for following Gandihan prescription in developing the country on its own strength by relying upon rural self-sufficient economy with 7 lakhs little republics to constitute a federation. While the first was firmly for Westminster form of government with representative democracy at its core, the other was for Panchayat system of governance in a participative democracy. Chaudhry Ranbir Singh made his choice. Here the legacy of freedom movement as also his upbringing in the milieu of a peasant family seems to have played its role in shaping his selection.

This explains why and how the legacy of freedom in movement finds reflection in the speeches of Chaudhry Ranbir Singh during the deliberations of Constituent Assembly. Although he made a large number of powerful speeches as a member of the Constituent Assembly, the provisional parliament, Lok Sabha, Punjab Legislature Assembly, Haryana Legislature Assembly and

the Rajya Sabha during his parliamentary career of about three decades, this paper is confined to discussion and an analysis of the speeches that Chaudhry Ranbir Singh had made in the Constituent Assembly. This delimitation has been done on account of important reasons. Firstly, it was not possible for the author to cover the whole gamut of speeches in a single article. Secondly, his speeches in the Constituent Assembly have far more symbolic importance to represent the legacy of freedom movement than speeches in other Houses in different contexts, as these seem to have made a significant impact on the Constitution making process.

He arose to deliver his maiden speech in the Constituent Assembly on 6th November, 1948 and raised many vital issues in it. These had, in a manner of speaking, paved the way for things to come. He spoke on the issues of the National Anthem, the National Flag and the National Language. He had recognised the significance of the National Anthem for the country and pleaded for Rabinder Nath Tagore's song as the National Anthem for adoption. Likewise the stand he took on the issue of Reservation for scheduled Castes and the Scheduled Tribes also explicitly reflect the deep impact of the legacy of freedom movement on him.

He pleaded for the adoption of Tri-coloured National Flag as each colour represented a community of India. This was for ensuring the secular character of the India polity. And, he argued for the adoption of Hindi as the National Language because it was the language of the Indian masses and English was the language of the elite. His stand on the issues of the National flag, National Anthem and the National Language do reflect the profound impact of this legacy of freedom movement on his thinking. And he gave

vent to his opinion at an opportune time on these aspects very clearly.

He proposed that this reservation should be on the class basis. He was against reservation on the basis of religion as it would kill the basic idea of a secular State that India had aspired to become during the freedom movement. However, he did plead for the reservation on demographic basis for the rural people who had been lagging far behind than urban brothers. Here it is pertinent to mention that the Father of Nation, Mahatma Gandhi had advocated for the upliftment of Harijans in particular and the rural masses in general during the freedom struggle. Chaudhry Ranbir Singh had gone to the extent of arguing that if villages die, India would not be able to survive in dignity. He also stood for Cow Protection and Prevention of slaughter of certain animals and strongly advocated for these step in the Constituent Assembly. It was the efforts of the persons like him that these steps were incorporated in the Directive Principle of the State policy in the governance of the country despite their non-justiciable character and some others found place in those categorised as Fundamental Rights. But his plea for these was not motivated by religious consideration or by the impact of the Arya Samaj on him. On the contrary, it was on account of the deep impact of the supreme leader of the freedom movement, Mahatma Gandhi, on him. And, Mahatma's concern for the Cow and other milch cattle was on account of their importance in the rural economy of India. Chaudhry Ranbir Singh also advocated that Land Revenue and Tax should be rationalised and based on the principles of equity and justice. He deplored that the agriculturalists are asked to pay both, while the non-farmers escape the former. He also wanted a uniform system of Land Revenue for

the farmers. He further advocated that the prices for agricultural products should be fixed and the profession Tax should be re-considered as it would be a heavy burden on the Harijans and the other poor. He also advocated that the families from rural background should be given ample support for the education of their children.

His plea for the exemption of rural people from the profession tax and advocacy of educational advancement of the rural areas should not be ascribed to his rural background alone. It has also to be perceived as the legacy of freedom movement because these too were based on the Gandhian ideas which constituted the very bone of the struggle for India's Independence.

Chaudhry Ranbir Singh also supported the idea that there should be restrictions on the purchase of land by non-tillers. Giving land to non-tillers will only add to the Zamindari system that India was trying to abolish, he argued. He also raised the profile of the 'pest control' and pleaded for the help to farmers in dealing with the menace. For this he suggested that the issue be included in Concurrent List as the states are sometimes not able to tackle it and the centre has to intervene in it.

Chaudhry Ranbir Singh reminded the Assembly on August 02, 1950 of the resolve during the freedom struggle on land reforms and pleaded for implementing the prominent slogan in the struggle on peasant question i.e. land to the tiller. While participating in the debate on February 1, 1950 Chaudhry Ranbir Singh strongly came out against exploitation. In this context he declared his conviction that it is the hard working 'landholding peasantry that does not exploit anyone, neither it likes to be exploited'. Can anybody be as emphatic with such confidence as he exhibited on this aspect of

peasant character, without the influence of freedom struggle and its philosophy that pervaded it in India? It testifies eloquently that he had imbibed the spirit of this struggle and stood firmly by it. His advocacy of the cause of peasantry and his passionate plea on the question of adequate wage for agriculture labour, as he did on April 14, 1951, cannot be attributed to his peasant background alone. The peasant question had remained the agenda of the freedom movement for long. When he raised the issues relating to the welfare of peasantry it reflects that legacy of the freedom movement. It was difficult to counter it for adversaries. Here it is pertinent to mention that the institutionalised form of national movement, the Indian National Congress had began to focus on the rural peasantry since 193o's due to the powerful impact of the ideas of Pandit Jawahar Lal Nehru who had become its President in the year 1929.

It was Chaudhry Ranbir Singh who with brilliant candour stood by those who could not find opportunity to get education in colleges and universities and said that they cannot be deprived of their political rights on this account. Speaking on the question of qualifications for a parliamentarian or a legislator, on April 4, 1951, he was forthright not to minimise the intelligence of a common man even in matters of administration, no matter if one is lettered or not and bantered those who questioned the very contribution of un-lettered citizens to the nation. He pointedly referred to the valuable role of Kabir, among others, in the life of this nation.

It is interesting to note that Chaudhry Ranbir Singh also stood for the decentralisation of powers to Panchayats because he was an ardent supporter of the Participative democracy that Mahatma Gandhi had advocated during his stewardship of the national movement.

The Mahatma stood for Gram Swaraj -a political system in which the Panchayats have the maximum powers and the central government the minimum one. Chaudhry Ranbir Singh stood for Panchayati Raj system. Still, he was opposed to the creation of small provinces. Perhaps, he feared that this will not only lead to top-heavy administration but could also weaken the national unity, which the freedom movement had been striving to achieve. Interestingly, he argued that New Delhi should be retained as the seat of the central government and the old city of Delhi as well as its rural areas need be merged with Punjab. Here, it is pertinent to mention that Delhi district had been a part of Punjab before it was excluded from it in 1914 when the capital was shifted from Calcutta to Delhi. This had excluded it from the democratic process. It was for its inclusion in the same that he advocated its merger in Punjab. It may also be relevant to mention that the Congress had been pleading for making Delhi a province by including western U.P. and Ambala division of Punjab in it since 1920's. But Chaudhry Ranbir Singh's had a different perception. He was guided by the primacy of the national interest which has to be seen as a legacy of the national movement.

It is interest that it was Chaudhry Ranbir Singh who first pleaded for the creation of a separate Haryana state, while speaking in the Constituent Assembly on November 18, 1948 itself. Many people may not know this fact of history. Haryana is now a flourishing state in the Indian Union for which he had raised voice in the Constituent Assembly.

The above narration, in brief, on the speeches that Chaudhry Ranbir Singh had made in the Constituent Assembly of India underlines the fact that he had been strongly influenced by the legacy

of freedom movement on vital issues of common interest. This he had not only inherited from his family but also from his participation in the freedom movement. He was particularly influenced by the ideas of its guide and mentor, Mahatma Gandhi. The ideas of Jawahar Lal Nehru, whom Gandhi had declared as his political heir, too made a profound impact on him. In true sense he was the voice of rural India and a valiant son of the soil.

स्वतन्त्रता आन्दोलन में चौ० मातूराम आर्य का योगदान : एक अध्ययन

— जगत सिंह हुड्डा
सहायक विकास अधिकारी,
खादी व ग्रामोद्योग आयोग, अम्बाला

भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन को मैं मुख्य रूप से 3 भागों में बाँट कर देखता हूँ। पहला सन् 1857 का स्वतन्त्रता संग्राम, जो भारत के स्थानीय राजाओं, मुगल शासको व आम जनता द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ लड़ा गया। दूसरा भाग 1885 में कांग्रेस की स्थापना से 1919 तक का स्वतन्त्रता आन्दोलन है जिसको राजनैतिक नव जागरण आन्दोलन भी कहा जाता है। तीसरा और महत्वपूर्ण भाग 1919 से 1947 (स्वतन्त्रता प्राप्ति तक) लड़ा गया जिसको कांग्रेस का गांधी युग भी कहा जा सकता है। अतः भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन के दूसरे व तीसरे भाग में चौ० मातूराम की चिरस्मरणीय भूमिका रही है।

चौ० मातूराम का प्रारम्भिक जीवन :—

चौ० मातूराम जी का जन्म सन् 1865 ईस्वी में हरियाणा राज्य के रोहतक जिले के प्रसिद्ध ऐतिहासिक गांव—सांघी में चौ० बख्तावर सिंह के घर में श्रीमती धन्नों देवी की कोख से हुआ। श्रीमती धन्नो देवी गांव अटायल जिला रोहतक के चौ० दाताराम मलिक की सुपुत्री थी। चौ० बख्तावर सिंह का परिवार क्षेत्र का प्रतिष्ठित परिवार था। चौ० मातूराम के दादा चौ० हरधन सिंह ने एक (माईनर)[1] मोघा गांव के किसानों के लिये खुदवाया था और चौ० हरधन सिंह के प्रदादा चौ० भीखू तहसीलदार थे[2]। इस प्रकार से एक प्रतिष्ठित परिवार में चौ० मातू राम का जन्म हुआ। चौ० मातूराम ने पैतृक गांव सांघी से चौथी कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की[3]। इनकी पत्नी श्रीमती मामकौर थी[4] जो दादरी के चौ० जवाहर सिंह फोगाट की बेटी थी। चौ० जवाहर सिंह आस्ट्रेलिया महाद्वीप के फिजी देश में भी सुबेदार के पद पर सैन्य सेवा में रहे थे। आपके चार पुत्र—पुत्रियाँ हुए, ज्येष्ठ पुत्र

बलबीर सिंह (1904), पुत्री चन्द्रवती (1909), मझंले पुत्र रणबीर सिंह (1914) में व कनिष्ट पुत्र फतेहसिंह 1924 में पैदा हुए।[5] रणबीर सिंह ने आपके बताए रास्ते पर चलकर आपकी तरह स्वतन्त्रता आंदोलन में भाग लिया। आपके सुपौत्र चौ॰ भूपेन्द्र सिंह हरियाणा के मुख्यमंत्री हैं व प्रपौत्र चौ॰ दीपेन्द्र हुड्डा रोहतक लोकसभा क्षेत्र में कांग्रेस पार्टी के सांसद है।

चौ॰ मातूराम जी बहुत बड़े देशभक्त थे। शायद उत्तर भारत के देहात में कांग्रेस के पहले बड़े नेता थे[6]। उनके सम्बंध लाला मुरलीधर (जोकि कांग्रेस के 72 संस्थापकों में से एक थे और वर्तमान हरियाणा से एकमात्र सदस्य थे) थे। इनके अतिरिक्त तत्कालीन कांग्रेस के बड़े नेताओं लाला दुनीचन्द अम्बालवी एडवोकेट, लाला लाजपतराय एडवोकेट, शिक्षाविद महात्मा हंसराज व स्वामी श्रद्धानन्द, शहीद भगतसिंह के क्रांतिकारी चाचा सरदार अजीतसिंह, लाला श्यामलाल जैन एडवोकेट, महात्मा गांधी प॰ गोपीचन्द भार्गव, प॰ मोतीलाल नेहरू, खान अब्दुल गफार खां, स. किशन सिंह, सेठ छाजूराम, पं. जवाहर लाल नेहरू, भगत फूलसिंह, चौ॰ राजमल जैलदार, पं. नेकीराम शर्मा व प. श्रीराम शर्मा , चौ॰ पीरू सिंह, चौ॰ रामनारायण मलिक, शौकत अली, पंजाब के सबसे बड़े समाज सुधारक डॉ॰ रामजी लाल हुड्डा व दीनबन्धु चौ॰ सर छोटू राम आदि बड़े राजनेताओं, शिक्षाविदो व समाज सुधारकों में से थे।

चौ॰ मातूराम के कार्यक्षेत्र के आधार पर उनके योगदान को प्रमुख रूप 3 भागों में बांटा जा सकता है।

1. शिक्षा के क्षेत्र में योगदान
2. सामाजिक क्षेत्र में योगदान
3. राजनैतिक व प्रशासनिक क्षेत्र में योगदान

1. शिक्षा के क्षेत्र में योगदान

हरियाणा में शिक्षा का प्रसार अन्य प्रदेशों की अपेक्षा बहुत देर के बाद हुआ। सन् 1870 से पहले तो यहाँ पश्चिमी शिक्षा देने वाले कालेजों की बात तो दूर, स्कूलों की व्यवस्था भी अंसतोषजनक थी। 1870 के बाद 10 वर्ग

मील के क्षेत्र में एक स्कूल खोला गया। लेकिन, कालेजों का अभाव बना रहा। हरियाणा क्षेत्र में रोहतक में 1926 में पहला कालेज खुला था वह भी इंटरमिडिएट स्तर का था। रोहतक में 1912 में जाट स्कूल सबसे पहले खुला, तत्पश्चात 1918 में गौड़ स्कूल, 1921में वैश्य स्कूल, विश्वकर्मा व सैनी स्कूल सन् 1940 में शिक्षण संस्थान खुले।

''जाट एग्लो संस्कृत हाई स्कूल'' रोहतक की स्थापना :–

7 मार्च 1911 की बरोणा गांव की सर्वखाप महापंचायत में समाज सुध ाार के 28 प्रस्ताव पास हुए थे। जिनमें से पहला प्रस्ताव रोहतक में शिक्षण संस्था खोलने का था।[7] उस समय डॉ॰ रामजीलाल हुड्डा समाज के शिक्षित व सम्मानित व्यक्ति थे उनको व चौ॰ मातूराम को यह जिम्मेवारी सौंपी गई और 1913 में रोहतक में पहला स्कूल 'आर्य वैदिक संस्कृत वर्नाकुलर हाई स्कूल' के नाम से शुरू किया गया। चौ॰ मातूराम इसकी स्थापना में अग्रणी रहे[8]। चौ॰ मातूराम के अतिरिक्त सर छोटूराम, डाक्टर रामजीलाल हुड्डा, हैडमास्टर चौ. बलदेव सिंह, चौ॰ देवी सिंह बोहर व सेठ चौ॰ छाजूराम भी इस स्कूल की स्थापना में अग्रणी रहे।

डॉ॰ रामजी लाल के सुपुत्र रणजीत सिहं इसके पहले अवैतनिक हैडमास्टर बने।[9] बाद में यही स्कूल 'जाट हीरोज़ मैमोरियल एग्लों संस्कृत हाई स्कूल के नाम से जाना गया है, जो आज एक वटवृक्ष का रूप ले चुका है।

इसमें पढ़कर निकले अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षाविद डॉ॰ सरूप सिंह हुड्डा गांव सांघी, अन्तर्राष्ट्रीय नासा वैज्ञानिक डॉ. जगजीत सिंह राठी गांव भापरौदा, अन्तर्राष्ट्रीय इतिहासकार डॉ॰ भीमसिंह (IRS) आदि ख्याति प्राप्त व्यक्ति बने है[10] इसके अतिरिक्त अनेक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ी, परमवीर चक्र व अशोक चक्र विजेता रहे है। वर्तमान में भी तीन कुलपति सर्वश्री आर.पी. हुड्डा, एम.डी.यू., हरसरूप सिंह चहल डी.सी.आर. मूरथल, एवं के.एस. खोखर कृषि विश्वविद्यालय हिसार इसी स्कूल की देन हैं। बाद में 9 जून 1914 को इस स्कूल का पंजीकरण 'जाट एग्लों संस्कृत हाई स्कूल' के नाम से हुआ[11]। चौ॰ छोटूराम इसके उपप्रधान व डाक्टर

रामजीलाल सचिव बने व चौ॰ बलदेव सिंह हैडमास्टर बने। रोहतक के तत्कालीन उपायुक्त श्री किलवर्ट ने चौ. मातू राम को शिक्षा का प्रसार करने के लिए 18 दिसम्बर, 1914 को प्रशस्ति पत्र भी प्रदान किया।[12]

स्कूल की मान्यता रद्द करवाना :—

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 1920 में असहयोग आन्दोलन छेड़ दिया, जिसका एक प्रस्ताव शिक्षण संस्थाओं की मान्यता वापिस लेना था। गांधी जी का साथ देने के लिए ''जाट एंग्लों संस्कृत हाई स्कूल'' का पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर व पंजाब शिक्षा बोर्ड से नाता तोड़ लिया व मान्यता वापिस लौटा दी और लाला लाजपत राय द्वारा लाहौर में स्थापित राष्ट्रीय विश्वविद्यालय से नाता जोड़कर 'जाट नैशनल हाई स्कूल'' नाम रख लिया[13] शहीद भगत सिंह ने भी राष्ट्रीय विश्वविद्यालय लाहौर में दाखिला ले लिया था।[14] सम्भवतः भारत का यह पहला स्कूल था, जिसने सरकारी मान्यता लौटा दी थी।

गांधी जी का रोहतक दौरा :—

महात्मा गांधी इस कार्य से बहुत प्रभावित हुए और जाट स्कूल आने की इच्छा जाहिर की। 16 फरवरी 1921 को जाट स्कूल में ही जनसभा हुई जिसमें 25000 की हाजरी थी, इस सभा की प्रधानता चौ॰ मातूराम ने की थी।[15] जबकि लाला श्यामलाल एडवोकेट प्रधान जिला कांग्रेस रोहतक भी मंच पर उपस्थित थे। यह जनसभा चौ॰ मातूराम के विशेष प्रयासो से सफल हुई थी। क्योंकि चौ॰ छोटू राम 7 नवम्बर 1920 को कांग्रेस से त्यागपत्र दे चुके थे और देहात का रूझान चौ॰ छोटूराम की तरफ बढ़ रहा था। तब भी यह सभा सम्पन्न हुई।

ऐतिहासिक पंचनामा :—

चौ॰ मातूराम वाले ''जाट नैशनल हाई स्कूल'' के पास भवन था लेकिन मान्यता वापिस हो गई थी। चौ॰ छोटूराम वाले ''जाट हीरोज मैमोरियल स्कूल'' के पास मान्यता थी, भवन नहीं था। इससे कम्युनिटी के बुद्धिजीवी वर्ग ने दोनों स्कूलों के मिलाप हेतू एक पंचायत करने का निर्णय

किया व पंच के नाम का प्रस्ताव दोनों से मांगा गया। पंचायत की बात मानते हुए 'जाट एग्लों संस्कृत हाई स्कूल' ने 18 जुलाई 1926 को दो प्रस्ताव पास किए कि पंचायत के सरपंच सेठ छाजूराम व पंच डॉ. रामजीलाल होंगे व दूसरे स्कूल का जो भी पंच होगा मान्य होगा। दूसरा प्रस्ताव बहुत महत्वपूर्ण था जिसमें यह शर्त थी कि दोनों स्कूलों के मिलाप के बाद 'जाट एंग्लों संस्कृत हाई स्कूल' के संस्थापक चौ॰ मातूराम हुड्डा के खानदान से एक स्थायी मैम्बर मैनेजिंग कमेटी में लिया जायेगा। उसके बगैर कमेटी मान्य नहीं होगी।[16]

चौ॰ छोटूराम वाले जाट हीरोज मैमोरियल हाई स्कूल की कमेटी ने 40 दिन बाद 26—8—1926 को मीटिंग की व इसके सचिव चौ॰ लाल चन्द को मिलाप कमेटी का पंच नियुक्त किया। पंचायत की तारीख 3 सितम्बर 1926 निश्चित हुई और पंचायत के सरपंच सेठ चौ॰ छाजूराम ने दोपहर 12. 00 बजे भारी भीड़ के सामने फैसला सुनाया। दोनों स्कूलों को मिलाकर नया स्कूल बनाया जिसका नाम 'जाट हीरोज मैमोरियल एंग्लों संस्कृत हाई स्कूल' रखा गया।[17] सेठ छाजूराम इसके प्रधान बने, चौ॰ मातूराम उपप्रधान व चौ॰ लालचन्द सचिव बने।

2. चौ॰ मातूराम का सामाजिक क्षेत्र में योगदान

सामाजिक भेदभाव के विरूद्ध आवाज :—

महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना 1875 में की थी। चौ॰ मातूराम ने इसमें खूब दिलचस्पी ली, क्योंकि उसमें उन्हें अपने गरीब, पिछड़े समाज की उन्नति के साधन नजर आए, खासकर आर्य समाज की सबको बराबर का दर्जा देने के बात उनको बहुत पसन्द आई। उस समय किसान जातियों (जाटों, गुज्जरों, आहिरों व अन्य) को समाज में दूसरे दर्जे पर रखा जाता था। न ही इन्हें जनेऊ पहनने की आजादी थी।

सन् 1881 में चौ॰ मातूराम ने आर्य समाज को अपनाया[19] और अन्य जाट भाईयों को भी ऐसा ही करने के लिए कहा। हरियाणा में जाट जाति के लोग अति प्राचीन काल से प्रबल एवं सुदृढ़ खेतीहर के रूप में स्थापित

है और आर्थिक दृष्टि से जाट हरियाणा में केवल बनिया जाति को छोड़कर अच्छी स्थिति में थे। लेकिन, सामाजिक व्यवस्था में उनको कार्य के हिसाब से शुद्र की श्रेणी में रखा गया था।

उस समय समाज में सनातनियों ने दो प्रकार के शुद्र बना रखे थे। एक तो अछूत शुद्र जिनको छुआ नहीं जाता था, जैसे दलित वर्ग व दूसरे शुद्र वे थे, जिनको छुआ तो जा सकता था, जैसे कि काश्तकार व दस्तकार। ब्राह्माणों का उस समय समाज में प्रभुत्व था। इस सम्मानित जाति का विरोध करना कोई आसान काम नहीं था, फिर चौधरी मातूराम ने अपनी जाति का भी विरोध सहा। पुरानी रूढ़ीवादी व्यवस्था को चुनौती देते हुए उन्होंने आर्य समाज का संदेश घर–घर तक पहुँचाया। इससे समाज में हलचल पैदा हुई, विशेषकर सनातनियों में। पंजाब में शहीद–ए–आजम भगत सिंह के दादा सरदार अर्जुन सिंह ने भी लगभग उसी समय आर्य समाज को अपनाया था। [20]

ब्याह–शादियों के अवसर पर व रात के सन्नाटें में स्त्रियों के मध् ुर गीतों के ये शब्द कानों में गुंजते[21] :–

घर – घर बांटो मिठाई,
हे मातूराम आर्य हो गया।
रल मिल गाओ बधाई,
हे मातूराम आर्य हो गया।
झूठां की पोल खुलाई,
हे मातूराम आर्य हो गया।

सन् 1883 में यज्ञोपवित धारण करने के बाद सनातनियों ने चौ॰ मातूराम की जाति के भोले–भाले लोगों को कहा कि पाप हो गया, मातूराम ने जनेऊ नहीं उतारा तो प्राकृतिक प्रकोप हो जाएगा, अकाल पड़ेंगे। महामारियाँ आ जाएंगी, प्रलय हो जाएगा। भगवान नाराज हो जाएगा। किसान का बुरा हाल हो जाएगा। बाढ़ आ जाएगी आदि। इससे बहुत से अनजान लोग घबरा गए।[22] दहिया खाप के प्रमुख गांव खाण्डा का निवासी ब्रह्मचारी हरफूल उर्फ बाबा कुडेनाथ इस मुहिम का संयोजक था।[23] उसने अपने पक्ष को मजबूत करने के लिए काशी से पंडित बुलवा लिए। पंचायत

प्रारम्भ हुई।

काशी के पंडितों द्वारा चौ॰ मातूराम से कहा गया कि जनेऊ पहनना तो ब्राह्मणों का ही अधिकार है। आप जनेऊ उतारे और माफी मांगें। इस पर चौ॰ मातूराम गरजे और कहा कि, ''जाओ जो इच्छा हो कर लेना, यह जनेऊ सूखे खूंड में नहीं टंगा है मातू राम की गर्दन में है। अगर दूसरा आकर उतारना चाहे वह भी सुन ले, गर्दन उतर सकती है, जनेऊ नहीं उतर सकता। जनेऊ मेरी गर्दन काटकर ही उतारा जा सकता है। आओ,उतार लो।'' सब तरफ सन्नाटा छा गया।

काशी के पण्डित ने दूसरा पांसा फेंका, ''यदि चौ॰ मातूराम जनेऊ नहीं उतारते तो इनका सामाजिक बहिष्कार किया जाए। इन्हें हुक्का पानी कोई नहीं देगा। न कोई इनके घर जाएगा, न ये किसी के द्वारा बुलाये जाएंगें।''

इनका उत्तर भी चौ॰ मातूराम ने उसी लहजे में दिया, ''पण्डित जी मैं तो बिना बुलाया कही जाता ही नहीं। मेरे भाई प्रेम से,आदर से मुझे बुलाते है, उनके घर जाता हूँ। हमारा सामाजिक रिश्ता इतना हल्का नहीं कि कोई फूंक मारे और उड़ जाए।''

बस इतना कहते ही सांघी व खिडवाली गांव के बहुत से लोग खड़े हो गए और कहा, '' पण्डित क्या बहिष्कार, बहिष्कार लगा रखा है। मातूराम हमारा भाई है। आओ चौधरी साहब, हमारे घर चलो। कर हमारा भी बहिष्कार और देख तमाशा। परिणामतः पंचायत बिखर गई। मातूराम की 'जय के नारे'[24] लगने लगे। न फूला पण्डित कहीं नजर आया, न ही उसके समर्थक।

आर्य समाज के प्रसार में योगदान :– चौ॰ मातूराम ने आर्य समाज के प्रसार हेतू 1884 से 1886 तक लाला लाजपतराय के साथ मिलकर रोहतक में आर्य समाज की गतिविधियाँ बढ़ा दी। लाला लाजपतराय आर्य समाज रोहतक के प्रसार हेतू कई बार चौ॰ मातूराम के गांव सांघी भी इनके पास रहे। लाला लाजपतराय ने शहरी व चौ॰ मातूराम व प॰ बस्ती राम ने देहाती क्षेत्र में आर्य समाज के प्रसार का मोर्चा सम्भाला। चौ॰ मातूराम ने गांव

सांघी, गांव कापड़ो, जिला हिसार[25] में आर्य समाज की स्थापना की व रोहतक में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अकाल पीड़ितों की सहायता 1897 :– चौ॰ मातूराम में समाज सेवा की भावना बचपन से ही कूट–कूट कर भरी हुई थी। सन् 1897 (वि. स. 1954) में जब झज्जर में अकाल पड़ा तो चौ॰ मातूराम ने अकाल पीड़ितों की भरपूर मदद की और काफी राहत सामग्री एकत्र करवायी और अकाल पीड़ितों तक पहुँचायी। जिससे प्रसन्न होकर तत्कालीन उपायुक्त रोहतक श्री जी. एल. बेडल द्वारा आपको 4 फरवरी 1898 को प्रशस्ति पत्र दिया गया।[26]

विभिन्न रोगों के विरूद्ध जनता की सेवा :– रतचौन्धा (Night Blindness) व प्लेग पीड़ितों की सहायता :– सन् 1919 में प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद पुराने हिसार जिले में राचोन्धा की बिमारी का प्रकोप बढ़ा तो अपने चचेरे भाई डॉ. रामजी लाल के साथ गांव–गांव जाकर डॉ. रामजी लाल हुड्डा द्वारा निर्मित देशी चने की दवाई बांटी जिससे बीमारी पर काबू पाया गया।[27] इसी प्रकार 1923 में सोनीपत के खादर क्षेत्र में प्लेग की बीमारी फैली थी। अपने चुनाव को छोड़कर प्लेग पीड़ितों की भरपुर सहायता की। चुनाव प्रचार ठीक ने होने के कारण विपक्षी उम्मीदवार ने ध ाांधली व गड़बड़ी करवा कर आपको हरा दिया, जिसे बाद में अदालत ने रद्द कर दिया।

शुद्धि आन्दोलन :– सन् 1923 में स्वामी श्रृद्धानन्द व महात्मा हसंराज ने भारतीय हिन्दू सभा की स्थापना की। जिसका प्रमुख कार्य था हिन्दू से मुस्लिम बने व्यक्तियों को पुनः हिन्दु बनाने का । उनको मुल्ला कहते है, जो जाट पुनः हिन्दू बने उनको 'मूले जाट' कहते हैं।

सन् 1929 में इस आन्दोलन को इस क्षेत्र में चलाने के लिए प्रमुख खापों की पंचायत हुई की मूले जाटों में ; मुस्लिम जाट, जो जाट हिन्दू धर्म में परिवर्तित हो गए, उनके बच्चों की शादियाँ कैसे हों? इस आन्दोलन के तहत चौ॰ मातूराम ने कहा सबसे पहले मैं अपनी हुड्डा खाप का लड़का मूले जाटों में ब्याहूँगा, लड़की बताओ। चौ॰ पीरू सिंह ने सोनीपत के पास

खत्री गोत्र के रायपुर गांव की लड़की बताई और हुड्डा खाप के किलोई गांव के लड़के का रिश्ता तय कर दिया। उमेद प्रधान किलोई तपा के चाचा राम सरूप की शादी रायपुर की लड़की छोटो (जो केहर सिंह की बहन थी) के साथ हुई थी। चौ॰ घासीराम जी मलिक प्रधान गठवाला खाप ने भाती बनना स्वीकार किया।

इस अवसर पर एक भजन गाया गया।

"एक मूले जाट की बात बताऊँ, हिन्दू बनना चाहवै था,
गठवाला बोला भात भरूंगा, दहिया बेटी ब्याहवै था।
हुड्डा बोल्या बरात चढावां, ना मरण तै घबरावै था,
मस्जिद के धोरै से निकला, मातू प्लान बनावै था।

इस अवसर पर चौ॰ मातूराम व किलोई गांव के चौ॰ दलीप सिंह दुल्हे के साथ हाथी पर सवार थे व खिडवाली गांव के चौ॰ टेकराम हाथी के पीछे चल रहे थे। यह बारात सोनीपत के मामा–भाणजा चौक से गुजरी थी। मामा–भाणजा दो मुस्लिम थे व बहुत खुंखार भी थे। झगड़े की पूरी संभावना थी। लेकिन, कोई झगड़ा नहीं हुआ। उसके बाद मामा–भाणजा चौंक से हिन्दुओं का गुजरना आरम्भ हुआ था। इससे पहले यहां कोला पूजा जाता था।

छुआछूत के विरूद्ध कार्य :–

इसके अतिरिक्त धामड़ गांव हुड्डा खाप का ही प्रमुख गांव है, महाभोज का आयोजन किया। वहां पर चौ. मातूराम के काफी शुभ चिन्तक थे लेकिन वहां खाना न खाकर धानकों के घर गए और उन्हीं के हाथों से बना हुआ खाना खाया।

सर्वखाप पंचायतों में भाग :– उस समय समाज सुधार में व सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में खाप पंचायतों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। चौ॰ मातूराम की उस समय प्रमुख पंचायती के रूप में पहचान थी और लगभग हर बडी पंचायत में उनकी महत्वपूर्ण भागीदारी होती थी, चाहे बरोणा की सर्वखाप पंचायत हो, जसिया की, किलोई की पंचायत हो या

सांघी की पंचायत हो। दहिया खाप के प्रमुख गांव बरोणा में 7 मार्च 1911 दिन मंगलवार को एक सर्वखाप पंचायत हुई थी, जिसमें उतरी भारत से लगभग 50000 व्यक्तियों ने भाग लिया था। चौ॰ मातूराम ने भी इस पंचायत में हुड्डा खाप का प्रतिनिधित्व किया था। इस पंचायत में समाज सुधार के 28 फैसले लिए गये थे। यह एक ऐतिहासिक पंचायत थी[30] जिसकी प्रधानता चौ॰ भीमसिंह (जटराणा खाप) गांव कादीपुर दिल्ली ने की थी।

आर्य समाज उत्सवों व काफ्रेसों में भाग :– चौ॰ मातूराम लाहौर तक के आर्य समाज उत्सवों में भाग लेते थे। सांघी में हर वर्ष वार्षिकोत्सव होता था। चौ॰ मातूराम ने खांडाखेड़ी, कापड़ो (जिला हिसार), रोहतक, नरवाना आदि स्थानों पर आर्य समाज उत्सवों में भाग लिया व 4 नवम्बर 1927 को महात्मा हंसराज की प्रधानता में दिल्ली में आर्य समाज की कांफ्रेस में दलबल सहित शामिल हुए।

3. राजनैतिक व प्रशासनिक योगदान

जैलदारी के रूप में :–

चौ॰ मातूराम 1 नवम्बर 1896 को सांघी जैल के जैलदार बने[31] और अनेक जनहितैषी कार्य किए। अपनी जैल में समाजोपयोगी कार्य किए। आप आम जैलदार नहीं थे। बल्कि एक प्रभावशाली जैलदार थे।

सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करवाया :–

उस समय अंग्रेज अधिकारी गांव में आते थे तो हरिजनों से 'बेगार'[32] ली जाती थी जिसका अर्थ है अधिकारी जब गांव में आए तो उसका व्यक्तिगत कार्य नौकर के रूप में जबरदस्ती करना, जिसका कोई पैसा भी नहीं मिलता था। इस प्रथा को 'बेगार प्रथा' कहते थे। इसी प्रकार किसानों व हरिजनों से कूढी कमीनी टैक्स वसूला जाता था। किसान से उसके जमीन के मालिक के साथ मलबा वसूल कर लिया जाता। हरिजन को 'कूढी'[33] के नाम से मलबा वसूला जाता था।

अंग्रेज अधिकारियों के गांव में आने पर उन पर होने वाले खर्च को इससे वसूला जाता था। उस समय नहर विभाग को छोड़कर सारे विभाग जिला बोर्ड के अन्तर्गत आते थे। सन् 1924 में चौ॰ मातूराम जब सांघी हल्के से जिला बोर्ड के सदस्य बने[34] तो उन्होंने जिला बोर्ड में प्रस्ताव पास करवा कर इन दोनों कुप्रथाओं, बेगार व कुढी कमीनी, को बन्द करवाया।

सहकारी बैंक की स्थापना :–

किसानों को कर्ज लेने में बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ता था। साहूकार कर्जा देकर बड़ी रकम वसूलते थे। दादा कर्ज लेता था, पोता भरता रहता, ऋण की पूरी अदायगी नहीं होती थी। किसानों को इस समस्या से छुटकारा दिलवाने के लिए सर्वप्रथम अपने पैतृक गांव सांघी में 23 जनवरी 1913 को किसानों के लिए जमीदारी बैंक, सहकारी बैंक खुलवाया।[35]

कांग्रेस की गतिविधियों में भाग :–

1885 में मुम्बई कांग्रेस की स्थापना करने वाले 72 सदस्यों में से एक व हरियाणा के एकमात्र संस्थापक सदस्य लाला मुरलीधर एडवोकेट व लाला लाजपतराय एडवोकेट, शहीद–ए–आजम भगत सिंह के क्रान्तिकारी चाचा सरदार अजीत सिंह जी व लाला श्यामलाल जैन रोहतक के साथ कांग्रेस पार्टी में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी व विशेषकर देहाती क्षेत्र में कांग्रेस का प्रचार किया। आप उत्तर भारत के प्रमुख नेता थे जिन्होंने देहात को कांग्रेस से जोड़ा।

कांग्रेस की स्थापना में योगदान :–

रोहतक में कांग्रेस की पहली मीटिग 12 अक्तूबर 1888 को हुई।[36] जिसमें आपने प्रमुखता से भाग लिया। 1920 में गऊकर्ण पार्क में कांग्रेस की सभा करवाई। 1907 में लाला लाजपतराय व स. अजीत सिंह के निष्कासन का विरोध किया।

'पंगड़ी संभाल जट्टा' किसान आन्दोलन में योगदान :–

उस दौरान बांके दयाल का यह गीत क्रांतिकारी गाते थे –

''पगड़ी संभाल जट्टा, पगड़ी संभाल ओए,
लुट लिया माल तेरा, हालों बेहाल ओए।''

सन् 1905 से 1907 में सरदार अजीत सिंह के नेतृत्व में शुरू 'पंगड़ी संभाल जट्टा' नामक किसान आन्दोलन के तहत 7 मई 1907 को सरदार अजीत सिंह व लाला लाजपतराय के वारण्ट ब्रिटिश सरकार के गृह सचिव एच. एच. रिजले के हस्ताक्षर से निकाले गए। [37] 9 मई को लाला लाजपतराय को माण्डले (बर्मा, जो कि सन् 1935 तक भारत का ही भाग था) जेल भेज दिया गया। सरदार अजीत सिंह भूमिगत हो गए थे। गुप्तचर विभाग बहुत सतर्कता से उनके कार्यो पर नजर रख रहा था। [38] इस दौरान 10 मई 1907 से 31 मई 1907 के बीच में कई दिन सरदार अजीत सिह, सांघी गांव में चौ॰ मातूराम के घर पर रहे[39] और 2 जून को अमृतसर में डब्लयू एच. चैडविल पुलिस अधीक्षक के द्वारा रेगूलेशन तीन 1818 के तहत पकड़े गए[40] और उनको माण्डले जेल में भेजने के लिए 11 पुलिस कर्मी साथ भेजे गए। सरदार अजीत सिहं व लाला लाजपतराय की गिरफ्तारी के बाद बहुत से नेता उनका साथ छोड़ गए थे। अंग्रेजों ने अनेक नेताओं को लायल्टी का लालच दिया और अपने पक्ष में किया। हरियाणवी साहित्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने निम्न प्रकार से वर्णन किया है।[41]

सबके सब पंजाबी अब है लायल्टी में चकनाचूर,
सारा ही पंजाब देश बन जाने को है लायलपुर।।
लायल है सब सिख, अरोड़े, खत्री भी सब लायल हैं,
मेढ रहितये, बनिये, धुनिये, लायल्टी के कायल है।।
धर्म समाजी पक्के लायल, लायल है अखबारे – आम,
दयानंदियों का तो है लायल्टी से ही काम तमाम।।
लायल सब वकील बैरिस्टर, जमींदार और लाला हैं,
म्यूनिसिपल्टी वाले तो लायल्टी का परनाला है।।
खान–बहादुर,राय बहादुर, कितने ही सरदार नबाव,

सब मिलजुल कर लूट रहे है, लायल्टी का खूब सबाब।।
ऐरा गैरा नत्थू खैरा सब पर इसकी मस्ती है,
लायल्टी लाहौर में अब भूसे से भी कुछ सस्ती है।।
केवल दो डिसलायल थे, वो एक लाजपत, एक अजीत,
दोनों गए निकाले उनसे नहीं किसी को है प्रीत।।

दूसरी तरफ चौ॰ मातूराम थे जिन्होंने हार नहीं मानी और विपरीत परिस्थितियों में भी सरदार अजीत सिह को सांघी गांव में अपने घर पर रखा। इससे अग्रेजी सरकार बहुत नाराज हुई। पंजाब के तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर, सर डेंजिल इब्बटसन ने उन्हें इनके मित्रों लाला लाजपतराय व सरदार अजीत सिंह की तरह देश से निष्कासित करने की सोची। पर चौधरी मातूराम के खिलाप गवाही देने वाला कोई नहीं मिला। [42] दूसरे उनके दोनों मित्रों के निष्कासन को लेकर बड़ा भारी बखेड़ा खड़ा हो गया था, जिसके कारण उन्हें छोड़ देना पड़ा था। इसलिए भी लेफ्टिनेंट गवर्नर ढीला पड़ गया।

1907 में भिवानी स्टेण्ड रोहतक पर एक जनसभा हुई थी, जिसे अनेक आर्य समाजी नेताओं सहित चौधरी मातूराम आर्य ने भी सम्बोधित किया था और सरकार को खुले शब्दों में चेतावनी दी थी। डी. सी. रोहतक के माध्यम से चौधरी मातूराम के लाला लाजपतराय व सरदार अजीत सिंह से सम्बन्ध विच्छेद कर लेने के लिए चेतावनी दी गई और उन्हें काला पानी भेजने की धमकी दी गई और काले पानी की सजा के आदेश की रिपोर्ट ऊपर लेफ्टिनेंट गवर्नर के पास भेज दी गई। चौधरी राजमल जैलदार ने इस अवसर पर विशेष तत्परता दिखाई। अंग्रेज सरकार से उस समय जैलदार सीधे मिल सकते थे। उन्होंने पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर के सामने चौ॰ मातूराम की जोरदार पैरवी की कि चौ॰ मातूराम देशद्रोही नहीं है; समाज सुधारक, ईमानदार और मेहनत करके खाने वाला किसान है।[43] चौ॰ राजमल जैलदार सांघी में विवाहित थे। चौ॰ मातूराम से भली भांति परिचित थे। आर्य समाज से जुड़े होने के कारण समाज सुधार की गतिविधियों में भाग लेते थे। चौ॰ मातूराम का नाम इससे ईर्ष्यावश जोड़ा गया है। गवर्नर की बात समझ में आ गई और चौ॰ मातूराम की काले पानी की सजा रोक

दी गई। लेकिन जैलदारी से बर्खास्त कर दिया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रजों की सैनिक भर्ती का विरोध (1914):—

1914 में प्रथम विश्व यद्धु आरम्भ हुआ । अंग्रेजों ने भारतीयों से सेना में भर्ती होने का आह्वान किया, लेकिन चौ॰ मातूराम ने कहा कि जर्मनी के राष्ट्रीय ध्वज में ( ) स्वास्तिक का निशान है।[45] अतः जर्मनी हमारा भाई है हमारे देश में भी ( ) स्वास्तिक को पूज्यनीय स्थान है। अतः हम अपने भाईयों के खिलाफ किसी भी सुरत में नहीं लड़ेगे।

हांलाकि कांग्रेस पार्टी व गांधी जी व सर छोटूराम भी अंग्रेजों की मदद में खड़े हो गए लेकिन कुछ आर्य समाजी इसके अपवाद रहे जिनमें चौ॰ मातूराम प्रमुख थे। सरकार ने चौ॰ मातूराम को अनेक प्रलोभन दिए। उनकी चंदा करने व भर्ती में मदद न करने पर डराया धमकाया पर मातूराम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

सरकार ने इसे गम्भीरता से लिया। युद्ध के दौरान ऐसी हरकतों को सरकार बगावत से कम नहीं मानती थी। रोहतक के डिप्टी कमीश्नर ने तो चौ॰ मातूराम को काले पानी (अण्डेमान) भेजने तक की सिफारिश कर डाली थी[46], पर सरकार ने युद्ध के दौरान इस बात का बतंगड़ बनाना ठीक नहीं समझा।

कांग्रेस के राष्ट्रीय अधिवेशनों में भागीदारी :—

सन् 1918 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद 34वाँ राष्ट्रीय अधिवेशन दिल्ली में हुआ था।[47] जिसमें रोहतक जिले से 5 डेलीगेट गए थे जिनमें चौ॰ मातूराम, चौ॰ देवी सिंह, चौ॰ पीरू सिंह,लाला श्याम लाल व दौलतराम गुप्ता इस अधिवेशन में प॰ श्रीराम शर्मा बतौर वालन्टीयर शामिल थे। रोल्ट एक्ट को काला बिल बताकर विरोध किया।

इसके बाद 1919 में जलियावाला बांग हत्याकांड के बाद कलकता में 4—9—1920 को लाला लाजपतराय की प्रधानता में राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ। इसी अधिवेशन में असहयोग आन्दोलन चलाने का निर्णय हुआ था। इसमें चौ॰ मातूराम, चौ॰ पीरू सिंह व चौ॰ देवी सिंह व प॰ नेकीराम शर्मा

शामिल थे।[48]

1922 के नागपुर अधिवेशन में भाग लिया था[49] असहयोग आन्दोलन बन्द होने से लाला लाजपत राय, पं. मोतीलाल नेहरू, चितरंजन दास, बाल गंगाधर तिलक, पं. मदनमोहन मालवीय, चौ. मातूराम, प. श्रीराम शर्मा , लाला दुनीचन्द अम्बालवी व प. नेकीराम शर्मा नाराज थे। लाल—बाल—पाल की तिकड़ी जो गर्म दल के नाम से जानी जाती थी ने अलग स्वराज पार्टी का गठन किया व लाला लाजपतराय पंजाब में इसके स्तम्भ थे।

विभिन्न स्वतन्त्रता आन्दोलनों में भाग :—

रौल्ट एक्ट का विरोध :— सन् 1919 में रोल्ट एक्ट के विरोध में गऊकर्ण तालाब—रोहतक में सफल काफ्रेस में मदद की व भाषण दिया और भूख हड़ताल की। सर छोटूराम, लाला श्याम लाल, देवीसिंह, हैडमास्टर बलदेव सिंह, मियां मुस्ताक हुसैन भी उपस्थित थे। इसके बाद रोहतक के आसपास के क्षेत्र में सरकारी सम्पत्तियों को नुकसान पहुँचाया गया। रोहतक व इसके आसपास के क्षेत्र व रेलवे लाईन की सुरक्षा के लिए दिल्ली बिग्रेड के जनरल आफीसर कमाण्डिग ने आर्डर निकाले व सांघी और खिड़वाली के लोगों ने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विशेष बहादुरी का परिचय दिया।[50] सांघी में चौ॰ मातूराम, खिड़वाली में चौ॰ टेकराम ने अगवानी की व अनेक गांवों में जनसभाओं को सम्बोधित किया।

असहयोग आन्दोलन में योगदान :—

6 नवम्बर 1920 को रोहतक में चौ॰ छोटूराम व उसके समर्थकों द्वारा प्रान्तीय नेताओं की मौजूदगी में जमीन के मालिक व शिक्षण संस्थाओं की मान्यता समाप्ति के प्रस्तावों का विरोध प्रकट किया और जनसभा में हगांमा कर दिया और जिला काग्रेस के प्रधान सर छोटूराम के साथ बहुमत ने उनका विरोध।[51] मुट्ठी भर लोग ही कांग्रेस में रह गए। छोटूराम ने प्रधान पद से त्यागपत्र दे दिया तो श्यामलाल जैन को प्रधान बनाया गया। लाला श्यामलाल, चौ॰ मातूराम, चौ॰ देवी सिंह, हैडमास्टर चौ॰ बलदेव सिंह, सरदार बूटासिंह आहलूवालिया व हाजी खैर मोहम्मद, दौलत राम गुप्ता

आदि मुट्ठी भर नेताओं ने गांधी जी की विचारधारा का समर्थन किया व आन्दोलन को समर्थन देने के लिए 8—11—1920 को गऊकर्ण तालाब पर जनसभा हुई जिसमें असहयोग आन्दोलन के प्रस्ताव पास किए गए।[52] 16 फरवरी 1921 को गांधी जी जाट स्कूल आए और विशाल जनसभा की जिसकी प्रधानता चौ॰ मातूराम जी ने की।

धर्मपत्नी मामकौर द्वारा असहयोग आन्दोलन :—

इस अवसर पर महात्मा गांधी की धर्मपत्नी श्रीमती कस्तुरबा गांधी की अध्यक्षता में महिलाओं की एक सभा हुई। चौ॰ मातूराम की धर्मपत्नी श्रीमती मामकौर गांव की स्त्रियों के साथ 'गांधी की आंधी आई, भाण रंग बरसैगा' गीत गाती हुई इसमें शामिल हुई थी।[53]

इनके अतिरिक्त स्वदेशी आन्दोलन, नमक आन्दोलन, दलित सम्मेलन व किसान काफ्रेंस आदि के माध्यम से समाज सुधार व स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया।

राजनीति की चुनावी प्रक्रिया में हिस्सा :—

सन् 1923 में चौ॰ मातूराम ने पंजाब विधान परिषद का चुनाव उत्तर पश्चिम रोहतक ग्रामीण हल्के से चौ॰ लाल चन्द के खिलाफ लड़ा। लेकिन, चौ॰ लाल चन्द गल्त तरीके अपनाकर चुनाव जीत गए व पंजाब में कृषि मंत्री बने। चौ॰ मातूराम ने कोर्ट में चौ॰ लालचन्द के खिलाफ याचिका डाली, लाला लाजपत राय वकील थे। केस में चौ॰ मातूराम की जीत हुई व लाल चन्द को मंत्री पद से हटाया गया।

सन् 1924 में चौ॰ मातूराम जिला बोर्ड के सदस्य बने व अनेक जनहितैषी कार्यक्रम किए। रोहतक जिला कांग्रेस के प्रधान भी रहे।[55]

चौ॰ छोटूराम के कैरियर निर्माण में योगदान :—

सन् 1923 में चौ॰ मातूराम द्वारा चौ॰ लालचन्द के खिलाफ चुनाव याचिका करने से पंजाब राजनीति में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। चौ लालचन्द कृषि मंत्री थे। चौ॰ लालचन्द को न्यायालय में हारने से मंत्री पद से हटाया गया व लैफ्टीनेन्ट गवर्नर मेल्कोलम हैली ने चौ॰ छोटूराम को

मंत्री बनाया [56] और उनकी राजनीतिक पारी की शुरूआत हुई। उनके जनहितैषी कार्यो से पंजाब की राजनीति में तूफान आ गया। इस प्रकार से चौ॰ मातूराम का सर छोटूराम के कैरियर निर्माण में योगदान रहा।

पंजाब कांग्रेस की राजनैतिक काफ्रेसों में योगदान :—

पंजाब की कई राजनैतिक काफ्रेस रोहतक जिले में हुई। चौ॰ मातूराम ने सब से बढ़—चढ़ कर भाग लिया। किसान काफ्रेंस की और किसानों को कांग्रेस से जोड़े रखा।

राष्ट्रीय अधिवेशनों में पुत्रों को भेजना :—

जब अस्वस्थता के कारण स्वयं नहीं गए तो अपने ज्येष्ठ पुत्र बलबीर सिंह व मझले पुत्र रणबीर सिंह को 15 वर्ष की आयु में ही कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में भाग लेने हेतू भेजा।[57] इसी अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास हुआ था।

रणबीर सिंह को आन्दोलन में झोंका :—

रणबीर सिंह, जो डी. सी. आफिस में नौकरी करते थे, के अनुरोधा पर उनके राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में बढ़—चढ़ कर भाग लेने को कहा।[58]

मृत्यु :—

77—78 वर्ष की आयु में 14 जुलाई 1942 को देहान्त हो गया। इनके देहान्त से सम्पूर्ण आर्य जगत को, शिक्षण संस्थाओं, स्वतन्त्रता सेनानियों के लिए अपूर्णनीय क्षति थी।[59]

संदर्भ

1. हुड्डा जगत सिंह :— देहात रत्न चौधरी मातूराम आर्य जीवन वृत्त;1865—1942द्ध 2009
   प्रकाशक : अनिता हुड्डा 655/5 न्यू प्रकाश नगर, तहसील टाउन, पानीपत
2. वही पृ. 60

3. वही पृ. 52
4. वही पृ. 53
5. वही पृ. 62
6. सिंह रणबीर :– स्वराज के स्वर (2006) होप इंडिया पब्लिकेशन, गुडगांव पृ.
7. हुड्डा जगत सिंह – वही पृ. 123
8. यादव डाक्टर बी.डी. एण्ड सिंह ज्ञान :– फ्रीडम स्ट्रगल इन हरियाणा एण्ड द कन्ट्रीब्यूशन ऑफ चौ॰ रणबीर सिंह
प्रकाशक : चौ॰ रणबीर सिंह शोध पीठ, एम.डी.यू. रोहतक पृ. XXIII,
– श्रंद्धाजलि – महानायक चौ॰ रणबीर सिंह के चरणों में।
प्रकाशक : चौ॰ रणबीर सिंह शोध पीठ, एम.डी.यू. रोहतक पृ.20
9. हुड्डा जगत सिंह – वही पृ. 130 एवं जाट शिक्षण संस्थाएं, रोहतक का संक्षिप्त इतिहास एवं उपलब्धियाँ फरवरी 2006, रोहतक पृ. 3
10. जाट शिक्षण संस्थाऐं, रोहतक का संक्षिप्त इतिहास एवं उपलब्धियाँ फरवरी 2006, रोहतक पृ. 8
11. हुड्डा जगत सिंह – वही पृ. 136–137
12. वही पृ. 131–132 ;दस्तावेज
13. वही पृ. 141
14. सिन्धु विरेन्द्र :– युगदृष्टा भगतसिंह (1992) राजपाल एण्ड सन्स – कश्मीरी गेट, नई दिल्ली
15. हुड्डा जगत सिंह – वही पृ. 144, द ट्रिब्यून 19 फरवरी 1921
16. वही पृ. 151
17. वही पृ. 154
18. जाखड़ रामसिंह :– चौ. बलदेव सिंह जीवन परिचय पृ. 35, रानी नीलम :–लघु शोध ग्रन्थ – औपनिवेशक हरियाणा में आर्य समाज, डॉ. रामजीलाल के योगदान में एक अध्ययन पृ. 73
19. यादव डाक्टर बी.डी. एण्ड सिंह ज्ञान :– पृ.18, हुड्डा जगत सिंह – वही पृ.
20. सिन्धु विरेन्द्र :– युगदृष्टा भगतसिंह (1992) राजपाल एण्ड सन्स – कश्मीरी गेट, नई दिल्ली

21. हुड्डा जगत सिंह – वही पृ. 165–167, सिंह सुल्तान :– चौ॰ रणबीर सिंह एक व्यक्तित्व कुछ अनछुए पहलू
प्रकाशक : चौ॰ रणबीर सिंह शोध पीठ, एम.डी.यू. रोहतक पृ . 23
22. हुड्डा जगत सिंह – वही पृ. 165–167, सिंह सुल्तान पृ. 24
23. स्मारिका – महाविद्यालय मटिण्डु गुरूकूल पृ॰ 32–33
24. सिंह सुल्तान पृ. 24–25
25. हुड्डा जगत सिंह – वही पृ.175
26. वही पृ. 182–183
27. वही पृ. 179
28. वही पृ. 180–181
29. वही पृ. 94
30. वही पृ. 116–125
31. वही पृ. 72–73
32. वही पृ. 181
33. वही पृ. 182
34. वही पृ. 181
35. वही पृ. 186–187
36. वही पृ. 81
37. सिन्धु विरेन्द्र पृ.
38. सिन्धु विरेन्द्र पृ.
39. सिंह सुल्तान पृ. 29
40. सिन्धु विरेन्द्र पृ.
41. यादव डाक्टर बी.डी. एण्ड सिंह ज्ञान :– पृ.32, 25
42. सिंह सुल्तान पृ. 29
43. हुड्डा जगत सिंह – वही पृ.81, शान्ति धर्मी :– सितम्बर 2009 सुभाष चौक, जींद
44. हुड्डा जगत सिंह – वही पृ.82,

45. सिंह रणबीर पृ. 38
46. सिंह रणबीर पृ. 38
47. हुड्डा जगत सिंह – वही पृ.83,
48. हुड्डा जगत सिंह – वही पृ.92,
49. वही पृ. 92
50. वही पृ. 85
51. वही पृ. 87
52. वही पृ. 87
53. सिंह सुल्तान पृ. 29
54. हुड्डा जगत सिंह – वही पृ.94–95
55. वही पृ. 181, सिंह रणबीर पृ. 52
56. वही पृ. 96, सिंह रणबीर पृ. 52, सिंह सुल्तान पृ. 32
57. सिंह रणबीर पृ. 57
58. हुड्डा जगत सिंह – वही पृ.102
59. वही पृ. 197

INDIAN VOYAGE FROM A DOMINION STATE TO A REPUBLIC ONE: CONTRIBUTION OF CH. RANBIR SINGH

Dr. Raj Kumar
Lecturer,
Govt. Senior Secondary School,
Jamawari (Hisar), Haryana.

Though, British Rule in India ended on 15th August, 1947, technically the 'appointed day'[1] can not be considered as complete freedom for India. The Indian Independence Act of 1947 which was enacted by the British parliament,created two Dominion States namely India and Pakistan.[2] These states existed until the promulgation of their own individual constitutions. In the case of India, this occurred on 26th January 1950 and the Republic of India came into existence. During the dominion phase i.e. from August 15, 1947 to January 25, 1950, the British monarch remained the ceremoniol head of the Union of India, and was represented by a Governor General.

The real happiness and a matter of great satisfaction for Indians was that our Constitution was written and debated by the Indians and for the Indians. This task was given to a constituent Assembly. As to its composition, members were chosen by indirect election by the members of the Provincial Legislative Assemblies, according to the scheme recommended by the Cabinet Mission. The arrangement was that 292 members were elected through the Provincial Legislative Assemblies; 93 members represented the Indian Princely States; and 4 members represented the Chief Commissioners' Provinces. The total membership of the Assembly thus was to be 389.[3] However, as a result of the partition under

the Mountbatten Plan of 3rd June, 1947, a separate Constituent Assembly was set up for Pakistan and representatives of some provinces ceased to be members of the Assembly. As a result, the membership of the Assembly was reduced to 299. The Punjab legislatures elected 28 members -16 Muslims, 8 Hindus, and 4 Sikhs. After some time, Muslim members belonging to the Muslim League withdrew from the Assembly. In the new situation that developed then, some other members elected to the Constituent Assembly had to stay back at the provincial level. As a result, a fresh election was held on July 10, 1947 when the members of the Punjab Legislature elected 12 members for the Constituent Assembly. Ch. Ranbir Singh[4] was one of the 12 elected members.[5] The Government of India issued a notification in this regard and along with other members of Punjab, Ch. Ranbir Singh signed in the register and became a member of the August Assembly.[6]

The Constituent Assembly sat for the first time on December 9, 1946 as it embarked on the high adventure of giving shape, in the printed and written words, to a nation's dreams and aspirations.[7] The Constituent Assembly took almost three years (two years, eleven months and eighteen days to be precise) to complete its historic task of drafting the Constitution for Independent India. During this period, it held eleven sessions covering a total of 165 days.

In the backdrop of these facts, the present analytical study discusses at length the contribution made by Ch. Ranbir Singh in the proceedings of the Constituent Assembly of India ranging from peasantry to national integration. The contribution of Ch. Ranbir Singh in the Constitution-making process has been unvoiced so far. Hence, this humble effort tries to fill the gap.

Debates to write the future of India whether initiated or participated by Ch. Ranbir Singh have been grouped into six exclusive categories which include matters related to –

a) National Integration

- earlier decision upon National Anthem, National Flag and National Language
- protested reservation of parliamentary seats for minorities or sectarian groups
- supported reservation for backward strata of society with new nomenclature as peasants and wage-earners

b) Ruralites

- disfavoured reserving legislative seats on urban-rural distinction.
- favoured joining rural constituencies with their urban counterparts
- setting up of Public Service Commissions

c) Peasantry

- fixing the economic price of agricultural products
- continue the Alienation Act to do away with the zamindari system
- profession tax
- pests problem in the concurrent list
- execution of irrigation and hydro-electric projects

d) Protection of Cows

e) Finances of the Provinces

- land revenue on the same basis as the income tax
- special concession to East Punjab

f) **Concern for Haryana**

- merging Delhi with Punjab
- formation of new province

The wide range of issues debated by the visionary leader in the Constituent Assembly serve to bring to fore the social, economic, cultural, and political agenda close to the heart of Ch. Ranbir Singh.

National Integration

Ch. Ranbir Singh was in favour of an earlier decision upon National Anthem, National Flag and National Language before the motion of the Draft Constitution itself by Dr. B.R. Ambedkar. He accrued the advantage as people would have come to know which language was to be their national language and which language they should seek to learn. However, conceding with Maitraji, he highlighted the problem to be faced by Deccan people in learning the national language i.e. Hindi at once.[8]

Besides, he showed strong apprehension against reservation of parliamentary seats for minorities or sectarian groups. He contended that our aim today is to set up a secular state - a non-denominational State and it would defeat the realisation of ideals which the people of India had in view. On the contrary, he supported reservation for backward strata of society as so-called Harijans with a new nomenclature –peasants and wage-earners.[9]

Ruralites

Being a staunch follower of Gandhian ideology and a villager as well, Ch. Ranbir Singh suggested that in building the nation, the villagers should get their due share and they should have their influence in every sphere.

He argued that the village people cannot be blinded to the fact that the power of the press and the intelligentsia was centered in the cities alone, and that the villagers had little say in the affairs of the nation. At that time, a distinction had to be maintained in our country between the rural and the urban seats. He urged the House to do away with the practice of reserving legislative seats on urban-rural distinction.[10]

About the delimitation of constituencies under Article 327, he did not favour joining rural constituencies with their urban counterparts because it would be perpetuating serious injustice against those people who can neither express themselves, nor have any press or leadership.[11] Debating the setting up of Public Service Commissions to keep appointments away from day to day politics, he saw no point in open competition under the prevailing circumstances where ruralites will certainly segregated to disadvantaged situation as compared to their urban competitors. In his view, there were two ways of setting this right; one method was that in the public services a certain proportion should be reserved for the candidates from the countryside and they should be allotted the reserved number of posts in the services, and for those posts only persons from among the rural population should be allowed to compete. The other method was that while appointing the members of the Public Service Commissions, it should be particularly kept in mind that at least 60 to 70 per cent of the members should be such as may sympathize with the rural people and understand their difficulties.[12]

Peasantry

Ch. Ranbir Singh emphasized that without fixing the economic price of agricultural products, there could be no stability in the economic life of the agriculturists and it was very necessary to make it stable.[13]

He favoured to continue the Alienation Act, according to which certain classes were debarred from acquiring land by law. Simultaneously, he advocated that the Harijans and other persons who were actually the tillers of the soil should have the right to acquire land. In his view, this would help doing away with the zamindari system in our country.[14]

Crying over the article on profession tax, he stated that the people of meagre income have to pay profession tax as the poor Harijans have to pay twenty to twenty-four rupees on account of profession tax, though their capacity does no permit them to pay even two or three rupees, while the rich industrialists and factory owners, who are capable of paying far more than the Harijans, do not pay their full share. The maximum limit of profession tax prescribed under this article was Rs. 250. It would operate inequitably against the poor people.[15]

Concerning over the pests problem that was inter-provincial by nature, He requested the House that 'pests' should particularly be included in the concurrent list. Secondly, India is an agricultural land and there was shortage of food at that time in this country. This subject was directly connected with agriculture and for this consideration too it ought to be placed in the concurrent list.[16]

He also emphasized to insert in the Constitution that in discharge of the primary duty of the state to provide adequate food, water and clothing to the nationals and improve their standard of living the state shall endeavour:

> as soon as possible to undertake the execution of irrigation and hydro-electric projects by harnessing rivers and construction of dams and adopt means of increasing production of food and fodder.[17]

Protection of the Cows

Along with Pandit Thakurdass Bhargava, Ch. Ranbir Singh jointly moved a resolution on slaughter of cows in the Congress party and at that time it was unanimously adopted. But unfortunately no mention of it has been made in our Constitution. He humbly submitted that resolution should be carried out as a whole:

In discharge of the primary duty of the state to provide adequate food, water and clothing to the nationals and improve their standard of living the State shall endeavour:

> to preserve, project and improve the useful breeds of cattle and ban the slaughter of useful cattle, specially milch and draught cattle and the young stocks."[18]

Finances of the Provinces

Ch. Ranbir Singh submitted that the finances of the provinces should be on a sound basis. He asserted that there was not a single pie of the income of the peasants who earn it by his sweat and blood, which is not taxed. If he cultivates even a single bigha of land he has to pay a tax on it. As compared to this even an

income of rupees two thousand of other people of India is not taxed. This is a great injustice to the peasant, particularly in a country where they dominate and have a large population. It should rather be considered how the continuance of this injustice in a country of peasants would look like? He, therefore, wanted that the provincial governments should realize land revenue on the same basis as the income tax; for this purpose their finances should be strengthened.

He observed that Punjab was partitioned as a consequence of the Freedom of India and partition completely dislocated the entire administration of this province. To bring it again in line with the other provinces it is necessary that at least for the next ten years, in so far as its finances are concerned, special concession should be made to East Punjab.[19]

Concern for Haryana

Advising Deshbandhu Gupta about the future constitutional set-up for Delhi, Ch. Ranbir Singh urged him to give up his demand of autonomous Delhi and agree on the idea of merging Delhi with Punjab. It will, in future, press for their joint demand for a non-Punjabi Province. Moreover, almost all the administrative services of Delhi were manned by personnel on from deputation Punjab. If the opinion of the people of Delhi, of course excluding New Delhi, is taken, he claimed that more than 60 to 70 per cent of the people will vote for Delhi being joined to East Punjab.[20]

Over the formation of new province, he protested the amendment initiated by Dr. Ambedkar. The Amendment read as:

> if a minority, whether based on religion or caste, which is not in majority in any state or any area thereof might undoubtedly secure such alteration in the boundaries of a State as it chooses through the President or the Government of India.

He feared that the amendment would reduce the chance of success of any community which is in majority in any area but happens to be in minority in that state. He feared so because, according to this amendment, the matter would be referred to the state Legislature for consideration and as the people of that area would be in minority in the state although they may be in majority in their own area, it would naturally be recorded that only a few members of the State Legislature desired a change in the boundary of the State. His implied view was that the new provision would definitely harm the interest of the territory of Haryana. So he simply wanted that it should be changed so as to include without any doubt the provision that when the Centre consults the provincial legislature the opinion of the majority of the representatives of the territory, which wants to separate itself and join another province, should also be on record and that their recorded opinion should appear before the Central Assembly so that it may know what that particular territory desires.[21]

Conclusions

Taking in account the ongoing deliberation, it can safely be inferred that:

- Ch. Ranbir Singh was in earnest favour of early settlement of crucial issues like National Anthem, National Flag and National Language that will facilitate in promoting the integrity of India. Besides, to cherish the secular sentiments

in the Constitution of India, he successfully voiced against reservation of parliamentary seats for minorities or sectarian groups.

- ❖ He made sincere efforts to bring the rural India at par with the urban. For this he not only urged the House to do away with the practice of reserving legislative seats on urban-rural distinction but convinced the same to shun away from joining rural constituencies with their urban counterparts. Also, he felt helplessness of rural unemployed youths while competing with the well-to-do convent educated youngsters and demanded some sort of discriminate favour for the ruralites in recruitments.
- ❖ Ch. Ranbir Singh championed the cause of poor farmers also be it raising the demand to fix the economic price of agricultural products, or supporting the continuation of the Alienation Act. He showed his reservation over the profession tax also which seemed to him discriminatory as compared to the share of rich factory owners.
- ❖ He considered pest problem inter-territorial and rightly proceeded to include the subject in the concurrent list. He contended in the Assembly and urged the State to undertake the execution of irrigation and hydro-electric projects by harnessing rivers and construction of dams and adopt means of increasing production of food and fodder.
- ❖ He turned the attention of the House towards the protection of cows and other milch animals and reiterated it to preserve, project and improve the useful breeds of cattle and ban the slaughter of useful cattle, specially milch and draught cattle and the young stocks.
- ❖ Keeping in view the lurching fear of the financial obligations, he was in favour of strong and sound economy of the provinces. Hence, he demanded special economic concessions for the province of Punjab.
- ❖ As , Ch. Ranbir Singh kept the concerns of Haryana at top slot. Arguing with Deshbandhu Gupta who wanted separate Delhi, he not only convinced him to wait for some time for his demand but advised the House also to insert a provision of taking the opinion of the majority of a particular area but minority in its respective assembly while forming a new province.

NOTES AND REFERENCES
(Footnotes)

1. The 15th August, 1947 had been referred as 'Appointed Day' under the Indian Independence Act, 1947 passed by the British Parliament to grant India and Pakistan with dominion status.
2. Section 1*, Indian Independence Act, 1947.*
3. B.L. Grover and Alka Mehta, *Modern Indian History*, S. Chand & Company Ltd.: New Delhi, 2009, p. 421.
4. Ch. Ranbir Singh was born at Sanghi village in Rohtak district on 26 November, 1914 and passed away on 1 February, 2009 as quoted from B.D.Yadav and Gian Singh, *Freedom Struggle in Haryana and Chaudhry Ranbir Singh*, Ch. Ranbir Singh Chair, M.D.University: Rohtak, 2010, pp. 39 and 244.
5. K.C.Yadav and Gian Singh, *Making of Our Constitution,* Ch. Ranbir Singh Chair, M.D.University: Rohtak, 2009, p. 26.

6. Ch. Ranbir Singh, *Swaraj Ke Swar*, Hope India Publications: Gurgaon, 2005, p.113.
7. Pt. Jawaharlal Nehru as quoted by Sankar Dayal Sharma, the then President of India in his address to the Parliament of India on the occasion of the 50th Anniversary of the first sitting of the Constituent Assembly.
8. Constituent Assembly Debates, vol. VII, November 6, 1948. For details search www.parliamentofindia.nic.in/ls/debates/debates.htm
9. Ibid.
10. Ibid.
11. Constituent Assembly Debates, vol. XI, November 24, 1949. For details search www.parliamentofindia.nic.in/ls/debates/debates.htm
12. Constituent Assembly Debates, vol.IX, August 22, 1949. For details search www.parliamentofindia.nic.in/ls/debates/debates.htm
13. Constituent Assembly Debates, vol. VII, November 23, 1948. For details search www.parliamentofindia.nic.in/ls/debates/debates.htm
14. Ibid.
15. Constituent Assembly Debates, vol. IX, August 9, 1949. For details search www.parliamentofindia.nic.in/ls/debates/debates.htm
16. Ibid.
17. Constituent Assembly Debates, vol. VII, November 6, 1948. For details search www.parliamentofindia.nic.in/ls/debates/debates.htm
18. Ibid.
19. Ibid.
20. Constituent Assembly Debates. Vol. IX, August 2, 1949. For details search www.parliamentofindia.nic.in/ls/debates/debates.htm
21. Constituent Assembly Debates, vol. VII, November 17, 1948. For details search www.parliamentofindia.nic.in/ls/debates/debates.htm

खण्ड–7

राष्ट्रवादी चिन्तन व आर्य समाज

Arya Samaj & Genesis of Freedom Movement in Haryana

Dr. Anupma Arya
Associate Professor
P.G. Deptt. of Pol Science,
Arya Girls College, Ambala Cantt.

This paper aims at highlighting the importance, genesis, ideology and character of the Arya Samaj as a religious move-ment. It further seeks to answer the following questions: How far is the Arya Samaj different from other Hindu sects? How far can it be described as a distinct religious order and how far can it be viewed as a reform movement or a protest move-ment within Hinduism? The answers of these questions are essential for an in-depth understanding and analysis of the role of the Arya Samaj in the of freedom movement in Haryana.

The Arya Samaj movement, one of the most important socio-religious and reform movements' that emerged in India in the 19th century as a response to the process of Westernization initiated by the British rule in India. Although the Brahmo Samaj founded by Raja Ram Mohan Roy was the first socio-religious and reform movement of that century. The Arya Samaj had a far more momentous impact on the Hindu society than the Brahmo Samaj, the Prarthana Samaj, the Dev Samaj, the Ramkrishna Mission and. other such movements which had preceded it." The greater success of the Arya Samaj than them was due to its relatively more radical ideology and militant approach in comparison with the movements. Its nationalistic character also

made it more popular than. Although it had emerged mainly to counter the increasing influence of the Christianity on the Hindus, its activities had significant consequences for the Muslims and the Sikhs of India in general and Punjab (which included Haryana) in particular.

The Arya Samaj was founded by a Gujrati youth, Mul Shanker, who later on adopted the name of Swami Dayanand after becoming a Sanyasi. He was born in a Brahmin family at Tankara in the princely state of Morvi situated in the Gujarat in AD1824. He had undergone a thorough schooling in the traditional orthodox Sanatan Dharma tradition owing to his family background. But this highly inquisitive youth became disenchanted with the religious ideology of the Sanatan Dharma due to various incidents which brought about a dramatic change in his entire thinking. These incidents included climbing of a mouse on the idol of Lord Shiva on the eve of *Shiuratri:* This caused restlessness in his mind and forced him to quit his home in search of truth and learning from various religious scholars. This quest made him to become a disciple of Swami Virjanand of Mathura. There he imbibed the fundamentals of his ideology from AD1860 to AD1863 and acquired a great deal of knowledge about the Indian culture. After that he developed a crusading zeal of a missionary and decided to undertake the task of reforming the Hindu religion.

He delivered lectures and participated in debates and discussions at various places all over India for this purpose. After realizing the need for launching a movement for achieving his

goal, he decided to set up the institution of the Arya Samaj on April 10, 1875 at Bombay,

The ideology of the Arya Samaj has been summed up in the following principles or commandments that had been adopted by the Samaj on June 24, 1877 at Lahore in Punjab.

1. God is the primary source of all true knowledge and of all that is known by its means.
2. God is all-truth, all knowledge, all beatitude, incorporeal, almighty, just, merciful, unbegotten, infinite, unchange-able, beginningless, incomparable, the support and lord of all, all pervading omniscient, imperishable, immortal, fearless, external, holy and creator of the universe. He alone is worthy of worship.
3. The Vedas are the books of all true knowledge. It is the paramount duty of all the Aryas to hear, read and to recite them to others.
4. All persons should remain ever-ready to accept the truth and to renounce untruth.
5. All actions ought to be performed in conformity to virtue, i.e., after due consideration of right and wrong.
6. The chief object of the Arya Samaj is to do good to mankind, i.e., to ameliorate physical, spiritual and social condition of all men.
7. All ought to be treated with love, justice and with due regard to their merit.
8. Ignorance ought to be dispelled and knowledge must be diffused

9. No one ought to remain contented with his personal progress. One should count the progress of all as one's own.
10. In matters, which affect the well being of all, the individual should subordinate his personal linkings.

The overview of the above stated basic principles of the Arya Samaj makes it clear that it aimed at modifying or reinter-preting the Hindu tradition. This also shows that the Samaj believed in the supremacy of God and stood for its worship. However, it opposed the *Puranic view* of God which recognises many forms of God and also believes in the reincarnation of God in the form of an *Avatar,* or the birth of God in human form. Moreover, instead of preaching the worship of many Gods and Goddesses, the Samaj believes in monotheism. It resembles the Islam, the Christianity and the Sikhism in this context. However, it does not accept the Islamic concept of Prophet or the Christian concept of accepting Christ as a representative of God or the Sikh concept of *Gurus.* Like the Sikhism, the Christianity and the Islam it could also be viewed as a religion which lays stress on the acceptance of particular book as the basis of religion[1].

This paper is a modest attempt to describe and analyze the role of the Arya Samaj in the freedom movement of Haryana. This is being done because the Samaj had played an important role in bringing about political awakening in Haryana in the colonal period.

The areas which constitute the present state of Haryana had come under the British rule through the "Treaty of Sirji Anjangaon' on December 30, 1803 that had been signed by

Marathas with the East India Company after then defeat in it. These areas had been initially included in the Bengal presidency but subsequently these were made a part of the North Western Province (present U.P.) when it was created in AD 1853. Later on, these were tagged with the Province of Punjab in AD 1858 by the British allegedly as a punishment for the participation of the princes and people of Haryana region in the Revolt of AD 1857 also known as the First War of Indian Independence by the nationalist historians and as the Sepoy Mutiny by their British counterparts[2]. This step was taken by the colonial administrate inspite of the fact that Haryana region differed from Punjab linguistically, culturally and socially and it was akin to the areas of the western U.P. in these respects.

Although the Arya Samaj was basically a social and religious reform movement in Hinduism, the process of political awakening in Haryana was initiated by it through the creation of social awakening in the region. This was brought about by it in the region through the promotion of social reforms. It pleaded for widow remarriage. The Arya Samaj also advocated discarding of the undesirable and evil traditions and unhealthy rituals that were being practiced by the Hindus of Haryana during those days. It also opposed untouchability and started making efforts for improving the condition of depressed sections of Hindu society. The distortions which had degenerated the Varna system were also sought to be rectified by it. The Samaj pleaded that the Varna status of a person should be determined on the basis of merit and not on birth. It also launched a vigorous campaign against the

widespread superstitions and irrational beliefs that were prevalent among the Hindus of the region at that juncture[3].

Being an agriculturist caste dominated region, the 'story of Jat' in Chapter XI of the *Satyarth Prakash*, appealed to them very much. It particularly attracted the Jats who were the most numerous caste among them. That is why the agriculturists caste in general and the Jats in particular were influenced by the Arya Samaj[4].

The Arya Samaj used both traditional and the modern idioms for spreading its message. It also organized annual conferences, weekly satsangs, morning processions (Prabhat Pheries) and used preaches and singers (Bhajhiks) and conducted debates (Shartraths) for this purpose. Its appeal for the protections of cow and encouragement to eat vegetables touched their hearts. The efforts of the Arya Samaj to bring social reforms in Haryana played an important role in creating social awakening in the region[5].

The Arya Samaj also launched a programme for combating the increasing influence of western ideas on the educated youth who had begun to perceive the western civilization as a superior civilization and the Indian civilization as an inferior one. As a result they had lost the feelings of national pride and developed a slavish mentality. The Arya Samaj restored their national pride by highlighting the ancient glory of the Aryan civilization.8 This role of the Arya Samaj was instrumental in inculcating political awakening and in developing national consciousness[6].

It also contributed in the creation of national consciousness in Haryana by spreading the teachings of its founder Swami Dayanand who, had declared in clear cut terms that better government is no substitute for self government. Besides he had openly preached that all out efforts should be made to destroy the oppressors. Although Swami Dayanad did not use the term British for the oppressors, he certainly had the colonial rule in mind while making these remarks. His teachings went a long way in injecting the spirit of nationalism in Haryana and created conditions that helped the genesis and development of national movement in the region[7].

The Arya Samaj also contributed to the growth of nationalism in Haryana through its powerful propaganda to check the spread of the Christianity in the region. It was able to create an impression that the Vedic Dharama, the original form of the Hindu religion, was superior to the Christianity. Since the Christianity happened to be the religion of the British, the Arya Samaj also succeed in spreading anti-British feelings among the Hindus in general and its own followers in particulars by spreading anti-Christianity feelings in them. This helped in strengthening the sentiments of nationalism in a substantial segment of the Hindus of Haryana[8].

Besides the religious and social spheres, some efforts were made by the Arya Samaj in education also. Many 'Gurukuls' were set up by it in the area. The very aim of these institutions was to impart traditional education to the male & female students for creating feelings of patriotism in them. These Gurukul

indoctrinated the ideology of Arya Samaj among them. They also insisted on the wearing of traditional Indian dress and the adoption of other symbols of Vedic religion by their students. Moreover, the cult of nationalism too was preached by them[9].

However, it is pertinent to point out at this place that the process of political awakening and growth of national consciousness which was started by the Arya Samaj in the western and the central Punjab in the last quarter of the 19th century began in Haryana region only in the early 20th century. Moreover, its pace was slower in this region than that in the rest of Punjab province. This was due to the fact that Haryana region was economically, socially and culturally behind than other parts of Punjab. But the process of political awakening and growth of national consciousness could, however, gather movement in Haryana region only after the transfer of India's capital from Calcutta to Delhi in 1912. The emergence of Delhi as an important educational commercial and political centre, after it became capital of India, had a significant bearing on Haryana due to its geographical proximity to Delhi[10].

The contribution of the Arya Samaj in creating political consciousness in Haryana region and in promoting the growth of national movement in Haryana is evident from the fact that most of the early leaders of Congress from the Arya Samaj background. The leadership of Arya Samaj from the Haryana was also active in mobilizing mass support for the agitation against the Rowlatt–Act in the region in 1919. Swami Shraddhanand, a Delhi based Arya Samajest leader, played the most important role in it. He

was ably assisted by the Jat Arya Samajist leaders of Haryana like Zaildar Matu Ram, Chhotu Ram, Master Baldev Singh, Piru Singh. As a result, of their efforts, *Hartals* (strikes) and protest meetings were organized at many town of the region. This agitation, however, was not confined to the towns of Haryana, it had also spread in its rural areas[11].

It was in recognition of his role in the anti-Rowlatt Act agitation that Swami Shraddhanand was appointed as the Chairman of the Reception Committee for the annual session of the Indian National Congress held at Amritsar in December 1919. Another important Arya Samajist leader from Haryana Lala Murlidhar of Ambala was made its Vice Chairman.[12]

But the Arya Samajists of Haryana got divided on the eve of the Non-Cooperation Movement theat had been launched by the Indian National Congress under the leadership of Mohatama Gandh in 1920. While Zaildar Matur Ram, Master Baldev Singh and Peeru Singh gave whole hearvend support to and it, Chhotu Ram opposed it vehmently. He argued that the non-payment of land zenenue would deprive the peasantry from its land which will be co,[seated nu tje Governmnent and auctimed. This This wrakened the national movement to some extent.[13]

Thinatural movement got futher weakened at the time of the launching of the Civil Disobedience Movemnt for the achivement of Puran Swaraj (Complete Independence) in 1932 because the hard of the Unionist Patry of Chhotu Ram had been shengthaned by that time, by progeeting itself as a champion of the peasantry. This is endent form the landside irrelony of the

Unionist Party in 1937 election and the Punjab Legislative Assembly. But in spite of this, Zaildar Matu ram and later Arya Samaj leaders from Haryana, whose names have already been mentioned, kept the flame of the national movement burning gainst heavy odds.[14]

But the Arya Samaj samajist leaders like Chaudhry Ranbir Singh were able shangthan the national movement in Haryana on the eve of the Indidual Satyagraha in 1940 despute the enactment of the so called Golden Laws by Chhotu Ram for purdmg relief the peasantry fine economic difficulties caused the peple by the War on the one hand and on account of the adoption of the Resolution for Pakistan by the Muslime league on the other hands.[15]

The Arya Samajist and other leaders of the Congress like Pandi Sri Ram Sharma were further able to shangthen the national movement at the time of the Quit India Movement in 1942 because the possibility of the attainment of independence on the one hand and the threat of the partition due to the demand for Pakistan had made the Unionist Party rather irrelevant. The role of the INA, in which the peasantry of Haryana was in a sizeable shength, further shengthened the national movement. The vacuum of leadership that had emeiged in the Unionist Party after the death of Chhotu Ram too pirved helpful to the Congress in shanthaning the national movement. This found reflection in the thumping success of the Congress in the 1946 election Punjab Legislative Assembly in genual and the success of its Arya Samajist leaders like Prof. Sher Singh and Sumer Singh in particular.[16]

Thus we may conclude that it was the impact of the Arya Samaj that lead to the genesis of the national movement in Haryana in the just qurter of the 20th century. But the movement was weakened after one of the important leaders of the Samaj quit the Congress in 1920. But leaders like Zildar Matu Ram kept in alive Lala on the changed political situation after the only leader of the second world war enabled Chaudhry Ranbir Singh and other shengthan.

References

1. For details refer to Chapter-3, *The Arya Samaj-A Profile*, in Anupma Arya, *Religion and Politics in India*, KK Publications, Delhi, 2001 pp. 32-65.
2. Refer to K.C. Yadav, *The Revolt of 1857 in Haryana*, Manohar Publications & Distributors, New Delhi, 1977.
3. Anupma Arya, op. cit., pp. 66-68.
4. Ranjit Singh, *Haryana Ke Arya Samaj Ka Itihas* (Hindi), Arya Pratinidhi Sabha, Haryana, Rohtak, 1976, pp. 12-17.
5. Anupma Arya, op. cit., p. 67.
6. Ibid, pp. 68-69.
7. For details refer to K.C. Yadav and K.S. Arya, *Arya Samaj and Freedom Movement, 1875-1918*, Vol. 1, Manohar Publications, New Delhi-1988.
8. Anupma Arya, op. cit. p-68.
9. Dr. Bhavani Lal, *Arya Samaj-Atit Ki Uplabdiyan Tatha Bhavisya Ka Prashan*, Arya Pratinidhi Sabha, Punjab, Jalandhar, 1978, pp. 90-94.
10. M.M. Kishore, 'The Beginnings; in Pardaman Singh & S.P. Shukla (eds), *Freedom Struggle in Haryana and the Indian National Congress*, 1885-

1985, Haryana Pradesh Congress (I) Committee, Chandigarh, 1985, p-29.

11. Ranjit Singh, op. cit., p-12.
12. Anupma Arya, op. cit., p-73.
13. Madan Gopal, Sir Chhotu Ram, A Political Biography, B R Publshing Corporation, Delhi, 1977, pp 42-43
14. Prem Choudhry, Punjab Politics, the Role of Sir Chhotu ram, Vikas Publishing House, New Delhi, 1984, pp 130-138.
15. Dr. B.D. Yadav and Gian Singh, Freedom Struggle in Haryana and Chaudhry Ranbir Singh, Chaudhry Ranbir Singh Chair, M.D. University, Rohtak, 2010, pp 119-165
16. Ibid, pp 166-212.

Impact of Arya Samaj Movement on peasant Community in The Early Twentieth Century : A Historical Analysis

Dr. Subhash Balhara
Asstt. Professor in HistoryGovt. College, Meham

By the early twentieth century the Jats of the South-East Punjab became a highly self-conscious and integrated peasant community. Colonial and Indian historians have usually emphasized the role of political institutions and administrative and economic changes in the formation of identities among rural communities in the Punjab. In their writings the colonial structure appears as the fountain of community consciousness.[1] The Jats are seen as one of the important communities representing the interests of agricultural classes as categorised by the Land Alienation Act of 1900.[2] In an economic sense, the urban middle classes of Punjab among Hindus and Sikhs came to depend heavily on the bureaucratic structures of the Raj and on its largesse. In time, they also came to perceive themselves as especially disadvantaged as the British came to be associated in their minds with the agrarian Jats and the Muslims. Politically, the assertion of middle classes was in the sphere of occupation and contest over public spaces. It was in the ideological battles that took place in the public sphere that claims to dominance could be made – whether in the power-play among the indigenous elites or in the subtle challenges posed to the power of the colonial state. However, in very significant ways the material, ideological and social structures on which a middle class life could be built were provided by the practice of caste. It may be pointed out that the

Sikhs had an intellectual tradition that denied caste among them, and that also among some Hindus, the Arya Samajis being the prime example, caste was atleast intellectually reconceptualized. However, the idea of caste, both as a marker of status, and as an organizing principle of daily life persisted. The purpose of this research paper is to discuss some historical facts to know how the Jats of Hindu community utilized the preachings and ideology of Arya Samaj to augment their social status in Eastern Punjab and Western Uttar Pradesh especially in contemporary Rohtak region.

The fundamental agriculturist in Punjab for the British was the Jat. Ibbetson lauded the Jats, while underlining their importance to the colonial administration in Punjab :

"The Jats is in every respect the most important of the Punjab peoples. In point of numbers they surpass the Rajputs——. Politically they ruled the Punjab till the Khalsa yielded to our arms. Ethnologically jat peasant is the peculiar and most prominent product of the plains of the five rivers. And from an economical and administrative point of view he is the husbandman, the peasant, the revenue payer par-excellence of the province."[3] Ibbetson could have also added that the Sikh Jat was the finest soldier in the British army. Though the Jats as a whole were thought to share these characteristics, it was the Sikh Jats of the Central districts of Punjab that Ibbetson had in mind while giving the above description. Apparently, the Hinduism of the Jats of the South-Eastern Punjab did not mar their Jat virtues, but according to Ibbetson, the same could not be said of the Muslim Jats of the western Punjab.[4] Basically, the society of Punjab was

apparently not affected by the pulls of religion or caste. Thus, Sir Charles Roe in his Tribal Law in Punjab wrote :

> "The Hindu agriculturist of the Punjab knows nothing of castes, except as represented by his tribe. No doubt he respects the Brahman, and calls him and feeds him on the occasion of rejoicing or sorrow, but he would never dream of referring to him or to the Hindu law for guidance in his daily life."[5]

A close study of vernacular sources, local Jat texts and Jat narratives, however, show the deep interaction between the Arya Samaj and the Jats, an aspect ignored by historians either because of the inaccessibility of these sources or because of the dominant historiographical trends which depends mostly on the narratives of British officials posted or working in central and western parts of Punjab.[6]

Scholarly studies have trended to emphasize that the Arya Samaj was a product of colonial modernity with no real roots in Hindu society. It was no more than an urban movement of the English-educated elite in Punjab.[7] Towards the end of the nineteenth century the existing sects and cults in the rural south-east Punjab began to lose the commanding position they had earlier occupied. The roots of Arya Samaj lay in this local tradition. But after 1880, the Jats in this region came to perceive themselves collectively as Jat.[8] They established their clear identity from their specific interpretation of the Arya Samaj theology. Consequently, the Jats identified themselves as a devout and self-controlled warrior caste, as distinct from the past when they were seen as a sturdy country-folk.

In this research paper I discuss how the Arya Samaj movement entered South-east Punjab especially Rohtak region from western Uttar Pradesh and how Jat identity crystallized, and became manifest through the kaumi (community) narratives constructed by its leaders, particularly between 1912 and 1919.

On the eastern shore of the Jamuna lay Jat hinterland (Present day western Uttar Pradesh) where the Jats in the 1860s followed the precepts of Dayanand who was visiting several towns and villages there. These Jats assimilated the anti-caste vedic sermon of Dayanand. They were also concerned about their identity, particularly their origin and status.[9] This growing self-consciousness began to influence their counterparts on the other side of the Jamuna to whom they were linked culturally. In the 1880s the Arya Samaj established itself in Rohtak, which became its nerve centre by the early twentieth century.[10] Initially the Arya Samaj appealed mainly to the educated Jats, Khap leaders, peasant sepoys and zaildars. A large scale conversion of the Jats to the Arya Samaj took place during 1905-12, first in the army and then in the rural tracks of Rohtak and Hissar.[11]

A veteran Arya Samaji, Chaudhry Ranbir Singh, from Rohtak, recalled that during the British period and even before, the Brahmans denied the Jats any right to wear the sacred thread. He said that these were two main divisions within Hindu Society, Dvija and Shudras. We were placed somewhere in the middle. He further added that there were very few Jats in the government schools, and if any Jat student went into the kitchen, the members of the superior castes threw away the entire flour and he was asked to pay for the whole stock of flour.[12] Such experiences reveal a shared culture of inferiority, and throw light on Jat perceptions of caste hierarchies in the Hindu society.[13]

Jat peasants were attracted to Dayanand since he was seen as an admirer of Jats. As a Jat stated: ‘By giving us the status of being gurus of Brahmans—— Dayanand elevated us to a higher status.’[14] He stressed that Dayanand hailed from a place on the river Saraswati in Kurukshetra and that he had inherited the tradition of logical subtelity from the Jats: ‘Dayanand was fascinated by the intelligence of the Jats and had appreciated their rejection of idol worship. In one of the popular devotional song, Dayanand was identified with Ram and portrayed as a hero, fighting the righteous battle of truth against evil. [15]

But spread of the Arya Samaj in Jat society was not an easy task.[16] A large number of them reacted sharply to the growing influence of the Arya Samaj. In 1883, when Ramji Lal became an Arya Samajist, a panchayat of Hooda Jats was held in village Sanghi in Rohtak district. Presided over by Satnamiya Brahmachari, this famous panchayat of twelve villages decided to ostracize Ramji and his brother Matu Ram.[17]

Such conflicts characterised the process through which Arya Samaj ideas were assimilated in the region. Under the influence of the Arya Samaj, the popular tradition of Sang (a form of popular drama performed by men) came under scathing attack. By the early twentieth century the tradition was transformed. On the one hand, *Sangis* began to conform to the code of the Arya Samaj programme as *Sangis* began to join the bhajan mandlis of the Samaj.[18] Similarly, the Guga fair, which once symbolized the popular and shared culture of the region, began to be exploited by the Arya Samajists for the Vedic Prachar.[19] This was how certain features of popular tradition were, after much conflict, integrated into the Arya Samaj system of beliefs, creating the social basis of its influence.

(Footnotes)

1. An Important statement on this theme has been made by Richard Fox in his "Lions of the Punjab, Culture in the Making, California, 1985.
2. David Gilmartin, Empire And Islam, Punjab and The Making of Pakistan, University of California Press, Berkley, 1988.
3. D.C. J. Ibbetson, Govt. Printing Lahore 1916. Reprint by B.R. Publishing Corporation, Delhi, 1974. See Anshu Malhotra, Gender, Caste And Religious Identities, Restructuring class in Colonial Punjab, Oxford University Press, 2002, p.28.
4. Anshu Malhotra, Ibid. p.28.
5. W.H. Rattigan, A Digest of Civil Law for the Punjab, Lahore, 1929, p.40.
6. Generally speaking, the Jats have been studied within the framework which emphasizes the role of imperial patronage and control. See e.g. Gilmartin, Empire and Islam, Prem Choudhary, Punjab Politics: The Role of Sir Chhotu Ram, New Delhi, 1984; Ian Talbot; Punjab and the Raj 1849-1947. New Delhi, 1988.
7. K.W. Jones, Arya Dharam Hindu Consciousness in Nineteenth-Century Punjab, Berkeley, 1976. Jones overlooks the impact of the Arya Samaj on rural society and its appropriation by the Jats in particular. He emphasized that the Arya Samaj was an ideology of the English-educated urban nationalists of the Punjab, who were disenchanted with colonial rule.
8. Generally the word Jat is applied to a congeries of tribes, Jats proper, Rajputs, lower castes, and mongrels, who have no points in common save their Muhammadan religion, their agricultural occupation, and their subordinate position. See Anshu Malhotra, op.cit., p.28.
9. Lekh Ram, Maharishi Dayananda Saraswati Ka Jiwan Charitra, translated by Kavi Raj Raghuknandasing 'Nirmal' (ed.), Pandit Harischandra Vidyalankar, Delhi, 1972.
10. Rai Sahib Sansar Chand was the person responsible for the foundation of a local branch of the Arya Samaj in Rohtak. The merchant community and lawyers of Hisar played a prominent role also.

11. In Rohtak, the Jats of Sanghi and Kiloi were the first to follow Arya Samaj teachings. These villages became the main stronghold of the Arya Samaj by the early twentieth century. By 1911, about 30,000 Hindu Jats were purified or raised socially in South-East Punjab. Census of India, Punjab 1911. Vol.14. Lahore, 1912, p.149.
12. Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi, MSS Oral History transcript. Choudhary Ranbir Singh. No. 544, 28-8-1986.
13. See Set Chajju Ram's view in S.N. Malik, Seth Chajju Ram. A Life with a purpose 1861-1943, Hissar, 1994, p.47 and K.S. Ahlawat, Jat Viron Ka Itihas, Dayanand Math, Rohtak, 1987, p.881.
14. Mahavir, Maharishi Dayanand Par Haryana Ka Prabhav, Arya Pratinidhi Sabha Haryana, Dayanand Math Smarika, Rohtak, 1976, p.61.
15. K. Sharma, 'Haryana Ke Prasidh Lokgayak Pandit Basti Ram', Haryana Research Journal, Vol.3, 1967, p.46.
16. With the coming of Arya Samaj, the mela of Gulfaroshan held in Mehrauli lost its importance amongst the Jats after 1900. See The Tribune, 21 September, 1906, p.4. Similarly under the influence of Arya Samaj, the Tradition of Sang came under severe attack and Jat began to consider the sang as vulgar.
17. S.S. Choudhary, 'Ramji Lal Hooda : Sir Chottu Ram Ke Prerak', Souvenir, Deenbandhu Chhottu Ram Jayanti Samaroh Samiti, Haryana Jat Sabha, Bhiwani, 1984, p.20.
18. Puran Chand Sharma, Haryana Ki Lok Dharmi Natya-parampara, Haryana Sahitya Academi, Chandigarh, 1983, pp. 105-07.
19. The most prominent shrine of Guga was in Bikaner and the Sirsa Arya Samaj began to celebrate a mela here. Vidyalankar, Arya Samaj Ka Itihas, p.191.

खण्ड–8

स्वतंत्रता आन्दोलन में सशस्त्र बगावतें

स्वतंत्रता आन्दोलन में आजाद हिन्द फौज का योगदान

—लेफ्टि. कर्नल (अ.प्रा.) चन्द्र सिंह दलाल
संयोजक
ग्रामीण भारत अधिकार मंच, रोहतक।

स्वतंत्रता आन्दोलन में आजाद हिन्द फौज के योगदान का आंकलन करने के लिए हमें उस समय के राजनीतिक परिवेश पर जानाकरी प्राप्त करनी पड़ेगी, जिसके लिए पिछली शताब्दी के चौथे दशक का तो गहराई से विवेचन करना ही होगा, अपितु सन् 1858 से सन् 1945 तक की समयावधि के दौरान की पृष्ठभूमि का भी हमें मालूम होना चाहिए। इसी सूरत में ही हम आजाद हिन्द फौज की सम्पूर्ण भूमिका का अर्थपूर्ण आंकलन कर पाएंगे।

सन् 1857 में स्वतन्त्रता आन्दोलन एक बड़ा भारी सवाल बनकर उभरा, जिसे हमने स्वतंत्रता के लिए प्रथम युद्ध की संज्ञा दी थी। इसी दौरान अंग्रेजी सरकार द्वारा भारतवासियों पर जुल्म ढ़ाने का सिलसिला बहुत वर्षों तक चलता रहा तथा पॉलिसी के तौरपर यह निर्णय लिया गया कि किसी भी हालत में स्वतन्त्रता आन्दोलन को न पनपने दिया जाए। अपितु शनै–शनै यह आन्दोलन राष्ट्रीय रूप धारण करने में सफल रहा। इसी के फलस्वरूप सन् 1885 में इंडियन नेशनल कांग्रेस का गठन हुआ था। वैसे भी इसका असर तो कम ही हुआ था, अपितु लाला लाजपतराय के अनुसार अखिल भारतीय कांग्रेस के आन्दोलन का लार्ड कर्जन द्वारा मखौल उड़ाया गया था तथा साधारण जनमानस को भी इसकी सार्थकता पर यकीन नहीं हुआ। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में विदेशी शासकों के प्रति घृणा ने जड़ पकड़नी शुरू कर दी थी। इसी समय नए नेतृत्व ने जन्म लिया, जिसमें लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल तथा लाला लाजपत राय के नाम मुख्य हैं। इस तिकड़ी को बाल, पाल और लाल के नाम से भी जाना जाता है। ये सभी क्रांतिकारी प्रवृत्ति के थे। उन्हीं दिनों बंगाल, पंजाब व महाराष्ट्र में क्रान्तिकारी आन्दोलन शुरू हो गया था।

इस आन्दोलन को विदेशों तक पहुंचाने का सवाल था, जिससे स्वतंत्रता आन्दोलन और व्यापक हो सके। इस कार्य की बागडोर श्यामजी कृष्ण वर्मा, वी.डी. सावरकर, लाला हरदयाल, तरकनाथ दास, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, बरकत उल्लाह, रास बिहारी बोस, ज्ञानी प्रीतम सिंह, एच. एल.गुप्ता तथा भाई परमानन्द इत्यादि के हाथों में थी। इन्होंने ब्रिटिश हुकूमत के विरूद्ध लन्दन, पेरिस, न्यूयार्क, जापान, बर्लिन, दक्षिणी पूर्वी एशिया में केन्द्र स्थापित किए थे और अपना प्रभाव विश्व के सभी देशों में फैलाने का प्रयास किया।

कहना न होगा कि जापान से सबसे ज्यादा सहायता तथा प्रोत्साहन मिला था। इसकी खबर अंग्रेजी साम्राज्य को भी थी।

सन् 1914 में प्रथम विश्व युद्ध शुरू हो गया था, जिसके फलस्वरूप भारतीय क्रान्तिकारियों में नवचेतना उत्पन्न हुई और नया जोश पैदा हो गया। जर्मनी में भी एंग्लो–जर्मन कमेटी की स्थापना की गई। इसी के फलस्वरूप भारत में सहायतार्थ हथियार तथा असला भेजा जाना आरम्भ हो गया।

भारतीय क्रान्तिकारियों ने थाईलैण्ड में पंजाबी सिखों की मदद से ब्रिटिश राज्य के खिलाफ केन्द्र स्थापित कर दिए थे। जापान की सहानुभूति से क्रान्तिकारियों के हौंसले बुलन्द हो गये थे। विशेष तौरपर ब्रिटिश युद्ध के समाप्त होने के उपरान्त भारतीयों ने जापानियों की मदद से अपना कारोबार थाईलैण्ड, मलाया, बर्मा हांगकांग, शंघाई तक बढ़ा लिया था, जो आगे चलकर इण्डियन नेशनल आर्मी के गठन में सहायक सिद्ध हुआ था।

आई.एन.ए. की स्थापना

इसी भूमिका के साथ–साथ बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में सिंगापुर में आई.एन.ए. की स्थापना की गई, जो स्वतन्त्रता के आन्दोलन के लिए एक मील का पत्थर साबित हुई। आई.एन.ए. का पालन–पोषण और उसकी प्रारम्भिक देखभाल बाबा अमर सिंह, ज्ञानी प्रीतम सिंह, रास बिहारी बोस तथा जनरल मोहन सिंह इत्यादि द्वारा हुई। आई.एन.ए. की स्थापना क्रांतिकारियों द्वारा जापानियों की सहायता से अंग्रेजों के विरूद्ध किए गए

युद्ध की एक हकीकत है। भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन की सहायतार्थ एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इन्ही दिनों एक समाचार पत्र 'गदर' के नाम से प्रकाशित किया गया था, जिसे चीन, जापान, बर्मा और भारत में भेजा जाता रहा।

सन् 1937 में रास बिहारी बोस ने इंडियन इंडीपेन्डेंस लीग की स्थापना की थी, जिसका केन्द्र जावा में था। इसी वर्ष टोकियो में एक कांफ्रेस बुलाई गई थी, जिसका मुख्य उद्देश्य था कि राजनीतिक प्रचार व प्रसार के लिए एक कार्यक्रम तैयार किया जाए, जिसमें थाईलैण्ड, जावा, चीन, मलाया, बर्मा व भारत में विशेष तौरपर ब्रिटिश भारतीय सैनिकों में आजादी की लहर के लिए प्रौपेगेंडा बने। इन्हीं दिनों थाईलैण्ड में एक बुजुर्ग पंजाबी क्रांतिकारी बाबा अमर सिंह ने बैंकाक में सिख प्रचारक ज्ञानी प्रीतम सिंह की मदद से आजाद हिन्द संघ का गठन किया था।

इसी दौरान द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हो गया और स्वतंत्रता के आन्दोलन को और तेज कर दिया। सन् 1941 में ही इण्डियन नेशनल आर्मी का बीजारोपण हो गया था, ज्ञानी प्रीतम सिंह जी ने स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए भारतीय वालंटियर आर्मी जापान में बंदी भारतीय सैनिकों तथा वहां के स्थानीय भारतीय मूल निवासियों में वालंटियर भर्ती करने की बात हो चली थी।

अंग्रेजी राज में भारतीय सैनिक इतने निराश व हताश नहीं हुए थे, जितने मलाया और दक्षिण पूर्वी एशिया में उन दिनों 1/14 पंजाब रेजीमेन्ट के मोहन सिंह, जो वहां कैदी था, उसने दिसम्बर, 1941 में जान–बूझकर अंग्रेज सैनिकों से अलग करके जंगल में एक ग्रुप बना लिया था, जो भारत की आजादी के लिए लड़ना चाहता था।

15 दिसम्बर, 1941 को मेजर–फूजीवारा ने ज्ञानी प्रीतम सिंह के साथ कैप्टन मोहन सिंह से मिलकर यह आत्म–समर्पण करवाया था और जापानियों की ओर से भरोसा दिलाया था और यह घोषणा करवायी थी कि सारे भारतीय संघ कैप्टन मोहन सिंह की कमान में रहेंगे। 15 फरवरी, 1942 को जापानी सेनाओं ने सिंगापुर पर कब्जा कर लिया था। इसके उपरान्त 73000 सैनिकों को बन्दी बना लिया गया, जिनमें से 43000

भारतीय सैनिकों ने भी कर्नल हैड की कमान में समर्पण किया और वे भी बन्दी बना लिए गये थे।

1 सितम्बर, सन् 1942 को आई.एन.ए. का गठन किया गया। जनरल ऑफिसर कमांडिंग मोहन सिंह की कमान में प्रथम डिवीजन, जिसमें 17000 सैनिक थे, का गठन हुआ था। लेकिन विडम्बना है कि सन् 1942 के अन्त तक जनरल मोहन सिंह ने आई.एन.ए. को भंग कर दिया था जोकि परस्पर अन्तरविरोध का परिणाम था। अतः पहली बार आई.एन.ए. लगभग छह महीने तक ही टिक पाई थी। लेकिन, रास बिहारी बोस ने सुभाष चन्द्र बोस के आने तक स्थिति सम्भाल ली थी। तुरन्त ही आई.एन.ए. का पुनर्गठन करके जे.के. भोंसले को डायरेक्टर मिलिटरी ब्यूरो बनाया गया और इसका मुख्यालय सिंगापुर में बदल दिया गया था। इन्हीं दिनों 16 मई, 1943 को उन्होंने टोकिया पहुंच गये। 16 जून, 1943 को सुभाष चन्द्र बोस ने जापान में प्रधानमंत्री तोजो से मुलाकात की। प्रधानमंत्री तोजो ने सुभाष चन्द्र बोस से सहमत होकर बड़ी हिम्मत बढ़ाई और जापानी आकाशवाणी से ब्रिटिश के विरूद्ध चल रहे इण्डियन इन्डेपेंडेंस आन्दोलन का समर्थन करने का ऐलान किया। जून और जुलाई, 1943 में रास बिहारी बोस ने इण्डियन इन्डेपेन्डेंस लीग के प्रधान पद को त्याग देने की घोषणा की। उन्होंने अपने सम्बोधन में कहा था –

''मित्रो तथा साथियो ! आपके सम्मुख मैं लीग के प्रधान पद से त्यागपत्र दे रहा हूँ और देश सेवक सुभाष चन्द्र बोस को इण्डियन इंडिपेन्डेंस लीग का प्रधान पद सौंप रहा हूँ।'' यहां पर ही पहली बार सुभाष चन्द्र बोस को ''नेता जी'' के नाम से पुकारा गया था और ''जयहिन्द'' का नारा भी यहीं से आरम्भ हुआ था।

यह 5 जुलाई, 1943 का दिन था, जिस दिन सुभाष चन्द्र बोस ने आई.एन.ए. की कमान संभाली और उसका पुनर्गठन करके इसे 'आजाद हिन्द फौज' का नाम दिया। यहां ''दिल्ली चलो'' का उद्घोष किया गया और इसी अवसर पर दिल्ली में वायसराय हाऊस पर तिरंगा फहराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया तथा विजय परेड ऐतिहासिक लालकिले में करने की बात कही गई। जुलाई, 1943 में ही रानी झांसी रेजिमेंट के गठन करने

की ठानी तथा 22.10.1943 को रानी लक्ष्मीबाई के जन्मदिन पर इस रेजिमेंट का गठन किया गया। डा.लक्ष्मीबाई स्वामीनाथन को इसकी कमान सौंपी गई। साथ–साथ ही 'बाल सेना' का गठन भी किया गया था।

21 अक्तूबर, 1943 को इण्डियन इन्डिपेंडेंस लीग की पांचवीं बैठक में अस्थायी ''आजाद हिन्द सरकार'' का गठन किया गया। सिंगापुर मुख्यालय से 23 अक्तूबर, 1943 को प्रोविजनल आजाद हिन्द सरकार ने ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध युद्ध की घोषणा भी कर दी। युद्ध करने के लिए चन्दे की मुहिम चलाई गई। नेता जी फण्ड कमेटी बनी। ले0 कर्नल ए.सी. चटर्जी उसके चेयरमैन बनाए गए।

इसी प्रकार से जापानियों का सहायोग मिलता रहा तथा 5–6 नवम्बर, 1943 को प्रीमियर तोजो द्वारा बुलाई गई इम्पीरियल सरकार की मिटिंग में नेता जी ने भाग लिया। इसी अस्थाई आजाद हिन्द सरकार को अण्डेमान निकोबार द्वीप, जिनपर जापान का कब्जा था, को स्वतन्त्र भारत भूमि मानते हुए ले0 कर्नल लोकनाथन को वहां का कमीश्नर नियुक्त किया गया तथा वहां पर तिरंगा झण्डा फहराया गया और इन द्वीपों का नाम भी बदल दिया गया। अण्डेमान को 'शहीद' तथा निकोबार को 'स्वराज' के नाम से जाना जाता था। यहीं पर ही इंडियन वार कौंसिल का गठन किया था। सिंगापुर सुप्रीम कमाण्ड का मुख्यालय रंगून में बदल दिया गया। यहां पर सुभाष चन्द्र बोस ने नारा दिया कि, 'आप मुझे खून दो, मैं तूम्हें आजादी का वादा करता हूँ।'

7 जनवरी, 1944 को जापानी सेनाओं ने भारत पर आक्रमण कर दिया। यहां बता देना आवश्यक है कि सुभाष बोस ने जापानियों से यह फैसला किया था कि आई.एन.ए. जापानी सेनाओं के तहत युद्ध नहीं लड़ेगी, बल्कि बराबर की हिस्सेदारी में अपना युद्ध लड़ेगी। मुख्य आक्रमण इम्फाल, कोहिमा पर करने का निर्णय लिया गया। कैप्टन शाहनवाज खां, मेजर जनरल एम.जे.कियानी, मेजर जी.एस. ढ़िल्लो तथा ले. कर्नल सहगल ने अपनी अपनी रेजीमेंट की कमान संभाली।

7 नवम्बर, 1944 सुभाष ब्रिगेड कैप्टन शाहनवाज की कमान में अराकान की ओर कूच कर गया, जहां आजाद हिन्द फौज की भारी जीत

हुई। इसी सेना की टुकड़ी ने भारत में प्रवेश किया और भारत माता की भूमि को चूमा और तिरंगा फहराया। आई.एन.ए. राष्ट्रीय गान भी गाया और बड़ी बहादुरी से लड़ते रहे। सुभाष ने लड़ाई के बीच भाग लिया और यह फैसला किया कि यहां पर इन हालातों में ज्यादा दिन टिका नहीं रहा जा सकता था। अतः सोच–विचार के उपरान्त, बर्मा से वापसी के आदेश जारी किए।

दिसम्बर, 1944 में नेहरू ब्रिगेड मेजर जी.एस. ढ़िल्लों की कमान में मिंग्यान भेजा गया। उसकी रक्षा के लिए फरवरी, 1945 में नं 2 इन्फेंटरी रेजीमेंट मेजर पी.के.सहगल की कमान में पापा के लिए भेजी गई। पापाहिल में फर्म बेस बनाने के लिए कहा गया था।

यहां पर अमेरिका द्वारा भारी बमबारी की गई और जापानी सेना को इंडो–बर्मा बॉर्डर से वापसी करनी पड़ी। 24 अप्रैल, 1945 को आजाद हिन्द फौज को वापिस आने का हुक्म दिया गया था। इन सभी को वापिस जाते समय बन्दी बना लिया गया और दिल्ली के लाल किले में भेज दिया गया। यहां पर उनके विरूद्ध कोर्ट मार्शल की कार्यवाही की गई थी। 15 अगस्त, 1945 को जापानी सेनाओं ने भी आत्म–समर्पण कर दिया था, क्योंकि हिरोशिमा व नागाशाकी पर परमाणु बम गिरा दिए गए थे। अतः सन् 1941 से सन् 1945 तक ही आई.एन.ए. का योगदान रहा।

ब्रिटिश पॉलिसी

अचानक द्वितीय महायुद्ध का अन्त हो गया और जापान की हार हो गई। सारा माहौल बदल गया। आई.एन.ए. के सैनिक बड़ी संख्या में बर्मा, थाई देश मलाया तथा सिंगापुर में ब्रिटिश सेना के कैदी हो गए थे। उनको भारत में लाया गया और लालकिले में बन्दी बनाकर रखा गया था। इनकी संख्या लगभग 19500 थी। बाहर से लाने का काम मई, 1945 से शुरू होकर मार्च, 1946 तक पूरा हो पाया था। जबतक ब्रिटिश सेनाएं रंगून, मलाया और बैंकांक प्रवेश कर पाई, तब तक वहां से लोकल आजाद हिन्द फौजी गायब हो चुके थे और उनके हाथ नहीं आये। वहां तो केवल भारतीय पूर्व सैनिक थे, जिन्हें भारत लाया गया था। 27 सैनिकों को पकड़ में आते ही कोर्ट मार्शल करके वहीं पर फाँसी की सजा दी गई थी।

इतनी बड़ी संख्या को सजा दे पाना इतना आसान नहीं था, जितना समझा जाता रहा था। इसके लिए एक पॉलिसी की आवश्यकता पड़ी। ब्रिटिश सरकार को एक कम्बाईंड सर्विसेज डायरेक्टोरेट ऑफ इनवेस्टीगेशन फोर, जिसे सी.एस.आई.सी. कहा गया था, का गठन किया, जिनको इस संस्था द्वारा पूछताछ के लिए भेजा जाता था। इस दौरान में आई.एन.ए. के सैनिकों की अलग–अलग श्रेणियां बनाईं गई। व्हाईट, जो तब भी ब्रिटिश सेना के वफादार थे, ग्रे उनको जो दबाव में आई.एन.ए. में गए तथा ब्लैक, जिन्होंने जान बूझकर स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग लिया। सीनियर ब्रिटिश अफसर तो आई. एन.ए. के सख्त विरोधी थे और खफा थे। वे तो सभी आई.एन.ए. वालों को क्रांतिकारी मानते थे। लेकिन, दूसरी ओर ये ऑफिसर यह नहीं जानते थे कि आई.एन.ए. सैनिकों के प्रति सख्ती से काम लेने से पूरे देश में कहीं अराजकता न फैल जाएगी। लार्डवेवल आई.एन.ए. के सख्त विरोधी थे, उन्होंने 1 अक्तूबर, 1945 में पैथिक लारेंस, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को लिखा था कि ''इन सबके ऊपर ब्रिटिश के विरोध में रंग चढ़ा हुआ है और कुछ लोगों का कहना है कि नेहरू की स्कीम है कि वह इस स्थिति का लाभ उठाए।'' इस विषय में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट की राय यह थी कि सभी को समान रूप से ही रखा जाए, न कि कुछ को छोड़ दिया जाए।

कमाण्डर इन चीफ जनरल औखनलेक का विचार इन कैदियों के साथ सख्ती से निपटने का था। इस बीच में बदरूद्दीन द्वारा जोगा सिंह को सख्त सजा दिए जाने की कहानी भी प्रचारित की जा रही थी। यद्यपि आई.एन.ए. के किसी भी सैनिक को बिना किसी मुकदमें के छोड़ने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था, ऐसा भारत सरकार का विचार था। आई.एन.ए. के लोगों को तो क्रिमिनल समझते थे, जिन्होंने अपने साथियों के साथ जुल्म किए हों। उच्च सैनिक ऑफिसर इसे केवल मिलिटरी के विरोध का सवाल न मानकर यह भी कह रहे थे कि यह राजनैतिक प्रश्न भी है और यह पॉलिसी दोनों को प्रभावित करेगी।

फिलिप मैसन भारत सरकार वार डिपार्टमेंट के सचिव होने के नाते इस विषय में पालिसी बनाने में दखल रखते थे। उनका कहना था कि आई. एन.ए. के सभी सैनिक कानूनी तौरपर मौत की सजा के हकदार हैं।

लेकिन प्रश्न उठता है कि 25000 व्यक्तियों को क्या फांसी लगाई जा सकती है। यह क्रूर, अमानवीय तथा अन्यायपूर्ण है। दूसरी ओर, विद्रोह भगौड़ा होने के कसूर को माफ भी नहीं किया जा सकता। उसका कोई और रास्ता निकालना पड़ेगा। उन्होंने तीन रास्ते बताए थे। प्रथम, कानून के तहत मुकदमा चलाएं और क्षमा दे दें। दूसरा सजा दें दें और बाद में सजा माफ कर दें। तीसरा, उनके साथ थोड़ा सा कम सख्त व्यवहार किया जाए तथा बहाना यह बनाया जाए कि यह लोग दूसरों के दबाव में आकर बहक गए थे।

ब्रिटिश सरकार के लंदन आफिस ने इस पॉलिसी को क्या रूप देना है, वह भारत गोरी सरकार पर छोड़ दिया था। इसी प्रकार से अगस्त, 1945 तक उभरकर दो—एक थीमें ज्वाइंट सामने आए, या तो बिल्कुल छोड़ दो या सख्त सजा दो। कांग्रेस पार्टी द्वारा कहा गया कि इन पर मुकदमें चलाना सारे भारतवासियों पर मुकदमें चलाने के बराबर समझा जाएगा। इनके बहादुरी के किस्से घर—घर प्रचारित किए गए। जवाहर लाल नेहरू ने 20 अगस्त, 1945 को ऐलान किया कि आई.एन.ए. के कैदियों के प्रति कठोर व्यवहार करना ठीक नहीं है। अगर ऐसा हुआ तो परिणाम भुगतने के लिए अंग्रेजी सरकार को तैयार रहना होगा। इनको दी गई सजा लाखों भारतवासियों को सजा मानी जाएगी। सरदार बल्लभ भाई पटेल ने चोरी से लाए गए आई.एन.ए. वालों के विषय में पता लगाकर गांधी जी को बताया था। जैसे इस बारे में गांधी जी को पता चला तो उन्होंने लार्ड वेवल को लिखा था। सुभाष बाबू द्वारा जो फौज बनाई गई थी, उसके सैनिकों पर मुकदमें चलाए जाने के बारे में मैं चिन्तित हूँ। भारत इनको चाहता है, जिनपर मुकदमें चलाए जा रहे हैं। यह दूसरी बात है कि सरकार की ताकत इनके विरूद्ध है। लेकिन हम इसका विरोध करते हैं। सारा हिन्दुस्तान इसका विरोध करता है। जिस समय गांधी अपने आपको आई. एन.ए. सैनिकों को अपनाकर साथ दे रहे थे और सारा भारत एक साथ उनके पीछे खड़ा था और नेहरू जी साथ थे। उसी कांग्रेस पार्टी ने कहा कि बेशक हम इन सैनिकों के साथ हैं, लेकिन स्वराज की प्राप्ति के लिए अहिंसावादी ही बने रहेंगे।

भारत में उस समय अंग्रेजी सरकार के पास कोई दूसरा रास्ता नहीं रह गया सिवाए इसके कि सेना के दबाव में मुकदमें चलाने शुरू किए जाएं। लेकिन ऐसा बहुत ही थोड़े लोगों पर मुकदमें चलाए जाएं, ऐसा सोचा गया।

जवाहर लाल नेहरू ने एकदम से कहा कि जल्दी ही साधारण जनता को पता लग गया था कितने सैनिक किस जेल में कहां फंसे हैं और कितनों पर मुकदमें चलाए जाएंगे। भारतवासी ही फाईनल अदालत होने चाहिए। इनके साथ में कमाण्डर आई.एन.ए. फाईल के. 802 (आई.एन.ए.) पर मुकदमें चलाए जाएंगे, अक्तूबर 1945 तक यह फैसला हो चुका था।

लगभग 11000 पूर्व भारतीय सेना के लोग आई.एन.ए. में शामिल हुए। पूछताछ की गई, जिसके अनुसार 2565 ब्लैक लिस्ट में आए थे। फिर पूछा गया था कि इन 2565 में से कितनों का कोर्ट मार्शल करने का विचार है। कमाण्डर इन चीफ जनलर औछिनलेक ने 92 का आंकड़ा दिया था, जिनको वास्तव में कोर्ट मार्शल होना था। लेकिन, अन्त में सात लोगों के नाम ही आगे भेजे गए, जिनको ट्रायल के लिए छांटा गया था। उनके नाम थे— बदरूद्दीन, पी.के. सहगल, जी.एस. ढ़िल्लन, शाहनवाज खान, अब्दुल रसीद, सिंघारा सिंह तथा फतेह खान। इन पर मुकदमें चलाने के लिए गवाहों की लिस्ट में बदरूदीन पहला सैनिक था, जिसका कोर्ट मार्शल आरम्भ किया गया था। इंडियन आर्मी एक्ट 1911 के अनुसाार बदरूदीन का ट्रायल लिमिटेशन के अन्तर्गत आ गया और उसको वहीं पर छोड़ना पड़ा। रूटीन के अनुसार सितम्बर, 1945 में ही ला सकते थे। अक्तूबर, 1945 में वायसराय ने आर्डिनेंस के द्वारा लिमिटेशन का समय बढ़ाया तो पांच दिन के बाद प्रथम मुकदमा चालू किया गया। बदरूद्दीन को चार्जशीट दे दी गई। लेकिन बाद में एड्ज्यूटेंट जनरल ने पी.के. सहगल, जी.एस. ढ़िल्लो और शाह नवाज खान का मुकदमा बदरूद्दीन की जगह चालू कर दिया। बदररूद्दीन पर केस क्यों नहीं चलाया गया, यह बात समझ में नहीं आई।

साथ ही, 5500 ब्लैक केटेगरी के लोगों को कोर्ट ऑफ इन्कवारी करके सेवा से बर्खास्त कर दिया गया, जिनमें से 3580 पहले ही भारत में पहुंच चुके थे। होम डिपार्टमेंट की फाईल नं. 21/13/45 के अनुसार, जिन

लोगों को बर्खास्त कर दिया था, उनको कैदी भी नहीं बनाये रखा जा सका। उन्हें तो वहीं से घर भेज दिया गया, यद्यपि ब्रिटिश पॉलिसी के अनुसार आई. एन.ए. कैदियों को भगौड़े व विश्वासघाती करार दिया गया था।

मुकदमें की कार्यवाही

यह मुकदमा ऐतिहासिक लालकिले में होते हुए ऐतिहासिक ही था, क्योंकि आई.एन.ए. का निशाना था कि आजादी के बाद लालकिले पर झण्डा फहराएंगे। वहां पर उनपर मुकदमें चले। होम डिपार्टमेंट की फाईल नं एफ.नं. 21/13/45 (एन.ए.आई.) के अनुसार इस जगह का चुनाव बहुत सोच समझकर किया गया था।

यह मुकदमा 5 नवम्बर, 1946 को लालकिले में आरम्भ हुआ और 31 दिसम्बर, 1946 को समाप्त हुआ। कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने पूना अधिवेशन में यह निर्णय लिया था कि इस मुकदमें में एक डिफेंस कमेटी नियुक्त की जाए, जिसमें वरिष्ठ वकील शामिल किए गए, जिनके नाम हैं : पं.जवाहर लाल नेहरू, सर तेज बहादुर सपरू, भोला भाई देसाई, कैलाशनाथ काटजू, रायबहादुर बदरीदास, आसफ अली, कंवर सर दलीप सिंह बख्शी, सर टेकचन्द, पी.एन.सेन, इन्द्रदेव दुआ, शिव कुमार शास्त्री, रणबीरचन्द सोनी, राजेन्द्र नारायण, सुल्तानयार खान, नारायण एण्डले तथा जे.के. खन्ना। इन तीनों आई.सी.–58 कैप्टन शाहनवाज खान, 1/144, 714 (आई.एन.ए.), आई. सी.–226, कैप्टन पी.के. सहगल, 2/10 ब्लोचिस्तान आई.सी.–336 ले. गुरू बख्स सिंह ढ़िल्लों 1/14 पंजाब रेजीमेंट का ज्वाइंट ट्रायल हुआ था और ध ाारा 41 सरकार के विरूद्ध बगावत तथा धारा 302 आई.पी.सी. लगाए गए थे। इन सबको मिलाकर कुल दस चार्ज थे।

इस ट्रायल के सरकारी वकील सर एन.सी. इन्जीनियर एडवोकेट जनरल, भारत सरकार थे। सरकार ने जो गवाह पेश किए, वे इस प्रकार थे – लेफ्टि. कर्नल ओ.वाल्स, ले. जी.सी. नाग, कै. के.पी. धरंगधर, जमादार इतफाक रजक, नायक संतोख सिंह, मेजर बाबूराम, लां. नायक गंगा राम निवार, सूबेदार अजलनूर खान, हवलदार सूच्चा सिंह, काका सिंह, जमादार फाहम्म, हय्यात खान, हवलदार वलिन बहादुर, रामसरूप, लां. नायक

फिटर महिन्दर सिंह, दिलावर खान, नवाब खान, भाल सिंह, महमूद सईद, गुलाम मुहम्मद अल्लादिता, जागीरा राम, सरदार मुहम्मद , अब्दुल हमीम खान, ज्ञान सिंह, ले. कर्नल जे.ऐ. किटसन तथा गंगासरन। 7 दिसम्बर, 1946 को इन तीनों के बयान कोर्ट में रिकार्ड़ किए गए थे।

8 से 13 दिसम्बर, 1946 तक बचाव पक्ष के गवाह पेश किए गए। भोला भाई देसाई ने एक सौ से ज्यादा बचाव पक्ष के गवाहों के नाम दिए थे, लेकिन अन्त में ग्यारह गवाहों के ही बयान दर्ज करवाए थे। उनके नाम हैं, रेंजो वाईस मिनिस्टर ऑफ फोरेन अफेयर्ज मिस्टर टेरबो, हाचिया, जापान के विदेशमंत्री, श्री एस.ए. अय्यर, लोगनाथन एडमिनिस्ट्रेटर आजाद सिंह, सरकार अण्डेमान तथा श्री दीनानाथ डायरेक्टर ऑफ आजाद हिन्द बैंक। श्री शिव सिंह मेम्बर आई.एन.ए. तथा श्री बी.एन. नन्दा, कॉमन वैल्थ डिपार्टमेंट, भारत सरकार, जो 9 दशों द्वारा मानी गई थी, जिसका कानूनी तौरपर आजादी की लड़ाई लड़ने का अधिकार था। इस सरकार की अपनी सेना थी, जिनका कानूनी तौरपर आजादी की लड़ाई लड़ने का अधिकार था। जापानी जनरल काडोकारा ने तो यह स्पष्ट कर दिया था कि आई. एन.ए. ने कंधे से कंधा मिलाकर अपनी आजादी लड़ाई लड़ी है। भोला भाई देसाई ने अन्त में अपनी जिरह में तो कमाल ही कर दिया था। अन्तर्राष्ट्रीय कानून का हवाला देते हुए उन्होंने यह साबित कर दिया था कि यह आई. एन.ए. के लोगों का हक था। उन्होंने कहा था कि केवल वही चार्ज है कि अंग्रेज के खिलाफ युद्ध किया, मर्डर चार्ज तो उसका भाग है। क्या यह संभव है कि केवल उन तीन व्यक्तियों के विरूद्ध जंग दर्ज थी। ये तो उस सेना के अंग थे, जिसने अंग्रेजी राज्य के विरूद्ध लड़ाई छेड़ी। अतः यह व्यक्तिगत मुकदमा न होकर, एक सामूहिक मुकदमा है। स्वतंत्रता के लिए जंग करना कोई जुर्म नहीं है।

भोलाभाई देसाई ने आगे चलकर यह कहा कि स्वतंत्र भारत की प्रोविजनल सरकार का ऐलान था और साम्राज्य के विरूद्ध लड़ाई करने का वह हक प्राप्त कर चुकी थी।

आई.एन.ए. का गठन करने के दो मकसद थे। एक तो मुख्य रूप से स्वतंत्रता प्राप्त करना, दूसरा भारतीयों की तथा प्रवासी भारतीयों की जान व माल की रक्षा करना, दक्षिण पूर्व एशिया में आई.एन.ए. ने लड़ाई

केवल ब्रिटिश सेनाओं के विरूद्ध नहीं लड़ी, अपितु समय पड़ने पर उसने जापानियों से भी युद्ध किया।

केवल सिंगापुर में 30,000 में से 4500 भारतीय सैनिकों ने आत्म–समर्पण किया था और वे सभी आई.एन.ए. में आ गए थे। उन्होंने जनरल आईजन होवर की घोषणा को याद दिलाया, जो उन्होंने मार्कक्वीस ऑफ फ्रांस के विषय में कही थी। अंत में भोला भाई देसाई ने कहा था कि सन् 1776 में जानबूझकर अमेरिकन कालोनी व राजा की सरकार को नकार दिया था और अपने मुल्क को तरजीह दी थी तो भारतवासी तथा आई.एन.ए. भी इसी प्रकार से कहने और करने के हकदार हैं।

22 दिसम्बर, 1945 को सर एन.जी. इन्जीनियर ने सरकारी पक्ष की ओर से बहस की थी। उन्होंने कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून को यहां पर लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह दो मुल्कों का आपसी सवाल नहीं था। यह तो सरकार तथा उसके तहत रहने वाले लोगों द्वारा सरकार के विरूद्ध लड़ाई का मामला बनता है। ये इण्डियन आर्मी एक्ट, 1911 की ध ारा–2 के अन्तर्गत आते हैं। उन्होंने आगे चलकर कहा था कि यह कोर्ट अन्तर्राष्ट्रीय अदालत नहीं है। यह तो इण्डियन आर्मी एक्ट के तहत गठित की गई है और उसी के तहत निर्णय करने के लिए मर्डर का चार्ज, जो अलग से दर्शाया गया है।

इसी प्रकार जज एडवोकेट ने 29 दिसम्बर, 1945 को अपनी बात कहकर कोर्ट के फैसले को स्थगित कर दिया। उसके उपरान्त कोर्ट ने तीनों मुलजिमों को कानूनन कसूरवार माना और ताउम्र की सजा तथा तमाम वेतन इत्यादि को जब्त करने की सजा सुना दी और कमाण्डर–इन–चीफ को कनफरमेंशन के लिए भेज दिया गया।

राष्ट्रीय जागरूकता तथा रिहाई

जब यह कोर्ट मार्शल चल रहा था, तब सारे भारतवासियों की निगाहें लालकिले के कोर्ट पर टिकीं हुईं थी। इस भावुकता व जागरूकता से ब्रिटिश सरकार भय खाती थी और उन्होंने अपनी पॉलिसी में बदलाव करने की सोची। जो अब भारतवासी स्वतंत्रता के निकट पहुंचने वाले थे। इस लड़ाई से जुड़े हालात जानने के लिए हमें थोड़ा सा पीछे जाना होगा।

कांग्रेस द्वारा आई.एन.ए. वालों को मदद देना, कुछ कांग्रेसियों को हजम नहीं हो रहा था। यह बात जवाहर लाल नेहरू को एक संवाददाता ने बताई और उनके विचार जानने चाहे। नेहरू ने इसके उत्तर में कहा था कि यह सब कुछ कांग्रेस का सर्वस्व दृष्टिकोण था। 16 अगस्त, 1945 को उन्होंने कहा कि यद्यपि मैं सुभाष चन्द बोस की भारत की स्वतंत्रता संग्राम में दूसरे फासिस्ट मुल्कों की सेनाओं की मदद से या उन्हें मदद देकर जापानियों के हाथों नहीं खेल रहे हैं। आई.एन.ए. ने तो गांधी की नान वायलेंस मुवमेंट को कटहरे में खड़ा कर दिया। हालांकि कांग्रेसियों ने माना कि अहिंसा के द्वारा ही स्वतंत्रता प्राप्त करनी चाहिए, लेकिन, वर्ष 1945 के मध्य में यह अवधारणा बदल गई थी।

जुलाई 1945 के चुनाव में इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी का बहुमत आया था, और वह सरकार भारतीयों के प्रति सहानुभूति रखती थी। इससे भारतवासियों के मन में स्वतंत्रता के लिए आशा बढ़ चली थी। 19 सितम्बर, 1945 को इस मामले का निपटारा करने का ऐलान भी वायसराय ने कर दिया था। हालांकि यह प्रस्ताव कांग्रेस ने नहीं माना था। इसी के परिणामस्वरूप सन् 1945 के मध्य में सभी कांग्रेस के नेताओं को जेल से रिहा कर दिया गया था।

25 अक्तूबर, 1945 को पार्टी ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया था और सरकूलर भेज दिया था। अतः जापानियों द्वारा सैनिक सहायता देने वाली बात को मान लिया गया। 15 अक्तूबर, 1945 को ही कांग्रेस ने वायसराय को एक पत्र भेजकर यह स्पष्ट कर दिया कि आई.एन.ए. की जो कार्यवाही है, वह सभी हिन्दुस्तानियों की है तथा स्वतंत्रता संग्राम का एक हिस्सा है और लालकिले में जो मुकदमा चलाया जा रहा है, उसे अग्रसित करने दें। इस प्रकार से आई.एन.ए. ट्रायल से सारे भारत में तहलका मच गया। ऐलान कर दिया गया कि यदि आई.एन.ए. के लोगों को सजा हो गई तो भारत में गदर हो जाएगा।

इसके फलस्वरूप भारत की तमाम अन्य राजनीतिक पार्टियों के सामने स्थिति खड़ी थी। हिन्दू महासभा ने ऐलान कर दिया था कि ट्रायल को बन्द करो। मुस्लिम लीग के लिए अलग रहना कठिन हो गया। अतः

सभी को ही आई.एन.ए. का समर्थन करना पड़ा। सारे राष्ट्र में आई.एन.ए. की कहानी तथा बहादुरी के किस्सों का प्रसारण हुआ। इससे ब्रिटिश हुकूमत अचम्भित रह गई। उन्हीं दिनों गाने गाए जाने लगे। राष्ट्रीय तूफान खड़ा हो इंग्लैण्ड बनाम इंडिया की शक्ल ग्रहण कर ली थी।

सुभाष चन्द्र बोस को राष्ट्रीय नेता माना जाने लगा तथा आई.एन.ए. की पूजा होने लगी। फिलिप मेंशन ने लिखा था कि राष्ट्रीय भावना की लहर चल चुकी है। आजादी के लिए इस नई लहर ने डायरेक्ट ऑफ इन्टेलिजेंस को चिन्तित कर दिया था। उनकी रिपोर्ट पर सर वर्टन्डे एण्ड ग्लानसी पंजाब के गर्वनर ने कहा था–

''पंजाबियों की नजरों में सहगल, ढ़िल्लन तथा शाहनवाज बड़े नेता हैं। साधारण जनता इनके प्रति सहानुभूति रखती है। इनको यदि मृत्युदण्ड दे दिया गया तो 1919 का अमृतसर का हादसा दोहरा दिया जाएगा और भारत में पहले से भी तीव्र आन्दोलन होने की उम्मीद है।''

आई.एन.ए. का प्रभाव

आजाद हिन्द फौज ने अपने तरीके से स्वतंत्रता आन्दोलन के अंतिम वर्षों में राष्ट्रीय स्तर पर जो अपना प्रभाव छोड़ा, वह अचूक व प्रंशसनीय हैं। चाहे आई.एन.ए. का जीवन स्वतंत्रता आन्दोलन की अपेक्षा बहुत अल्प था, अपितु सराहनीय रहा है। विषेश तौरपर आई.एन.ए. के ट्रायल ने स्वतंत्रता आन्दोलन के अंतिम वर्षों में तेजी लाकर ब्रिटिश साम्राज्य को भगाने के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य किया।

आई.एन.ए. का आन्दोलन तथा तीन अधिकारियों के कोर्ट मार्शल के प्रोसेस ने साधारण जनता के मन को प्रभावित किया था। इनके रूख से ब्रिटिश सरकार को यह अहसास होने लगा था कि वह ज्वालामुखी पर बैठे हैं, जोकि किसी भी समय फट सकता है। अतः अंतिम फैसला लेने के लिए उनके मन में उतावलेपन की भावना को जन्म दिया। युद्ध के मैदान में ब्रिटिश सेनाओं को कई मोर्चों पर हराकर उन्होंने स्वतंत्रता के आन्दोलन को ऊँचाईयों पर चढ़ा दिया।

14 जुलाई, 1944 को सुभाष चन्द्र बोस ने आई.एन.ए. के अधिकारियों को संबोधित करते समय कहा था कि ''हिन्दू, मुस्लिम सिखों का खून बह रहा है, जो भारत को स्वतंत्र देखना चाहता है।'' इसी सन्दर्भ में गांधी जी ने कहा था कि ''यद्यपि आई.एन.ए. अपने तुरन्त के निशाने से चूक गई है, लेकिन, जो कुछ इन्होंने किया है, वह सराहनीय है और उन्हें इसपर गर्व होना चाहिए। सबसे बड़ी बात यह है कि ये किसी धर्म के पाबन्द न रहकर एक ही झण्डे के नीचे एकत्रित हो गए। बिना किसी धर्म और भेदभाव के इनकी एकता को नमन करता हूँ।''

उस समय सभी राजनीतिक पार्टियां कांग्रेस के साथ थीं, उनमें चाहे मुस्लिम लीग हो, चाहे हिन्दू महासभा हो, आई.एन.ए. के ट्रायल के विरूद्ध खड़ी दिखाई दीं तथा ब्रिटिश सरकार को यह भय हो गया कि यह कहीं सिविल डिस्ओबिडियंस आन्दोलन न हो जाए, जिससे देश में अराजकता फैलने का डर था। इस आन्दोलन ने आई.एन.ए. अफसरों को क्रांतिकारी तथा देशभक्त की संज्ञा दे दी और इनके पीछे मजबूत होकर खड़े हो गए। उस समय के समाचार पत्रों के माध्यम से आई.एन.ए. के विभिन्न मोर्चों के विषय में तथा रानी झांसी रेजीमेन्ट के विषय में तहलका मचा दिया। आई.एन.ए. ट्रायल्स को इंग्लैण्ड बनाम भारत करार दे दिया था। पूरे भारतवर्ष में सुभाषचन्द्र बोस को राष्ट्रीय नेता मानकर आई.एन.ए. के लोगों की एक प्रकार से पूजा होने लगी थी।

18 फरवरी, 1946 को श्री एन.ओ. हरे कार्निक ने न्यूयार्क टाईम्स में एक लेख लिखकर बताया था कि हिन्दू, मुसलमान के भेदभाव को भूलाकर, दोनों धर्म एक होकर, गोरों के विरूद्ध एक हो गए हैं। इसे सुभाष चन्द्र बोस का करिश्मा बताया था।

फरवरी, 1946 के दौरान जो झगड़े हुए थे, उनमें तो ये बात खुलकर सामने आ गई थी कि हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्म गौरों के विरूद्ध लामबंद हो गए हैं। यहां तक कि सन् 1921 की बात भी याद की गई, जब ये दोनों एक साथ गोरों के विरूद्ध बम्बई और दिल्ली में साथ–साथ खड़े हो गए थे।

आई.एन.ए. के कैप्टन राम सिंह रावत के अनुसार न केवल धार्मिक बन्धन टूट गए, अपितु छुआछूत भी नेस्तनाबूद हो गया था। सभी धर्म, वर्ग

और जाति के लोग एक ही जगह पर खाना खाते थे। ब्रिटिश सरकार को भारतवासियों की भावना के आगे झुकना पड़ा था। इस फैलती हुई आग से निकलने के लिए जिन तीन अफसरों को उम्र कैद की सजा देकर काला पानी भेजना था, उनकी रिहाई के लिए सोचना पड़ा और यह फैसला करना पड़ा कि उन्हें रिहा कर दिया जाए। उनकी सजा सिर्फ डिसमिसेल तक ही मान ली जाए।

नेहरू ने कहा था कि ये तीन अफसर तथा आई.एन.ए. को स्वतंत्रता संग्राम का प्रतीक माना जाता रहेगा।

एक अंग्रेज अलस्टेयर लैण्ड ने इस मुकदमें और आई.एन.ए. के बारे में कहा था कि अंग्रेजों के लिए भारतीय सेना पर भरोसा सोच समझकर करना चाहिए। विशेष तौरपर नैवी की बगावत के बाद क्या भारतीय सेना के बलपर और भरोसे पर अंग्रेज भारत में राज्य कायम रख सकेंगे। इसी घटना ने अंग्रेजों के मन में यह बात पैदा कर दी थी कि अब तो आजादी की बात को शीघ्र ही आगे बढ़ाया जाए। आई.एन.ए. के तीनों अफसरों के कैद से छूटने के बाद जो भाषण दिए गए, जिससे भारतीयों का मन आजादी की लड़ाई के लिए और भी बढ़ा। जो कैदी जेलों से रिहा कर दिए गए थे, उन्होंने यह समझ लिया कि हमारी आजादी की लड़ाई को अंग्रेजों ने मान लिया है। इससे कांग्रेस द्वारा लड़ी जा रही आजादी की लड़ाई में तेजी आई और इसमें भारी इजाफा हुआ। तीनों अफसरों ने समाचार पत्र में बयान दिया था कि, ''हमारी रिहाई भारत की जीत है। हमने नेताजी को वचन दिया था। इस आजादी के लिए लड़ने में जान की भी परवाह नहीं है। यह वादा आज भी ज्यों का त्यों है। हम स्वतंत्रता के लिए लड़े और लड़ते रहेंगे। अब तो हम जेल से बाहर हो गए हैं और अब अपनी सेवाएं अर्पण करने के लिए पंडित नेहरू और मौलाना आजाद को रिपोर्ट करेंगे। हमारा मकसद आगे भी हिन्दू–मुसलमान की एकता है, जयहिन्द।''

आई.एन.ए. के ट्रायल ने उस समय की आजादी की लहर को एक नया मोड़ दिया था। यह भारतवासियों की नैतिक जीत थी। इन कोर्ट मार्शल के ट्रायलों से भारत में आजादी के प्रति सम्पूर्ण जागृति पैदा हो गई थी। बचाव पक्ष के लिए बहस करते हुए भोला भाई देसाई ने कहा था कि ''हम अपनी गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए युद्ध कर रहे थे, न कि अन्य रियायत के लिए।''

जून, 1945 में जब आई.एन.ए. के सैनिकों को बन्धक बनाया गया था, तभी सुभाषचन्द्र बोस ने कह दिया था कि भारत की जनता की सहानुभूति हमारे साथ है। लोगों की आवाज इनके साथ थी, जिसमें न केवल इन तीनों की जान बचाई, अपितु सारे भारतवर्ष की लाज रह गई थी। इस वातावरण से भारतीय सेना में रह गए सैनिकों के दिमाग में आजादी की ज्वाला भड़कने लग गई थी। भारतीय सेना के तीनों अंगों की यह जानकारी अंग्रेज अधिकारियों को भी थी। कमाण्डर इन चीफ को इसकी चेतावनी दे गई थी कि कोर्ट मार्शल ने भारतीय सैनिकों के दिमाग पर नैतिक असर कर दिया है और अनुशासन भंग होने का अंदेशा पनप रहा था। अंग्रेज सरकार की सेना के अधिकारियों को यह महसूस होने लगा था कि आजाद हिन्द फौज द्वारा आत्म–समर्पण करना भी आजादी हासिल करने की रणनीति का एक हिस्सा था।

15 फरवरी, 1946 को एयरफोर्स के 200 जवानों एवं अधिकारियों ने रॉयल इण्डियन एयरफोर्स दिल्ली और कलकत्ता में हड़ताल कर दी थी और कोर्ट मार्शल के विरोध में नारेबाजी की थी। इसी के फौरन बाद रॉयल इण्डियन नेवी ने फरवरी, 1946 में बम्बई में बगावत की थी। यह पूरी नेवल फोर्स द्वारा की गई थी। 78 जहाजों ने जब बम्बई, कराची, कलकत्ता, मद्रास, कोचिन, विशाखापट्टनम, जामनगर, अण्डेमान और तमाम नेवी के स्थानों पर सभी ने इसमें भाग लिया था और यह बगावत आई.एन.ए. ट्रायल के परिणामस्वरूप थी। यह बगावत केवल सात दिन कलकत्ता में, दो दिन कराची में, तीन दिन बम्बई में, एक दिन मद्रास में चली थी। इस दौरान भारतीय सैनिकों द्वारा गोलियां भी चलाई गईं थीं। उन्होंने कहा था कि यह सब हमने आजाद हिन्द फौज से सीख लिया है। इसके उपरांत जहाजों पर यूनियन जैक के स्थान पर तिरंगा ध्वज लहराया था। इस हड़ताल में हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि सबने बराबर भाग लिया था और आजादी आन्दोलन में सहायता की थी। इससे अंग्रेजों के कान खड़े हो गए थे।

22 फरवरी, 1946 को इसकी सहानुभूति में बम्बई स्टूडेन्टस यूनियन ने हड़ताल का आह्वान किया था। जुलूस निकालते हुए 500 विद्यार्थियों पर लाठीचार्ज किया गया था। 22–23 फरवरी, 1946 को कलकत्ता में भी एक लाख विद्यार्थियों ने हड़ताल की थी। मद्रास में भी यही हाल रहा। विद्यार्थियों ने जयहिन्द के नारे लगाए। खुफिया रिपोर्ट द्वारा अंग्रेज सरकार को यह मालूम हो गया था कि भारतीय मूल के सैनिकों पर भरोसा नहीं किया जा सकता। रिवोलूशनरी सेन्टीमेंट, जो आई.एन.ए. द्वारा पैदा कर दिए थे, ने सारे भारत को अपनी बाहों में ले लिया था। नवम्बर, 1945 तथा फरवरी, 1946 में जो हिंसा भड़की थी, वह एक अनोखी थी और जिससे अंग्रेजी सरकार की चूलें हिल गईं थीं, जिससे अंग्रेजों का प्रभाव कम होता जा रहा था।

हाऊस ऑफ कॉमन्स में कहा गया था कि, 'भारत अब राजनीतिक तौरपर परिपक्व हो गया है। इस सच्चाई को मान लेना चाहिए।' इन्हीं दिनों ब्रिटिश सरकार ने केबिनेट मिशन बनाकर भारत भेज दिया था, जो आजादी देने के विषय में भारतीयों की सहायता करेगा। भारत में अंतरिम सरकार का गठन किया गया। इस सरकार ने सर्वप्रथम दो बातों पर ध्यान दिया, आई.एन.ए. के बन्दियों को छोड़ना तथा उनके वेतन आदि देने के बारे में विचार करना।

कमाण्डर इन चीफ तथा वायसराय तो बन्दियों को न छोड़ने पर अड़े हुए थे। यहां तक कि कमाण्डर इन चीफ ने तो कह दिया था कि यदि आई.एन.ए. के बन्दी रिहा कर दिए गए, वह इस्तीफा दे देंगे। इस गतिरोध को नए वायसराय लार्ड माऊन्टबेटन ने हल किया कि इस प्रश्न को कोर्ट मार्शल को सौंप दें। इसपर कमाण्डर इन चीफ सहमत हो गया था। 29 मार्च, 1946 को नेहरू ने संसद को बताया था कि आई.एन.ए. वालों को पेंशन दी जाएगी, लेकिन उन्हें सेना में वापिस नहीं लिया जाएगा।

तीन बहादुर सेनानी

लालकिले में बन्दी बनाने के उपरान्त ब्रिटिश सरकार ने शाह नवाब खान, प्रेम कुमार सहगल तथा गुरबख्श सिंह ढ़िल्लों की जानकारी के बिना आई.एन.ए. का इतिहास पूरा नहीं हो सकता। इसलिए इन तीनों का संक्षिप्त परिचय यहां दिया जा रहा है।

शाह नवाज खान

यह योद्धा रावलपिण्डी जनूजा राजपूत परिवार में सन् 1914 में पैदा हुआ। उनके पिता टीका खां उस जिले में आदिवासियों के नेता थे और भारतीय सेना में 30 वर्ष नौकरी कर चुके थे। यह बालक 1932 में 'प्रिन्स ऑफ वेल्स', जिसे आर.आई.एम.सी. देहरादून कहते हैं, में पढ़ने के लिए चले गए थे और इन्होंने उसके उपरांत आई.एम.ए. देहरादून में प्रवेश किया तथा सन् 1934 में आई.सी. 58 का नंबर लेकर कमीशन प्राप्त किया। उन्होंने 'दी रॉयल नॉर्थ फॉक रेजीमेन्ट' में झांसी के स्थान पर भारतीय सेना में प्रवेश किया। सन् 1941 में इस नवयुवक अधिकारी को मलाया जाने का हुक्म हुआ और सब युद्धों में भाग लेते हुए अंतिम स्थिति में सन् 1945 में लालकिले के अन्दर कैदी के तौरपर आए। जनवरी, 1942 में जब पलटन कैद हुई तो ब्रिटिश अफसर तो भाग गए और भारतीय मूल के अफसर सैनिकों के साथ ही जापान की कैद में चले गए। 16 फरवरी, 1942 को ब्रिटिश अफसरों को छोड़कर भारतीय मूल के अधिकारियों को कैदियों के साथ ही जापानियों के हवाले कर दिया गया। प्रारंभिक दिनों में आप आई. एन.ए. के विरूद्ध थे, लेकिन अंततः आपने मलाया में फरवरी, 1943 में आई. एन.ए. में प्रवेश किया। नवम्बर, 1942 में कैप्टन मोहन सिंह और जापानियों के बीच मनमुटाव होने से दिसम्बर, 1942 में आई.एन.ए. को तोड़ दिया गया था। शाह नवाज खान को प्रोविजनल सरकार में मंत्री के पद से सुशोभित किया गया था। अक्तूबर, 1943 में आपने सुभाष ब्रिगेड की कमान संभाली और अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध किया।

उसके उपरांत हालात ने पलटा खाया और स्थिति ऐसी आ गई कि आप घेराबन्दी में आ गए। आपके पास तीन रास्ते थे, पहला रास्ता, आत्महत्या करना, दूसरा, शत्रु की बात मानकर माफी मांग लेना और तीसरा था, अपने आपको समर्पित कर देना। आपने तीसरा रास्ता अपनाया और यह कहा कि मुझे कोर्ट मार्शल करके शूट कर दिया जाए। अंततः कोर्ट मार्शल के बाद रिहा हो गए।

प्रेम कुमार सहगल

25 मार्च, 1917 को होशियारपुर जिले में श्री अछरू राम के घर जन्म लिया। जालन्धर में इनके पिता वकालत करते थे। आर्य समाज के समर्थक थे। इन्होंने भारतीय इण्डियन मिलेटरी अकादमी में सन् 1936 में प्रवेश किया। इन्होंने 19 जनवरी, 1938 को आई.सी.नं. 226 प्राप्त करके 2/10 बिलोच रेजीमेंट में प्रवेश किया। सन् 1940 में द्वितीय बटालियन में तब्दीली हो गई और आप मलाया चले गए। जापान के साथ युद्ध हुआ और 4 फरवरी, 1942 को जापानियों ने कैद कर लिया और सीधे कैप्टन मोहन सिंह को सौंप दिया। 17 फरवरी, 1942 को ही बटालियन से आई.एन.ए. में पदार्पण कर किया। आपको भारत सरकार की अस्थायी सरकार में मिलीटरी सेक्रेटरी के पद पर तैनात किया। आपने ऑफिसिएटिंग चीफ ऑफ स्टाफ तथा डिप्टी, एड्यूटैन्ट जनरल भी रहे। 28 सितम्बर, 1945 को कैप्टन बन्ता सिंह की जगह आपको भेजा गया और अप्रैल, 1945 में आपको बन्दी बना लिया गया। बन्दी के तौरपर 18 जून, 1945 को लालकिले में भेज दिया गया, जहां आपका ट्रायल हुआ। आपके पिता श्री अछरू राम उन दिनों पंजाब हाईकोर्ट के न्यायाधीश के पद पर तैनात थे।

गुरबख्श सिंह ढ़िल्लों

18 मार्च, 1914 को अमष्तसर जिले के अल्गो गाँव में साधारण किसान परिवार में बालक गुरबख्श सिंह ने जन्म लिया। प्रारंभिक शिक्षा गर्वनमेंट हाई स्कूल, चुनियन लाहौर में हुई। 1933 में भारतीय सेना में प्रवेश कर गए और सन् 1938 में आई.एन.ए. ज्वाईन करके आई.सी.नं. 336 के तहत 26 जुलाई, 1939 को कमीशन प्राप्त करके 1/4 पंजाब रेजीमेंट में प्रवेश किया। फौरन ही इनको मलाया भेज दिया गया। जाते ही रेजीमेंट कैद हो गई और इन्हें कैदी के तौरपर सीधे ही कैप्टन मोहन सिंह की आई.एन.ए. में भेज दिया गया। 1 सितम्बर, 1942 को आई.एन.ए. में लेफ्टिनेंट के पद पर नवाजा गया और डिप्टी क्यू.एम.जी. बना दिया गया। 13 नवम्बर, 1944 को आपको नेहरू ब्रिगेड का कमाण्डर बनाया गया। आपने आजाद हिन्द फौज के कमाण्डर होने के नाते नयांडजू तथा तांजांग की लड़ाई में भाग लिया और

गुरिल्ला युद्ध भी करते रहे। फरवरी, 1945 में आपकी पलटन पुनः बन्दी बना ली गई और आपको लालकिले में बन्दी बनाकर भेज दिया गया। आप भारत की आजादी के बाद, सन् 1962 में एक बार फिर आपने अपनी सेवाएं भारतीय सेना को दी और आप सन् 1964 से सन् 1967 तक एन.सी.सी. में एक्टिंग कैप्टन के पद पर रहे। आपकी सेवाओं को 12 अप्रैल, 1998 को ही पहचाना गया और पद्म भूषण से नवाजा गया। उन्हीं दिनों आपके नाम पर एक डाक टिकट भी जारी किया गया। जहां आप तीनों अधिकारी कैद थे, उस जगह को लालकिले के सलीमगढ़ हिस्से का नाम आजाद हिन्द फौज के नाम पर स्वतंत्रता स्मारक बनाया गया। आप 92 साल की आयु में 16 फरवरी, 2006 को निधन हो गया।

उपसंहार

आजाद हिन्द फौज के विषय में चौधरी रणबीर सिंह के विचार स्पष्ट तथा सशक्त थे। अन्तरिम संसद की डिबेट्स के पृष्ठ 304 पर 7 फरवरी, 1950 को चौधरी साहब द्वारा उठाया गया मुद्दा आज भी सार्थक है। मैं उन्हीं के शब्दों में बयान करना चाहता हूँ। चौधरी साहब ने कहा,

"इण्डियन नेशनल आर्मी किसी आर्मी से कम नहीं थी, लेकिन उनके साथ में, मैं यह तो नहीं कहता कि बर्ताव बहुत ज्यादा खराब किया गया, लेकिन इतना अच्छा भी नहीं किया गया, जितना अच्छा बर्ताव उनके साथ करना चाहिए था।"

इसके अलावा भारतवर्ष में इन 64 वर्षों के दौरान सभी पार्टियों की सरकारें आई औंर अपना काम करके चली गईं। इसी दौरान हमें हमने अपनी पुरानी सभ्यताओं को पुनर्जिवित करने के लिए कई जगहों के नामें का परिवर्तन किया। जैसे बम्बई से मुम्बई, मद्रास से चन्नई, कलकत्ता से कोलकात्ता, पूना से पूणे इत्यादि और आजकल भोपाल का नाम परिवर्तन करके इसे भोजपाल बनाने की मुहिम चला रही हैं। लेकिन, बड़ी विडम्बना की बात है कि भारत में आजादी के आन्दोलन के दौरान अण्डेमान तथा निकोबार द्वीपों को जापान ने जीतकर आई.एन.ए. को सौंप दिया था, जहां पर भारत की प्रोविजनल सरकार का गठन किया गया और सर्वप्रथम तिरंगा

लहराया गया। इसके साथ ही इन द्वीपों के नाम बदलकर अण्डेमान को 'शहीद' और निकोबार को 'स्वराज' नाम दिया गया और ले.कर्नल लोगनाथन को वहां का चीफ कमिश्नर नियुक्त किया गया था। हम किस कारण से इन दो द्वीपों का नामकरण फिर से 'शहीद' और 'स्वराज' नहीं रख रहे, जोकि यह काम बहुत पहले हो जाना चाहिए था। यह भूल सुधार यथाशीघ्र कर लेनी चाहिए।

आई.एन.ए. के विषय में बहुत कम पुस्तकें प्राप्य हैं। इन पर ज्यादा शोध नहीं हुआ। इसका कारण समझ में नहीं आ रहा है। आजाद हिद फौज के अधिकतर सैनिक धीरे–धीरे स्वर्ग सिधार रहे हैं। हमें यह विरासत बचाने प्रयास करने चाहिएं। हमारी आजादी की लड़ाई का यह सुनहरा अध याय है।

मुम्बई में रॉयल इण्डियन नेवी विद्रोह : एक मील का पत्थर

–विजय ग्रेवाल (पत्रकार)

भारत के क्रांतिकारियों के संघर्ष, मजदूरों, किसानों, सशस्त्र सेनाओं के संघर्ष (पेशावर काण्ड, रॉयल इण्डियन नेवी की बगावत और आई.एन.ए.) देशी रजवाड़ों की प्रजा के संघर्ष तथा युद्धोत्तरकाल के उभार ने विभिन्न धाराओं को एक ऐसे ज्वार का रूप प्रदान किया, जिसके तूफानी वेग के फलस्वरूप ब्रिटिश शासन चरमरा कर धराशाही हो गया।

हिटलर की पराजय, फासिस्ट इटली और जापन का बिना शर्त आत्म–समर्पण तथा फासिस्ट–विरोधी संघर्ष की सम्पूर्ण विजय। इन सब घटनाओं से विश्व क्रांतिकारी शक्तियों को अभूतपूर्व गति और ताकत प्राप्त हुई। इससे सारे विश्व में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की एक जबरदस्त लहर पैदा हो गई। युद्धोत्तर काल में मुक्ति आन्दोलनों की इस प्रचंड लहर की अवधि में स्वतंत्र भारत का उदय हुआ और विश्व के अन्य भागों में देश स्वतंत्र हो गए।

युद्धोत्तर अभार की गूंज भरत में सन् 1945 में ही सुनाई पड़ने लगी थी। इसकी सबसे जबरदस्त अभिव्यक्ति रॉयल इण्डियन नेवी के कैदियों पर चल रहे मुकदमें के विरूद्ध जबरदस्त प्रदर्शन से हुई। रॉयल इण्डियन नेवी के कैदी जनता की दृष्टि में महान वीरों का स्थान ले चुके थे। छात्र और मजदूर प्रदर्शन की सबसे अगली कतारों में थें प्रदर्शन इतने बड़े पैमाने पर था और जनता का दृढ निश्चय इतना प्रबल था कि जब प्रदर्शनकारियों पर गोलियां चलाईं गईं तो भी वह दृढ़ता के साथ खड़े रहे, साम्राज्यवादियों की उच्चतम स्तर पर भी घबराहट पैदा होने लगी, उनकी रूह कांप गयी। उनके बीच जो पत्र व्यवहार हुआ, उसमें उनकी घबराहट स्पष्ट देखी जा सकती है। अन्ततः उन्हें कुछ समझ आयी और उन्होंने आजाद हिन्द फौज के कैदियों को रिहा कर दिया, पर आन्दोलन उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला गया। 18 फरवरी, 1946 को रॉयल

इण्डियन नेवी की टुकड़ियों ने विद्रोह कर दिया।

उन्होंने बम्बई, कराची और काचीन बन्दरगाहों पर खड़े जहाजों पर कब्जा कर लिया। रॉयल इण्डियन नेवी की इस कार्यवाही से सरदार वल्लभ भाई पटेल काफी आहत हुए और उन्होंने एक बयान जारी करके जनता से ऐसी कार्यवाहियों से दूर रहने की अपील की। जनता पर उनकी इस अपील का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अगले दिन, 19 फरवरी, 1946 को बम्बई के मजदूर वर्ग और हर आदमी ने अपना उत्तर दिया। बम्बई में एक भी मल का पहिया नहीं घूमा। रेलवे के तीनों कारखाने और छोटे–बड़े सब कल–कारखानों में हड़ताल हुई। इस दिन तीन लाख मजदूर हड़ताल के जुलूस सड़कों पर घूम रहे थे। पूरे बम्बई शहर में रैलियां हुईं। सब दुकानें–बाजार बन्द रहे।

जनता के इस आन्दोलन को दबाने के लिए ब्रिटिश सेना ने हस्तक्षेप कर गोलियों के जरिए जनता को भूनकर विद्रोह को दबाने की कोशिश की। खून की नदियां बह निकलीं, पर जनता ने संसाधनों और प्रतिरोध का अद्भूत उदाहरण प्रस्तुत किया और उनके शौर्य एवं दृढ़ता ने ब्रिटिश दमन और आतंक को पराजित कर दिया। रॉयल इण्डियन नेवी के समर्थन में भारतीय जनता की इस कार्यवाही से ब्रिटिश सरकार हिल उठी थी।

इस आन्दोलन के दौरान ब्रिटिश सेना की गोलियों से तीन दिनों में मरने वालों की संख्या सरकार की तरफ से 250 से अधिक बताई गई थी। इनमें 17 मृतक अकेले परेल–बाग के मजदूर क्षेत्रों से थे। जहां मजदूर वर्ग के केन्द्र बम्बई में बड़े पैमाने पर गोलियां चलाईं गईं। मरने वालों की असली संख्या 500 के लगभग थी। इसी दौरान 22 फरवरी, 1946 को दिल्ली में वायुसेना ने भी हड़ताल कर दी। जबलपुर में पैदल सेना अपने हथियार उठाए। रॉयल इण्डियन नेवी के समर्थन में प्रदर्शन करने सड़कों पर आ गई।

जब बम्बई में यह भावोत्तेजक घटनाएं चल रहीं थीं, 23 फरवरी, 1946 के अंक में लिखा था, ''साम्राज्यवाद–विरोधी संघर्ष में इतने लोगों के उतर जाने से देश में एक नयी स्थिति पैदा हो गई है।'' 27 फरवरी, 1946 को कराची से गवर्नर सर एफ मूडी ने वायसराय को एक रिपोर्ट भेजी,

जिसमें गवर्नर ने लिखा था कि रॉयल इण्डियन नेवी के समर्थन में भारत की जनता का आन्दोलन दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इस पर अब काबू पाना कठिन है।

जब जहाजी व मजदूर बम्बई और कराची में अपना खून बहा रहे थे और अभी जमीन पर नका खून जमा भी नहीं था कि 2 मार्च, 1946 को कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आजाद ने बयान दिया – ''हड़तालें, कामबंदी और आज की अन्तरिम सत्ता की अवज्ञा और खिलाफवर्जी बिलकुल अनावश्यक कार्यवाईयां हैं विदेशी सरकार जो अब कामचलाऊ सरकार की तरह कार्य कर ही है, उसके साथ इस तरह संघर्ष शुरू करने की कोई वजह नहीं है।''

परन्तु भारत की जनता यह देख रही थी कि वह ''काम चलाऊ'' और ''अन्तरिम सत्ता'' उस समय सैकड़ों मजदूरों को गोलियों से छलनी कर रही थी तथा पूरी की पूरी नेवी को उसके जहाजियों समेत समुद्र में डुबोने की धमकी दे रही थी।

रॉयल इण्डियन नेवी के समर्थन में मजदूरों द्वारा की गई हड़ताल में कोंग्रेस द्वारा सहयोग न करने का ब्रिटिश सरकार ने यह अर्थ लगाया कि उन्हें भारतीय जनता पर दमन–अत्याचार करने की पूरी छूट है। कांग्रेस के नेतृत्व, चाहे इस पर विश्वास न करे, पर हकीकत यह है कि (कांग्रेस नेतृत्व के), बयान का दमन–अत्याचार अधिक करने के लिए इस्तेमाल किया गया है।

एक समाचार पत्र ''पिपुल्स एज'' ने उस समय लिखा था – ''हमारी सेना के जवानों और नागरिक जीवन में उनके भाईयों का खून स्वतंत्रता संघर्ष इतिहास में पहली बार घुलमिल कर बहा है। भारतीय क्रांति एक नए दौर में दाखिल हो गई है।''

इस जन विद्रोह में मजदूर वर्ग का जबरदस्त योगदान था और उनके साथ ही सशस्त्र सेना के तीनों हिस्सों में भी विद्रोह का वातावरण बन गया था। मजदूर वर्ग का आन्दोलन और सेना में विद्रोह का वातावरण इन दोनों का सहमेल ही व9ह कारण था, जिसमें अंग्रेजों की भारत पर अधि पत्य रखने की सारी योजनाओं पर पानी फेर दिया। आर्मी हैडक्वार्टर से

रिपोर्ट आ रही थी कि ''सेना की सामान्य कार्यविधि के तरीके से यह अनुमान लगाना सम्भव नहीं है है कि क्या होने वाला है, किस स्तर तक विरोध जा सकता है और उसे कैसे निपट जाएगा?''

कांग्रेस नेतृत्व द्वारा खुला विरोध व्यक्त करने के कारण नौसेना की टुकड़ियों को हड़ताल वापस लेनी पड़ी। परन्तु ऐसा करते समय भी उन्होंने समुचित आत्म–सम्मान के साथ घोषणा की कि वह ब्रिटिश आकाओं के सामने नहीं, भारतीय जनता के समक्ष आत्म–समर्पण कर रहे हैं।

परन्तु, हड़ताल की लहार की तीव्रता बढ़ती ही रही। 1 जुलाई, 1946 को डाक कर्मचारियों ने राष्ट्रव्यापी हड़ताल कर दी 21 जुलाई, 1946 को उनके समर्थन में अभूतपूर्व आम हड़ताल हुई।

इतिहास करवट बदल रहा था। ब्रिटिश हकूमत को चेतावनी मिल गई थी कि खैर इसी में है कि अब वह यहां से चली जाए।

ब्रिटिश संसद में हमूमत के प्रवक्ता ने कहा कि ब्रिटेन के पास दो ही विकल्प रह गए हैं–या तो सत्ता को बहाल रखने के लिए ''सेना की ताकत पर्याप्त रूप से बढ़ाए'' या ''समझौता कर भारत को राजनैतिक सत्ता का हस्तान्तरण कर दे।''

खण्ड–9

प्रजामण्डल आन्दोलन

देशी रियासतों का इतिहास

–हरी राम आर्य

अध्यक्ष, हरियाणा स्वतंत्रता सेनानी सम्मान समिति।

15 अगस्त, सन् 1947 को भारत स्वतंत्रता सम्पन्न देश बना। उससे पहले ब्रिटिश शासन द्वारा अपने साम्राज्य को निष्कंटक बनाये रखने के लिए, 'फूट डालो और राज करो' की नीति के तहत ब्रिटिश शासित क्षेत्र के अतिरिक्त शेष देश को छह सौ रियासतों में बांटा हुआ था, ताकि संगठनात्मक दृष्टि से भारत टुकड़ों में बंटा रहे।

जिन रियासतों के शासक हिन्दू थे, वे राजा–महाराजा आदि कहलाते थे और जिन रियासतों के शासक मुसलमान थे वे नवाब कहलाते थे। छोटी–बड़ी रियासत के मान्य दर्जा पाने के लिए रियासत का विस्तार तथा वित्तीय स्थिति की समीक्षा और राजा अथवा नवाब की निजी योग्यता एवं उसके द्वारा ब्रिटिश सरकार की सहायता और बड़े अंग्रेज अधिकारियों को प्रसन्न रखने की कला पर निर्भर करता था।

राजा और नवाब अपने आपको चाहे जितने बड़ा मानते रहे हों, किन्तु, ब्रिटिश प्रशासक उन्हें अपना दास समझते थे। रियासत हैदराबाद दक्षिण के नवाब के अतिरिक्त अन्य रियासतों के शासकों को उतने व्यापक अधिकार नहीं मिले हुये थे।

राजा या नवाब की हैसियत के अनुसार ही उन्हें ब्रिटिश राज दरबार में सम्मान मिलता था। विशेष अवसरों पर वे तोप की सलामी ले सकते थे।

तोप की सलामी के लिए कौन कितना अधिकृत था :–

इनमें से बड़े पाँच शासकों को 21 तोपों की सलामी, इनसे कनिष्ठ 6 शासकों को 19 तोपों की सलामी, 12 को 17 तोपों की सलामी तथा 17 को 15 तोपों की सलामी, 16 नरेषों को 13 तोपों की तथा 29 नरेशों को 11 तोपों की और 38 नरेशों को 9 तोपों की सलामी के लिए अधिकृत किया हुआ था।

तोपों की सलामी के वर्गीकरण की दृष्टि से रियासतें :–

- क्र बड़ौदा, ग्वालियर, हैदराबाद दक्षिण, जम्मू एवं कश्मीर, मैसूर, पाँच नरेशों को किसी उल्लखनीय अवसर पर 21 तोपों की सलामी लिए जाने का अधिकार था। भोपाल, इन्दौर, कलात, कोल्हापुर, ट्राऊनकोर, उदयपुर आदि छह नरेशों को 19 तोपों की सलामी का अधिकार था।
- क्र 17 तोपों की सलामी के अधिकारी, भावलपुर, भरतपुर, बूंदी के राव राजा, कोचीन, कच्छ, जयपुर, करौली, कोटा, जोध ापुर (मारवाड़), पटियाला, रेवा तथा टाँक नरेष थे।
- क्र 15 तोपों की सलामी अलवर, भूटान, वंसवाड़ा, दत्तिया, देवास (वरिष्ठ), देवास (कनिष्ठ), धार, धौलपुर, डूंगरपुर, ईडर, जैसलमेर, खैरपुर के पीर, किशनगढ़, औरछा, प्रतापगढ़, रामपुर, सिक्किम, षिरोही आदि नरेशों का था।
- क्र 13 तोपों की सलामी का अधिकार बनारस, भावनगर, कूचबिहार, धारंगधरा, जावरा, झालावाड़, जीन्द, जूनागढ़, कपूरथला, नाभा, नवानगर, पालनपुर, पोरबंदर, राजपीपला, रतलाम, त्रिपुरा नरेशों को था।
- क्र 11 तोपों की सलामी वालों में अजयगढ़ के महाराजा, अलीराजपुरा के राजा, बवनी के नवाब, बरवाणी, विजावर, बिलासपुर, खम्भात, चरखरी, चम्बा, छतरपुर, फरीदकोट, गोंडवाना, जजीराना, झाबुआ, मालेर कोटला मंडी, मणिपुर, मोरवी, नरसिंहगढ़, सलियाना पन्ना, पुदुकोटा, राधनपुर, राजगढ़, सलियाना, सथारना, सीरमुर, सीतामणि, सुकेत, टिहरी आदि 29 रियासतें थीं।
- क्र 9 तोपों की सलामी वाले 38 राज्यों में वडासीनोर, बगनपेलना, वासदाना, वरांधना और के पंत सचिव, सीपद, जोहर, कालाहांडी, केकतुंग, बिलयपुर, किशन एवं सोकोतरा, लेहजाला लीमण्डी, लोहारू, लुपावाडा, मैहर, मयुरबंग, मोंग नै, मुधोल, नागोर, पालीताणा, पटना, राजकोट सचीन,

सांगली संतना, सांवतवाडी, शाहपुर, षहर मोकल्ला, सोनपुर, वढ़वान, बांकानेर, याग्वे, इनके शेष अन्य राज्यों को तोपों की सलामी का अधिकार नहीं था।

ब्रिटिश अधिकारी इन नरेशों को मान–सम्मान देने के लिए जिन शब्दों, उपाधियों का प्रयोग करते थे। उनकी बानगी भी देखिए –, अमूक——लेफ्टिनेंट जनरल, नामदार, फर्जदे खास दौलते इंगलेशिया, मनसूर–अलजमा, अमीर उल उमरा, महाराजाधिराज राज राजेश्वर श्री महाराज यदुवंशज, कुल भूषण, जी.सी.एस.आई., इ.जी.सी., बी.ओ.सी., जी.बी.ओ., ए.डी.सी. आदि नाना भान्ति की उपाधियों की भूल–भूलैया में भ्रमित कर उन्हें दास बनाये रखा जाता है।

जब रियासती राजा व नवाब मानसिक रूप से अंग्रेज प्रशासक के गुलाम थे तो उनकी जनता की क्या अवस्था रही होगी। वास्तव में रियासती जनता तो गुलामों की तिलाम थी। नवाब और राजा अपनी प्रजा के साथ क्या बरताव करते थे?

1. समस्त भारत में कृषि भूमि का लगान जितना लिया जाता था देशी रियासतों के क्षेत्रों में उससे दो–गुणा तथा तीन गुणा लिया जाता था।
2. लगान वसूली के लिए अमानवीय तरीके प्रयोग में लाये जाते थे। उदाहरणार्थ :–

रियासत दुजाना की निजामत नाहड़ के तहत बव्वा नाम का एक गाँव था। मई का महीना नाहड़ निजामत का एक चपड़ासी नाम अजीम बक्श कद पाँच फुट से कम, कुर्ता और तहमद बांधे, पैरों में जूतियां, जिनसे लोहे का नाल जड़े थे। गाँव में लगान वसूली के लिए आया। गाँव में दो बड़े नम्बरदारों को सहायता के लिए बुला लिया। अनावृष्टि के कारण फसल नष्ट हो चुकी थी। साहूकार का कर्जा, घर का खर्चा, पशुओं के लिए चारा, हारी–बिमारी सबके लिए रूपया और जिस कृषक से लगान वसूली की जानी थी। वह 6 फूट ऊँचा कदावर बसाऊ नाम का मेहनती किसान अपनी लाचारी से शर्माता सकुचाता आया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

तेज धूप जलता आकाश स्कूल के आंगन में एक पलंग बिछा दिया गया। बसाऊ से कहा गया कि वह लगान के रकम अदा करे, अन्यथा पलंग के दोनों तरफ पैर फैलाकर धूप में खड़ा रहे। मरता क्या न करता, लगान के अभाव का शिकार धूप में चौड़ी टांग कर खड़ा हो गया। मानव घातक यह दर्दनाक दृश्य देख कर न तो नम्बरदारों को दया आई और न ही अन्यों को हया आई। लगान की पाई न देने पर उन्हें भी यह दिन देखने पड़ते थे। अजीम बक्श का पारा बढ़ता चला था। गालियों की बौछार के बीच उसने अपने पाँव से एक जूती निकाली और लोहे की नाल जड़ी जूती बसाऊ के सिर पर मार दी। बसाऊ के सिर से खून टपकने लगा।

देशी रजवाड़ों में कितने अभावग्रस्त बसाऊवों के सिर से खून टपकता रहता था। लगान अदा करने के लिए बेटी तक बेचने पर देते थे। बेगार का प्रचलन प्रायः सब रजवाड़ों में था। गैर कानूनी उजरत चुकाये बिना, कर्ता की इच्छा के विरूद्ध, काम लेना बेगार कहलाता था। जब कभी आवश्यकता होती प्रशासन के कर्मचारी किसी ग्रामीण बेगार पर बुला लेते थे।

व्यवसायी कर :–

कुम्हार, चमार, खाती, लुहार, मणिहार, गाड़ी–वाहक, ऊट–वाहक, नाई, छोटे दुकानदार आदि सबको पेशेवाराना (व्यवसायी) काएना कर चुकाना पड़ता था। यद्यपि कर की राशि दो–चार रूपये से अधिक नहीं होती थी। किन्तु रूपया था कहां? और रूपये का मूल्य टुक ध्यान दें, वर्ष 1935 के आसपास चांदी एक रूपये तोला, खाद्य पदार्थ गेहूं एक रूपये के 15 सेर, बाजरा एक रूपये का 25–26 सेर, चना एक रूपये का 18–20 सेर, जौं 25–30 सेर, गुड़–शक्कर एक रूपये का 18–20 सेर, खाण्ड–बूरा एक रूपये का 15–16 सेर, घी (उन दिनों देशी घी ही था)। विदेशी डालडा कोटजम कोई नहीं जानता था। यदि विवाह शादी में चोरी–छिप्पा घी में मिलावट कर देता तो उसके विरूद्ध पंचायतें की जाती थीं और जुर्माने कर दिए जाते थे। घी का भाव एक रूपये का सवा सेर था। एक रूपये की दो अठन्नी, चार चवन्नी, आठ द्वान्नी, सोलह ईकन्नी होती थी। एक इकन्नी के

दो ढ़ब्बल या चार पैसे होते थे। एक पैसे की तीन पाई, अर्थात् एक रूपये के एक सौ बानवें भाग का भी प्रचलन था।

ग्रामीण जनता और उनकी न्याय व्यवस्था :–

वर्तमान काल में पंचायत–निर्वाचन की जो कानूनी व्यवस्था है और ग्राम प्रचायतों को लिखित संवैधानिक अधिकार हैं वे देशी रजवाड़ों में नहीं थे। यदि कहीं थे तो वे निष्क्रय थे। राज्य की ओर से किसी प्रकार का कोई दबाव नहीं था।

गाँव के ही किसी न्यायकारी आदर्शवान, परमार्थी व्यक्ति को पंच के रूप में सम्मानित कर दिया जाता था। धन, आयु सीमा या जाति के आध ार पर वह सम्मान नहीं मिलता था। अपतु त्याग–तपस्या, गहन अनुभव और न्याय के लिए निर्भिक निष्पक्ष सुविख्यात व्यक्ति को बड़ी–बड़ी पंचायतों में आमन्त्रित किया जाता था। अपने ग्राम की पंचायत में सम्मान मिल जाने पर बाहर के गाँवों की बड़ी पंचायतों में भी उन्हें बुला लिया जाता था और इस प्रकार के बहुत ऐसे तथ्य हैं, जो ग्रामीण समाज के संस्थापन तथा जीवन के उपयोगी साधन रहे हैं। गाँव में बसना, परस्पर भाईचारा, कृषि, व्यायाम, सम्मान, मनोरंजन और पारिवारिक रिश्ते–नाते आज के डिग्री धारक अभियन्ता समाज से बहुत अधिक मूल्य लेकर भी गाँव के आवास में वह सौन्दर्य नहीं ला सके हैं। पहले के ग्रामवासी गाँव को बसाते समय बड़ी बुद्धि कौशलता से काम लेते थे।

गाँव की बसाबत को देखकर ही आप पायेंगे कि गाँव को ऊँचे स्थान पर बसाया जाता था। वर्शा के जल के बहाव की व्यवस्था जल मल प्रवाही खालों के रूप में होती थी। गाँव के निकट अमृत जल का जोहड़, जोहड़ की पाल और पाल पर छायादार वृक्षों की रक्षा धार्मिक रूप देकर की जाती थी। तीज–त्योहारों पर गाँव की महिलाएं, पुरूष अपने विश्वास के जोहड़ की स्वच्छता और पालों की रक्षा करते थे।

वर्षा जल से जोहड़ में पानी के लिए जल सम्भरण स्थल के रूप में बणियों की स्थापना भी की जाती थी, बणियों में अनेक प्रकार के फलदायक छायादार वृक्ष तथा नाना प्रकार के औषधीय पादप उगते थे।

इन बणियों को गोचर भूमि के नाम से भी पुकारा जाता था, जिस पर ध
ानी–निर्धन भूपति–भूमिहीन सब ग्रामवासियों का समानाधिकार से उसका उपयोग करते थे।

गाँव के गौरे, गाँव का जोहड़, बणी, पाल, पालों पर सिर ऊँचा उठाये हरे–भरे वृक्ष और वृक्षों पर चहचहाते गीत गाते पक्षीगण, नित्य नूतन जीवन का सृजन करते थे। जोहड़ का पानी गंगाजल के समान पवित्र माना जाता था। कोई राजकीय कानून नहीं था, स्वयं सिद्ध मर्यादाएं थीं। तीज–त्यौहार छोटे–बड़े उत्सव, प्रतियोगिताएं इन्हीं स्थानों पर होतीं थीं।

सहकारिता :–

गाँवों में बालक जन्म से लेकर पालन पौषण, खेल, पढ़ाई, ब्याह–सगाई, खेत की बिजाई, फसल की कटाई और अनाज निकलाने यहां तक घर कोठार तक ले जाने में सहकार का बोलबाला होता था। ब्याह बरात और मनोरंजक आयोजनों के अतिरिक्त कुएं द्वारा सिंचाई घर, नोहरे (गऊशाला) के निर्माण, ब्याह के न्यौता कन्या दान सब सहकारिता के आधार पर होते थे। अन्त्येष्ठी संस्कार, सम्पन्नता, में भी सहकार सहानुभूतिपूर्वक प्रभावशाली थे।

जब कभी कोई कोई गाँव बसाया जाता था, या बन्दोबस्त होता था, उस समय वाजिबुल अर्ज के नाम से गाँव के संविधान की रचना की जाती है। उस अवसर पर उपस्थित प्रौढ़ नागरिकों में से दस पन्द्रह व्यक्तियों के वाजिबुल–अर्ज के आत्मसात के लिए हस्ताक्षर होते थे।

क्या होती है वाजिबुलर्ज?

जिस प्रकार संविधान की प्रस्तावना में आधारभूत संस्कार कर्त्तव्य और अधिकार दर्ज होते हैं। उसी प्रकार वाजिबुलर्ज में गाँव में बसने वालों कर्त्तव्य और अधिकार, बणी बजड़, रहन–सहन बोलचाल मान सम्मान के नियम लिखे होते हैं। यह पुस्तक गाँव के पटवारी के अधिकार में रहती है। यद्यपि स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात कुछ रस्म–रिवाजों में अन्तर किया गया है। वह समय की उचित माँग है।

9 अगस्त, 1942 के 'अंग्रेजों भारत छोड़ो', 'करो या मरो' से आगे बढ़ते हुए देश के महान विधिवेता भूला भाई देसाई, जवाहर लाल नेहरू आदि अनेक नेता न्याय के लिए संघर्श में जुट गए। डिल्लन सहगल शाहनवाज इन्कलाब जिन्दाबाद का नारा धरती–आकाश के बीच गुंजने लगा। जिस ब्रिटिश राज में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था, वह साम्राज्य भयभीत था। भारत पर षासन करने वाले अंग्रेज गांधी जी से प्रार्थना कर रहा थे कि उन्हें सकुशल उनके देश लौटने दिया जाए।

विश्व यौद्धिक परम्परा को तोड़ते हुए 9 अगस्त, 1945 ई. को अमेरिका ने हिरोशिमा और नागाशाकी पर अणु बम के प्रहार कर दूसरे युद्ध का समापन कर दिया। आजाद हिन्द सेनाएं दिल्ली की ओर कूच करने लगीं। हमारे देश भक्त सैनिक कभी ब्रिटिश साम्राज्य के शिकार न हो जाएं, इसलिए नेताओं ने नई हुंकार भरी थी।

दुजाना एक छोटी सी रियासत थी। नवाब को कोई संवैधिनिक शक्ति हासिल नहीं थी। परन्तु बिच्छू तो बिच्छू ही था। वह नहीं तो उसके अधिकारी आये दिन प्रजा को दुःखी करते थे। दुजाना को अधिकांश सहायता आर्य प्रतिनिधि सभा लाहौर द्वारा मिलती थी।

दुजाना शासन के आक्रोश का शिकार प्रजा को आये दिन होना पड़ता था। आजाद हिन्द सेना की ललकार कांग्रेस नेताओं की रिहाई से हमें बल मिला। दुजाना राज का पब्लिक सोसायिटीज़ एक्ट, लूट–खसौट के हम आदि तो बन चुके थे। परन्तु देश की आजादी हमें भी बुला रही थी। अजीब घटना थी। नवाब की पुलिस हमारे खेतों में तीतर पकड़ने पहुंचे, हम मना करें या रोकें तो हम पर ही लाठियां बरसाई जाएं। थाने फरियाद के लिए जाएं तो कार सरकार में मदालख्त के अपराध में हमें हथकड़ियां बांध
ी जाएं। हम पर अभियोजन चले और हमें सजा भुगतनी पड़ी। सच बात तो यह थी कि हमारा एक पैर कर्म क्षेत्र में तो दूसरा पांव जेल में रहता था।

एक दिन समाचार मिला। हरियाणा राठ का सत्याग्रह दल रेल द्वारा फरीदकोट रियासत में जा रहा है। लम्बी–चौड़ी बातें बताने वालों को सत्याग्रह में शामिल होने के लिए अवकाश नहीं था। अपने से कम आयु सर्वश्री स्योचन्द और चेतराम शर्मा को साथ लेकर जोतो मण्डी की उस

धर्मशाला में पहुंच गए, जहां से बाबू वृशभाष के सेतून में फरीदकौट के लिए सत्याग्रह का संचाल हो रहा था।

अपनी बारी आने पर हम भी मोर्चे पर पहुंच गए। सत्याग्रह चलता रहा। अन्त में एक दिन सन्देश मिला कि कल दोपहर पं. जवाहर लाल नेहरू फरीदकोट सत्याग्रहियों के बीच पधारेंगें। अनाज मण्डी में जलसा होगा।

चंचल मन में उस दिन सत्याग्रह की अपेक्षा नेहरू जी के दर्शन का अधिक चाव था। जैतू कैम्प फरीदकोट से कुछ दूरी पर था। जैतों पहुंच गए और जिस रेल में सवार होकर पं. जवाहर लाल नेहरू आ रहे थे, उनके साथ ही बैठ लिए।

नेहरू जी के साथ 10—12 कांग्रेस स्वयं सेवक थे। फरीदकोट रेलवे स्टेशन पर रेलवे स्टेशन से हम सब साथ चले। शहर की ओर कुछ कदम बढ़ाये कि फरीदकोट का डिस्ट्रीक्ट मजिस्ट्रेट धारा 144 के आदेश लेकर आगे आ गया। आदेश का कागज नेहरू जी को थमा दिया। कोई परवाह किये बिना नेहरू जी ने आदेश दिया, 'बढ़ जाओ आगे' और काफिला फरीदकोट शहर की ओर कूच करने लगा। घटना 16 मई, 1946 ई. की है। अनाज मण्डी में जलसा हुआ नेहरू का भाषण और राजा फरीदकोट का पतन।

यही नहीं हमें दुजाना रियासत में भी इन्कलाब लाना था। पैसा पास नहीं रियासती जनता भयांकित थी। मांगने पर बहुगाम के तीन सज्जनों ने चार रूपये इस शर्त पर उधार दिए कि नवाब दुजाना तक यह बात न पहुंचने पाए। बोलने का भी इतना अभ्यास नहीं था। हाथ की हथेली पर अधिक लगान वसूली, पुलिसिया अत्याचार—कोटा
परमिट के बारे लिख लेता। दो दिन के अभ्यास के बाद ठीक हो गया।

23 जून, 1946 ई. को विशाल जलसा नाहड़ (निजामत) में आयोजन किया एवं मंगली राम, चौधरी हीरा लाल चिनारिया आदि नेताओं ने शिरकत की। सार्वदेशिक सभा के मन्त्री श्री धर्म देव वाचस्पति की अध यक्षता में दुजाना राज्य प्रजामण्डल का गठन कर नव—संघर्ष शुरू कर दिया।

खण्ड—10

परिशिष्ट

संगोष्ठी–भूमिका

हरियाणा के विशेष सन्दर्भ में भारत का स्वतन्त्रता आन्दोलन

23–24 मार्च, 2011

सभागार, होटल एवं पर्यटन प्रबंधन संस्थान, म.द.वि.परिसर, रोहतक

संगोष्ठी में आप सब का स्वगत करते हुए चौधरी रणबीर सिंह शोधाकेन्द्र की ओर से हरयाणा के विशेष सन्दर्भ में भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन पर इस वर्ष के लिए संवाद की पृष्ठभूमि पर एक–दो बात रखना आवश्यक लगता है। संगोष्ठी का विषय चयन किसी खानापूर्ति की सरल कसरत का अंग न हो कर इस समझ का फल है कि भारत के जनसंघर्षों को आंकने पर आयातित दृष्टिदोष अभी भी हावी है जिससे वर्तमान व भविष्य हेतु सीखने का काम सामन्यतः अधूरा लगता है। यह संवाद इसलिए मात्र आरम्भिक कडी है।

जानी हुई बात हैं कि यहां पर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध तन कर खड़ा होने का ठोस कारण रहा है, जिसकी रणनीति तथा रणकौशल को प्रभावित करने में समय–समय की आर्थिक स्थिति के अतिरिक्त दो प्रमुख अनुभवों ने काम किया लगता है। इनमें एक अनुभव अंग्रेजों द्वारा शासनपद्धति के स्वरूप निरंकुश एवं दमनकारी राजसत्ता से सामना था जो भारत की सोच–समझ से उलट पड़ता था। दूसरे, रूस में घटित 1917 की नवम्बर क्रांति से उत्पन्न प्रभाव था जिसने दुनियां के मुक्ति आन्दोलन को गहरे से उकसावा दिया व उभरते हुए नेतृत्व ने भी इसे मन पर बैठाया।

याद रखने लायक हैः भारतीय उप–महाद्वीप लम्बे काल तक ब्रिटिश व्यापारी तहजीब से संचालित ऐसी शासनपद्धति की गुलामी का शिकार रहा जो यहां की सभ्यता–संस्कृति से उलट थी और जिसकी उसे भारी कीमत अदा करनी पड़ी। इस क्षति की भरपाई करना अभी भी कठिन हो रहा है। यू ंतो विश्व में ऐसे बहुत देश हैं और बहुत कौम हैं जिन्हें परतन्त्रता से गुजरना पड़ा है। अमेरिका में ही रैड इंडियन व अश्वेत नीगर

पर इतिहास में जो बीता वह कम दर्दनाक अनुभव नहीं है। कोई नहीं है जो आज बता दे कि रैड इंडियंस के साथ अमेरिका में क्या बीती और इनके बलबूते अमेरिका को 'आधुनिक' व 'विकसित' राष्ट्र बनाने में वहां की इस मूल आबादी को कैसे बली चढाया गया। उस देश के नामी थ्योडर रूज्वैल्ट ने 1885 में ऐलानिया कहा थाः 'आप इतना दूर भले न जाएं कि मरा हुआ रैड इंडियंस ही भला रैड इंडियंस होता है' किन्तु, मैं मानता हूं कि दस में नौ तो ऐसे ही होते हैं और मुझे दसवें के बारे में अधिक जांच–परख करने की आवश्यकता नहीं है। एक सामान्य रैड इंडियंन से हमारा अपना सबसे लफंगा चरवाहा कहीं बेहतर नीति–सिद्धांत का धनी होता है।' आगे चलकर फतवा दिया गया कि रैड इंडियन को बेदखल करने हेतु 'कोई भी दलील ठीक है। यदि इंडियन घुमक्क्ड खानाबदोश है तो, उसे जमीन रखने का अधिकर नहीं है। यदि वह निवासी है तो, वह जमीन रखने के लायक नहीं है। यदि उसने जमीन रखने के लिए कोई उपबंध किया है तो अमेरिका को जब स्थिति बदल जाए तो ऐसे उपबंध को समाप्त करने का अधिकार है।' शैक्सपीयर ने इंगलैण्ड के ऐसे ही चरित्र की खूब व्याख्या की है।

भारतीय उप–महाद्वीप का कारवां कुछ अन्तर से गुजरा है। गुलामी का काल यहां रैड इंडियंस से कुछ अलग नहीं रहा और भेडिये का तर्क यहां भी उसी तर्ज पर चला; बल्कि अधिक घातक परिणाम के साथ यहां नफासत बरती गई। रैड इंडियंस की तरह यहां नसल मिटाने वाला नरसंहार नहीं हुआ परन्तु, यहां के मूल निवासियों की हैसियत गुलाम की बना कर रखी। उनके गौरव, उनकी संस्कृति, उनकी जीवनशैली को पलट कर जड़विहीन बनाने पर जान लड़ा दी और एक नकली किन्तु मनमोहक 'आधुनिकता' का पैरोकार बना डाला। रैड इंडियंस की तरह उनका शिकार तो नहीं खेला किन्तु, अपने लिए बिन इंसानी अधिकार मेहनती श्रमिक के बतौर उसे जिंदा रखा।

प्लासी के मैदान में 23 जून 1757 को लडाई जीतने के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी ने मनचाहे दोहन हेतु इस महाद्वीप पर अपने शासन की पकड़ मजबूत करके अंत तक इसे अपने कब्जे में रखने के लिए सब तरह के

अच्छे–बुरे हत्थकंडे प्रयोग किए। इसका विरोध उठना था, उठा। इस कड़ी में उसे 1857 में देशव्यापी बगावत कां सामना करना पड़ा। परिणाम में यहां सीधे ताज का शासन कायम हुआ ताकि औपनिवेशिक दोहन का लक्ष्य आगे बढ सके। इस युद्ध में भारत को मिली हार का एक परिणाम यहां राष्ट्र की चेतना के फलित होने में हुआ। यह इतिहास है। तथ्य यह कहानी कहते हैं। जो हो, इस मुक्ति आन्दोलन के चरित्र चित्रण पर गम्भीर मतभेद हैं। यह इतिहासकारों, समाजवेत्ताओं व राजनीतिक कार्यकत्ताओं के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य शेष है।

ब्रिटिश सत्ताधीशों ने भारत को अपने ताज का अनमोल हीरा बना कर रखने में जो बन पड़ा वही किया। वे इसकी आत्मा को निचोड़ कर रखना चाहते थे, जिसके लिए गलत व सही के अन्तर की समझ को पलटना अत्यंत आवश्यक माना गया। इस लक्ष्य हेतु अलग तरह की शिक्षा पद्धति को रचा गया, सर्वथा अलग तरह के जीवनमूल्यों, सामाजिक मूल्यबोध व नीति–सिद्धान्त की समझ को खड़ा किया गया जो यहां की पद्ध के उलट पड़ते थे किन्तु, एक औपनिवेशक लुटेरे शासन की मंशा को पूरा करने में सहायक हुए। साथ ही, यहां के जनमानस के जहन में राज के भय को बैठाने के भरे–पूरे तन्त्र व उसके अनुरूप वैचारिक अवधारणाओं की रचना की गई। अपने लायक व्यवस्था की रचना करके ब्रिटेन ने भारत को खोखला कर दिया, यह आंकडो की दुनियां पर भरोसा करने वाले भी मानते हैं। मनुष्य सदा के लिए गुलाम नहीं रह सकता है; अपनी ओर से बचाव की ऐसी सब पुख्ता रणनीति के बावजूद इस दमन–अत्याचार का विरोध उठना ही था, प्रबल उठा।

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष के ठोस व संगतपूर्ण कारण थे। भारत के लिए यह शासन अत्न्त कष्टप्रद और खोखला करने वाला साबित हुआ। इससे आम आदमी त्रस्त हो उठा, भूख, अकाल, व गरीबी ने पैर पसार लिए। इसे अंधा युग कहने में अतिश्योक्ति नहीं होगी। वर्ष 1900 तक लगभग पचास साल की अवधि मे 2 करोड लोग अकाल से मौत में मुंह में चले गए। अभाव की स्थिति में अनाज का निर्यात किया गया। 1914 में यह 1901 के मुकाबले 22 गुणा अधिक था। ंवर्ष 1858 में 30.8 लाख पौंड रकम

का अनाज बाहर भेजा गया जबकि 1914 में यह 190.3 लाख पौंड रकम का था! इस परिस्थिति के जवाब में पंजाब में 1905–1907 का *'पगडी संभाल जट्टा'* किसान आन्दोलन उठा जिसको लाला लाजपत राय के सहयोग से सरदार अजीत सिंह जैसे आग उगलने वाले नेता ने स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ ग्रामीण क्षेत्र को जोड़ने में पहल की। रोहतक के आसपास वाले क्षेत्र में इस काम के लिए सरदार अजीत सिंह ने सांघी निवासी अपने कुलमित्र चौधरी मातू राम को जोड़ा। यह बेजोड़ हिम्मत व समझ का काम था क्योंकि अंग्रेज शासक उस समय यहां आर्य समाज की कार्यक्रमों और सरदार अजीत सिंह की गतिविधियों से बेहद सतर्क था। उसे लग रहा था कि 1857 की 50वीं वर्षगांठ पर यहां कुछ खतरनाक पक रहा है!

स्पष्ट था स्वतन्त्रता आन्दोलन 1857 की हार के बावजूद रुका नहीं था। तब भी, इतिहासकारों व समाजशास्त्रियों में तीव्र मतभेद है कि 1857 को कैसे समझा जाए। कोई इसे अंग्रेजों के बताये अनुसार मात्र सिपाही विद्रोह चित्रित कह कर प्रसन्न होते हैं तो कुछ इसे भारत का पहला स्वतन्त्रता आन्दोलन मान कर चल रहे है जबकि अनेक इसे जन–क्रांति कह कर पुकारते हैं। बहुत बुद्धिजीवि इसे आज तक सामंत एवं रूढ़िवादी शक्तियों की बगावत बता कर व्याख्या करते हैं। अर्थात तथ्यों को अपने–अपने नजरिये से देख कर अपनी सुविधा या इच्छा के लायक नतीजे पेश कर रहे हैं ताकि भविष्य का नक्शा तैयार कर सकें, भले इससे इतिहास की उपेक्षा होती है।

ऐसा ही कुछ अगले चरणों में आन्दोलन को लेकर हुआ है। 1857 में वर्चस्व बना लेने के बाद चले दमनकारी अभियान की प्रतिक्रिया हुई। अंग्रेज शासन के आतंक के जवाब में प्रति–आतंकवादी पहल खड़ी हुई। ढाका, चिटांगांव, लाहौर, सहारनपुर, कानपुर, आगरा, रोहतक के अतिरिक्त दक्षिणपूर्व के अनेक क्षेत्रों में, जैसे शांघाई, सिंगाहपुर बैगकॉक आदि स्थानों से यह लडाई चली। इसके बाद, एक ओर कांग्रेस का गठन कर सुरक्षित राह निकालने का प्रयास आरम्भ हुआ तो दूसरी ओर, रूस की समाजवादी क्रांति से प्रभावित हो कर क्रांतिकारी सोच को लेकर लहर उठी। बाद में,

स्वयं काग्रेस के अन्दर गर्म दल व नरम दल बने। इन विभिन्न धाराओं को लेकर चले इस स्वतन्त्रता आन्दोलन को श्रमिक, किसान व अन्य तबकों का समर्थन था। मोहनदास कर्मचंद गांधी के आने पर आन्दोलन के रणकौशल व रणनीति के चरित्र में खास बदलाव देखने को मिलता है। उसके बाद असहयोग व सिविल नाफरमानी जैसे तौरतरीके सामने आए। आमजन को आन्दोलन से जोड़ने का नया मार्ग तैयार हुआ। फिर, भारत छोड़ो आन्दोलन में लोगों का बदला हुआ तेवर सामने आया। इन सब पर देश में बहुत साहित्य छपा है। किन्तु, कारण जो हों कुछ छिटके प्रयासों के बावजूद, अनेक धाराओं की संतुलित समीक्षा का अभी भी अभाव है।

एक समय बीत जाने पर पुर्खों ने इतनी कुर्बानी देकर जो संघर्ष किया था उसकी समझ का नयी पीढी में अभाव अब नुकसान देने की स्थिति में पहुंच चुका है। इसमें इस आन्दोलन पर बुद्धिजीवि क्षेत्र में पनपी भैंगी व तिरछी समझ प्रमुख कारण है। उत्पन्न हुए इस अभाव के चलते स्वयं स्वतन्त्रता के निहित मूल्य में गिरावट को देखा जा सकता है। इससे देश घाटे में रहने वाला है। बचाव के लिए आवश्यक है कि गुलामी के काल की संतुलित समीक्षा हो और उसकी पीडा को ठीक से याद को ताजा करते रह कर स्वतन्त्रताबोध की सही समझ खड़ी हो, उसके नायकों की देन को परखा जाए और नयी पीढी में सामाजिक दायित्वबोध की चेतना पैनी हो। अन्यथा, आज के खड़े बिगडैल व निकृष्ट व्यक्तिवाद से जो हानि होगी उसकी भरपाई असम्भव है।

आज का जो हरयाणा राज्य है उसमें स्वतन्त्रता आन्दोलन दो तरह के क्षेत्रों में चला। एक जो क्षेत्र सीधे ब्रिटिश शासन के अधीन थे, उनका एक स्वरूप रहा। रियासतों में उसको प्रजा मण्डल के नाम से जाना जाता है। *प्रजा मण्डल आन्दोलन* की आवश्यक स्तर की समीक्षा होनी चाहिए। साथ ही, यहां *आर्य समाज* की भूमिका को चिन्हित करने की आवश्यकता है। इसी तरह महिला जगत, किसान, श्रमिक व युवाओं की भूमिका को ठीक से आंका जाना चाहिए।

भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन की अपनी विशिष्टताएं हैं। जटिलताएं हैं। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध इतने लम्बे चले आन्दोलन के ठोस कारणों को

चिन्हित किए जाने का काम अधूरा है। इसके पीछे कौन और कैसी आर्थिक स्थिति रही जिसने आम लोगों को उबाल के स्तर तक लाने का काम किया, इसकी व्याख्या उभरे। बहुलतावादी देश को एक सूत्र में बांधने के कौन आधार थे कि एकजुट हो कर देश आजादी के लिए खड़ा हुआ। कहां गच्चा खाया, स्पष्ट बयान हो।

अभी तक आन्दोलन पर उपलब्ध साहित्य अनेक प्रश्नों को स्पष्ट करने में पूरी तरह सक्षम नहीं है। परिणाम स्वरूप छात्र एवं शिक्षक अनेक पहलुओं पर गलत अवधारणाओं के आधार पर काम करने की स्थिति में पड़ते हैं। आवश्यकता है कि यह स्थिति बदले। अन्यथा, देश बौद्धिक तौरपर एक तरह के बौनेपन की हालत में जा पहुंचेगा जबकि, उसकी जरूरत आगे बढने की है ताकि वह स्थिति प्राप्त हो जिसके लिए पूर्वजों ने इतना जटिल संघर्ष चलाया था। औपनिवेशिक नस्ल के अनेक पक्ष अभी यहां प्रचलन में हैं जो आगे की गति में अवरोधक का काम कर रहे हैं। ये चिन्हित हों।*चौधरी रणबीर सिंह शोधपीठ* अपने निर्धारित लक्ष्य के अनुसार प्रतिबद्ध है कि स्वतन्त्रता आन्दोलन पर राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में नयी दृष्टि से सर्वांगीण परख हेतु विचार मंथन हो और सही सबक लिए जाएं ताकि बहुमूल्य प्राप्त स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखना सम्भव हो और इसे सशक्त किया जा सके।

चौधरी रणबीर सिंह शोधपीठ
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

SYMPOSIUM BACKGROUND PAPER

FREEDOM MOVEMENT IN INDIA, WITH SPECIAL REFERENCE TO HARYANA

23-24 March, 2011

While welcoming you all to the symposium I, on behalf of the CRS Chair, would like to give a brief account of the theme that is selected for this year's discussion. The subject of discussion has not been selected an easy course to fulfil any formal requirement. Rather, it is the outcome of a concrete understanding of the available situation of the times.

You all know that India had its concrete conditions ripe and cogent reasons to rise in a movement against demeaning slavery at the hands of British colonial rule that set for its unusually prolonged trajectory in the country. Two experiences apparently worked as a background to shape its strategy and tactics of its own: it had to face the truth of a cruel and crafty state structure new to India as an instrument of terror that was in place for one and the other event that apparently influenced its rising leadership was the November Revolution of 1917 in Russia, with vast implications to its aspirations and the course of struggle for liberation.

To recount: Indian sub-continent tasted slavery for a long period in its history at the hands of a desperate trader with a new set of values and a state structure totally foreign to the ethos of this country and paid an unprecedented price in consequence that is becoming still difficult to make up. In world history, there are many lands and many nationalities for which slavery became

curse. Red Indians and Negroes in America had their own share. Out of these two Red Indians are a forgotten lot by now for what they suffered and how it made America 'modern'. The American crusader in Theodore Roosevelt proclaimed (1885): 'Don't go so far as to think that *the only good Indians (Red) are dead Indians*, but I believe nine out of ten are, and I shouldn't inquire too closely into the case of the tenth. The most vicious cowboy has more moral principle than the average Indian.' He made it clear in the Winning of the West that 'any excuse would suffice. If the Indians were nomadic, they didn't own the land. If they were settled, they didn't deserve the land. If they signed the treaties giving them legal ownership, the US had the right to abrogate the treaties whenever circumstances change'!!

Indian sub-continent, however, had to pass through a bit different variety. Long period of slavery here was no less unbearable as the vanquished Red Indians in America had to with a similar logic of the jackal; rather in certain respects it was, characteristically a more devastating but sophisticated experience. This sub-continent escaped genocide that the Red Indians had to face; under colonial rule the very Indian ethos was sapped out systematically to make it a different nation with an alien identity, borrowed culture and values of a renegade but charming variety dished out as something modern and liberating! Indians here were not hunted as Red Indians in America had the fate; they were allowed to live as the hard working labour to British advantage!

After the victory in Battle of Plassey on 23rd. June, 1757, the East India Company consolidated its grip on the sub-continent for colonial possession and employed means all fair and foul to

keep its bastion to the last in its quest for imperial interests. For this, soon they earned a chain of revolts here and there. However, these new masters faced a serious pan-Indian challenge from the people in the revolt of 1857 that ultimately paved way for a direct crown rule by Britain in order to keep afloat its imperial pursuit. This war against colonial rule in 1857, in effect, gave a national perspective to the natives in defeat for a future victory. It is history. Facts are incontrovertible. But, there are serious differences on its characterisation that persist till today. A daunting challenge for historians and social workers alike.

Britain did everything possible to keep this sub-continent as a jewel in possession; it terrorised India to the bone and at the same time took extra-ordinary pains to subvert its ethos simultaneously in order to pervert the spirit of right and wrong. It bled this country white so that Britain could attain commanding heights as a supreme power in the world arena and retain it as long as possible with ease. It laboriously chiselled a new tool in education system with a definite colonial objective to fulfil. The victims, however, were not to remain docile for ever. Soon after the defeat in 1857 and despite the terrifying grip of the state that came in existence thereafter, revolts at one place or the other continued. The Deccan peasant uprisings of 1875 had alarmed the colonialists alike. The urge for freedom started asserting again and again with varying degree of force. It is also history.

There were coherent reasons for Indians to fight against this British rule. The crown rule proved no less ruthless in draining out resources from this country; rather the pace doubled up resulting in unprecedented famines where nearly 20 million people died during a span of 50 years till around 1900 alone. The export

of food grains rose from starving India. In 1914 the increase was twenty two times over 1901. It was worth 3.8 million sterling pounds in 1858, 7.9 million in 1877, 9 .3 million in 1901 and 19.3 million sterling pounds by 1914. To face this increasing onslaught, '*Pagri Sambhal Jatta*' movement in Punjab between 1905-07, led by the fiery Sardar Ajit Singh and Lala Lajpat Rai is remarkable for its tone and tenor to rouse the peasantry out of stooping slumber and stand by the resurgent freedom movement. Sardar Ajit Singh found in Chaudhry Matu Ram of Sanghi a ready soldier when he visited his family friend and toured some villages around Rohtak for taking the message to rural belt in Haryana region. It was a job of remarkable dexterity and grit on his part when British rulers were extra apprehensive of Arya Samaj over its activities and those of the Sardar. They felt that something is brewing up the sleeves of Indians by the 50th. Anniversary of 1857.

As is evident, the freedom movement that manifested in 1857 did not stop at its defeat, neither there seems to a break of any substantial character. But, there are sharp differences among historians and social scientists as how to read the revolt in 1857. Problem is, to what extant one remains objective, while reading the facts? There is a catch: differences do crop in evaluation simply due to variation in perceptions or because of preconceived notions one labours with, despite the claim of objectivity. Britishers were happy to term the revolt in 1857 as a mere sepoy mutiny, while some depict it as a revolt of conservative and feudal forces to serve their own agendas. A third stream describes it as '*Jan Kranti*.' Marx said it was the 'First War of Independence', despite the fact that none talked about any second war in this chain and relevance of the first loses existence in the absence of a second. Problem is, where then rests the truth?

Similar is the situation about the movement in its later phases that encompassed mainly three streams. Each has its own history of emergence with specific conditions. In response to the state oppression let loose after 1857, terrorists' movement started taking shape operating underground from various centres in the country as well as in various south East Asian countries as also from Shanghai in China, to terrorise the Britishers for their crime against Indians. A bit later, the Indian National Congress came on the scene as a safety valve to channelise the serious mass discontentment that arose due to the economic distress out of colonial policies. Thereafter, a revolutionary stream came up with specific ideological backup, largely supported by the organised labour and peasant struggles. With the arrival of Gandhi on the scene, there was a perceptible change in the strategic struggles and tactical forms of movement. Non-cooperation and individual satyagrah as forms of mass mobilisation were utilised by the Congress, while Quit India movement took the struggle to new heights. Much literature is published on these phases. Nevertheless, the role of each stream is ill-defined and less appreciated in a cohesive form till date for their contribution to the cause, except the patchy work here and there.

With the passage of time and armed only with patchy references about the struggle our forefathers went through, the new generation stands bereft of those values and mores that had shaped the character of the country by that generation of warriors, largely due to skewed learning of our own history of freedom movement. With the deficit at hand, the value of freedom itself is facing eminent danger of loosing substance. In this sense, the country is at a crossroad. A tragedy is waiting to happen. To avert

it, it is imperative that the agony of slavery is duly analysed and the values that challenged it be properly appreciated to make the young imbibe a culture of social obligation, coming clean of crass individualism that may not ultimately benefit even its victims.

The freedom movement in the areas that constitute the state of Haryana today had two variants; the first is the freedom movement proper fighting directly against the British rule and the *Praja Mandal* movement in those areas that had formed part of princely states during that period. Much less is known about this part of the movement. It is important to evaluate the *Praja Mandal* movement properly. Similarly, the role of Arya Samaj has to be objectively analysed and well appreciated along with other sections of society like women, youth and peasants in this region.

Indian freedom movement has its own peculiarities that go to make it a complex affair. The concrete conditions and reasons that made the overthrow of colonial regime essential are to be fixed for reference. The political economy that gave rise to this movement has to be probed and what made India of the time with its national ethos to be explained. The phenomenon of unity in diversity with its divergent streams and their respective roles will have to be marked for better understanding of each so that a harmonious picture emerges to answer the query. Naturally, the personalities that made the movement take roots will provide the backdrop of the theme.

So far, texts available do little to clarify these various aspects of the movement. In consequence, teachers and students also labour on faulty premises drawing, wittingly or unwittingly, conclusions which hardly do justice to the task. It is time that serious efforts are made to remedy the situation, lest the nation is led to dwarf-ness of its own make, while the country is in need of change for a better future that our forefathers fought for. Many facets of colonial make still hamper the onward march of the country. That needs to be over-hauled for an egalitarian future. We, in the '*Chaudhry Ranbir Singh Chair*', actuated by its mandate for a better India do feel that a clean look be given to our freedom movement in its entirety to draw appropriate lessons so that Independence gained from colonial bondage could be safeguarded and consolidated. This symposium is the initial step that intends to start probing the issue afresh and without blinkers.

Chaudhry Ranbir Singh Chair/Peeth
MD University, Rohtak

खण्ड–11

यादों का झरोखा

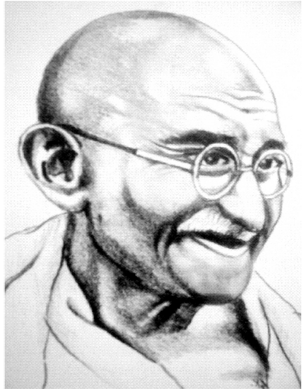

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

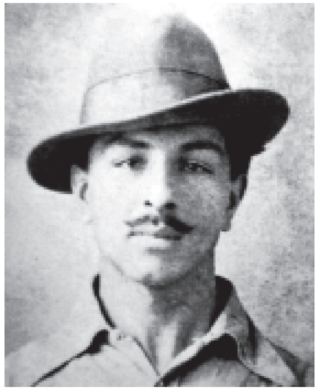

सरदार भगत सिंह

स्वामी दयानंद सरस्वती

चौधरी मातूराम

चौधरी रणबीर सिंह

बहादुरशाह जफर
की गिरफ्तारी

दिल्ली के
चाँदनी चौंक में
राजा नाहर सिंह
व झज्जर नवाब
को फांसी
देते हुए

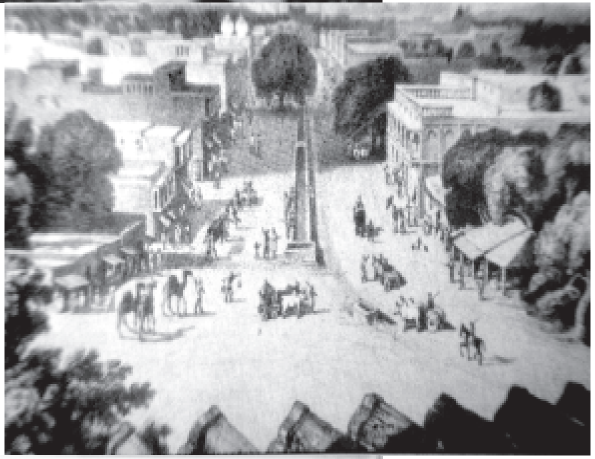

क्रांतिकारियों को
तोप से उड़ाते
हुए

1857 :
क्रांतिकारियों को
फांसी देते हुए
ब्रिटिश हाकिम

1857 :
क्रांतिकारियों को
सामुहिक रूप में
फांसी पर लटकाने
का दृश्य

1857 :
क्रांतिकारियों को
वृक्ष पर सामूहिक
रूप से फांसी
देने का दृश्य

दाण्डी में
नमक कानून
तोड़ते हुए
महात्मा गांधी
(वर्ष 1930)

नमक कानून
तोड़ते हुए
कांग्रेसी कार्यकता
हिसार में
(वर्ष 1930)

स्वतंत्रता प्राप्ति
के उपरांत
फैले साम्प्रदायिक
दंगो को रोकने
के लिए हुई सभा
में महात्मा गांधी
व अन्य

प्रकाशक :
चौधरी रणबीर सिंह शोधपीठ
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक